पंचायत एवं समाज सेवा संचालनालय मध्यप्रदेश द्वारा समस्त पंचायतों एवं प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों के लिए, शिक्षा विभाग द्वारा समस्त महाविद्यालयों, उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों/हाई स्कूलों, शिक्षा महाविद्यालयों, बुनियादी प्रशिक्षण संस्थाओं, राज्य स्तरीय संस्थाओं तथा केन्द्रीय एवं जिला पुस्तकालयों के लिए, स्थानीय शासन विभाग द्वारा नगर निगमों एवं नगर पालिकाओं के लिए तथा आदिमजाति कल्याण विभाग द्वारा आदिवासी शालाओं के लिए स्वीकृत। उ.प्र. शासन द्वारा जिला पुस्तकालयों एवं वाचनालयों के लिए अनुमोदित।

तुलसी मानस प्रतिष्ठान मध्यप्रदेश की मासिक मुखपत्रिका

तुलसी मानस भारती

संस्थापक

पं. गोरेलाल शुक्ल

http://webmail.manasbhawanbhopal.com/

संपादक मंडल

रघुनंदन शर्मा

प्रकाशक

कार्याध्यक्ष, तुलसी मानस प्रतिष्ठान, भोपाल

raghunandanbjp@gmail.com

प्रभुदयाल मिश्र

प्रधान संपादक

तुलसी मानस भारती

prabhu.d.mishra@gmail.com

राजेन्द्र शर्मा

संयोजक, तुलसी मानस प्रतिष्ठान, भोपाल

sharmarajendra8june@gmail.com

कैलाश जोशी

सचिव,तुलसी मानस प्रतिष्ठान, भोपाल

kailashjoshi58@gmail.com

देवेन्द्र कुमार रावत

संपादक

सहसचिव, तुलसी मानस प्रतिष्ठान, भोपाल

dkmrawat@gmail.com

परामर्श

विजयदत्त श्रीधर, रमेश शर्मा, माधव सिंह दांगी

ग्राहक शुल्क : वार्षिक रु. 250.00, पंचवर्षीय रु.1100.00, आजीवन रु. 2500.00 इस अंक का रु.75.00

विदेश में : फिजी आयरलैण्ड, मॉरीशस व अन्यत्र समुद्री डाक से (भारतीय रुपये में) वार्षिक रु. 1250.00, पंचवर्षीय रु. 5000.00 आजीवन रु. 12500.00, हवाई डाक से वार्षिक रु. 1500.00 पंचवर्षीय रु. 6000.00 आजीवन रु. 15000.00

पंजाब नेशनल बैंक खाता क्र. 1276000100137956 आईएफसी कोड PUNBO127600

सम्पर्क : तुलसी मानस प्रतिष्ठान मध्यप्रदेश, मानस भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल–462002, दूरभाष : 0755–2661196, 2660010

अनुक्रमणिका

निर्वचन
गोस्वामी तुलसीदास की जीवनी : अंतर–बहिर्साक्ष्य — प्रभुदयाल मिश्र — 05
दुर्लभ शोध
गोस्वामी तुलसी दास का प्रमाणिक जीवन–शोध — लोकनाथ द्विवेदी 'सिलहकारी' — 07

तुलसी का जीवन वृत्त : अन्त:साक्ष्य — 08
- तुलसी का आविर्भाव
- जन्मकाल
- कुल वंश, जन्म स्थान
- बाल्यावस्था
- गुरु आश्रय
- नाम
- विवाह और गृहस्थ जीवन
- गृहत्याग
- मुख्य निवास त्याग
- काशीघाट
- प्रहलाद घाट
- संकट मोचन हनुमान
- यश प्राप्ति
- विरोध
- रुग्णावस्था
- अवसान (मृत्यु)

बहिर्साक्ष्य : — 25
तुलसीदास के परिचित ऐतिहासिक चरित्र
- पंडित गंगाराम
- टोडरमल

- श्री परमेश्वर
- नवाब अब्दुर रहीम खानखाना
- महाराजा मानसिंह
- मीराबाई
- श्री मधुसूदन सरस्वती
- जैनकवि बनारसीदास
- गंग कवि
- केशवदास
- दत्तात्रेय
- नाभादास
- प्रियादास

ऐतिहासिक आधार ग्रंथ प्रियादास जी द्वारा लिखित सुबोधिनी टीका 33

- पत्नीप्रेम
- हनुमत् कृपा
- मृगयाचारीराम दर्शन
- हत्यारे का उद्धार
- चोरों पर कृपा
- मृतक को पुनर्जीवन
- सम्राट जहाँगीर पर अनुग्रह
- श्रीकृष्ण का रामरूप दर्शन

बाबा बेनी माधवदास का मूल गोसाईं चरित्र
बाबा रघुवर दास तुलसी चरित
भवानीदास विरचित गोसाईं चरित
वार्ता नंददास

तुलसी के जीवन चरित के शोध निष्कर्ष 79

जन्म संवत्
तुलसीदास जी का जन्म स्थान
तुलसीदास के गुरु नरहरिदास
तुलसीदास जी की धर्मपत्नी रत्नावली

तुलसीदास जी का कुल और वंश
तुलसीदास जी की यात्राएं
गोस्वामी तुलसीदास के ग्रंथ विषयक शोध

परिशिष्ट 87
विराट संयोजन की रूपरेखा
हिन्दी साहित्य का विराट आयोजन

विविधा

काव्य

तुमको प्रणाम्! शत् शत् प्रणाम!!	गंगाप्रसाद बरसैयां	91
आलेख		
जननी–जन्मभूमि स्वर्ग से बढ़कर	रघुनंदन शर्मा	92
तुलसी की दृष्टि में काव्य	देवेन्द्र कुमार रावत	94
शोध आलेख		
विष्णुदास की रामायणी कथा : पृष्ठभूमि	डॉ. हरप्रसाद शर्मा	96
विश्लेषण		
मानस में दशानन का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण	राजरानी शर्मा	104
आलेख		
वाल्मीकि रामायण में विभीषण की .... सम्मति	डॉ. नरेन्द्र कुमार मेहता	116
शोध आलेख		
वनगमन : अयोध्या से चित्रकूट	गोवर्धन यादव	119
तुलनात्मक		
तुलसीदास और मैथिली शरण गुप्त	शकुंतला कालरा	129

निर्वचन

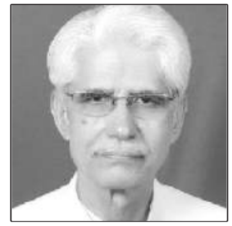

गोस्वामी तुलसीदास की जीवनी : अंतर-बहिर्साक्ष्य

तत्कालीन ओरछा राज्य के उद्‌भट साहित्य मनीषी श्री लोकनाथ द्विवेदी 'सिलहकारी' ने दिनांक 10–02–1945 को तत्कालीन ओरछा नरेश श्री वीरसिंह जू देव को लिखे अपने पत्र में लिखा – "तुलसीदास–विषयक कार्य के हेतु तन मन से अध्ययन और मनन में संलग्न हूँ, पर लेखन कार्य श्रीमान के आदेश और आशीर्वाद प्राप्ति के पूर्व प्रारम्भ नहीं कर सकता।" श्री सिलहकारी जी ने इसकी जो 5000 पृष्ठ की रूप रेखा तैयार की उसके पूर्व उनकी ओरछेश जू देव से आवश्यक बैठक हुई होगी। पर यह भी दैव की ही विडम्बना रही कि 'तुलसीदास समग्र" इस पाण्डुलिपि की रूप रेखा के लगभग 175 पन्ने ही श्री वीरेंद्र केशव साहित्य परिषद के अध्यक्ष श्री हरिविष्णु अवस्थी के पास उपलब्ध थे जिन्हें उन्होने अनुग्रह पूर्वक मुझे प्रदान किया। इस अनुष्ठान की भूमिका में ग्रंथकार की निम्न विज्ञप्ति उसकी विराट परिकल्पना का स्पष्ट परिचय देती है–

"राष्ट्र–भाषा हिन्दी के सुप्रसिद्ध संरक्षक ओरछेंद्र श्रीमान महाराजा श्री वीरसिंह जू देव बहादुर ने विश्व–कवि "गोस्वामी तुलसीदास" नामक विशाल ग्रंथ के निर्माण का शुभ संकल्प और आयोजन किया है। इसमें प्रथम भूमिका– खंड पश्चात संसार साहित्य के मुक्तामणि महाकाव्य रामचरित मानस पर "श्री वीर सिंहावलोकन भाष्य" की रचना का निश्चय किया गया है, जो आकार–प्रकार और विषय विवेचन आदि की दृष्टि से अभूतपूर्व ही होगा। उसे सर्वांग सुंदर और विश्व–साहित्य की मूल्यवती कृति बनाने में कोई प्रयत्न उठा न रखा जाएगा। यह कार्य हिन्दी साहित्य की सेवा–भाव से प्रेरित होकर किया जा रहा है, अतएव इसमें समस्त हिन्दी के प्रेमियों और विद्वान और साहित्य सेवियों के साथ ही भारतीय –संस्कृति और भारतीय धर्म तथा भारतीय राष्ट्र के सम्पूर्ण सज्जनों के सहयोग की पूर्ण आशा है। तुलसी दास विषयक प्रामाणिक सामग्री, चित्र तथा लेख आदि से जो इस महान साहित्यिक यज्ञ में सहायक होंगे, उनके हम आभारी रहेंगे; और जो चाहेंगे, उनकी पत्र पुष्प अर्पण द्वारा सेवा की जावेगी।"

इस ग्रंथ के विराट आकार का परिचय इसके निम्नानुसार परिकल्पित 8 खंडों के सामने अंकित पृष्ठ संख्या से किया जा सकता है –

1. भूमिका खंड पृष्ठ संख्या 700 (परिचय, दर्शन, राम–कथा काव्य गरिमा, भाषा, टीकाकार, समीक्षक)
2. मानस खंड–600 (बाल एवं अयोध्या कांड)
3. मानस खंड–600 (आरण्य, किष्किंधा एवं सुंदर कांड)
4. मानस खंड –600 (लंका और उत्तरकाण्ड)

5. गोस्वामी जी के एकादश ग्रंथ–700 (विनय पत्रिका, गीतावली, कवितावली आदि)
6. सिद्धांत खंड–500 (दार्शनिक, धार्मिक, सामाजिक, नैतिक और राजनैतिक सिद्धान्त)
7. तुलनात्मक समालोचना–600 (भारत तथा विश्व के अमर कवीश्वरों की रचनाओं से गोस्वामी जी की रचनाओं की तुलनात्मक समालोचना)
8. तुलसी कोष –600

यहाँ यह स्मरण रखा जाना सर्वदा योग्य है कि जहां रामचंद्रिका महाकाव्य के कवि केशव दास और 20 खंडों के धर्मशास्त्र 'वीरमित्रोदय' जैसे महाग्रंथों की रचना इसी ओरछा राज्य के प्रश्रय में हुई, वहीं इसके अंतिम महाराजा श्री वीरसिंह जूदेव भारत के ऐसे प्रथम राजा थे जिन्होंने वर्ष 1931 में राज्यारोहण कर अपने पहले ही आदेश में हिन्दी को राज्य की राजभाषा घोषित किया तथा पत्रकारिता के पितामह बनारसी दास चतुर्वेदी को 12 वर्ष तक 'मधुकर' साहित्य पत्रिका के प्रकाशन की स्वायत्त शक्ति प्रदान कर राज्य में उन्हें अतिथि के तौर पर अपने गुरु और मार्गदर्शक की भूमिका में रखा।

गो. तुलसीदास के वास्तविक जन्म स्थान की गुत्थी इस अर्थ उलझी ही है कि वे राजापुर ग्राम में उत्पन्न हुए अथवा सोरों क्षेत्र में। हिन्दी साहित्य में इस पहचान को लेकर जार्ज ग्रियर्सन, रामचन्द्र शुक्ल, बाबू श्याम सुंदर दास, माता प्रसाद गुप्त से चली अवधी के तुलसी की जीवन धारा बांदा के राजापुर तक सीमित होकर तुलसी को दीन हीन और उनकी पत्नी तथा उन्हें समाज संतप्त ही ठहराती है जो इस शोध से अप्रमाणिक है। इस सरणि में तुलसी के समकालीन उनके निकटस्थ नाभादास, प्रियादास यहां तक कि स्वयं रत्नावली आदि के साक्ष्यों को भुलाकर अप्रामाणिक बेनी माधव चरित्र को आधार मान लिया गया है। कालांतर में श्री लोकनाथ द्विवेदी "सिलहकारी" आचार्य वेदवृत शास्त्री की वर्ष 1994 में प्रकाशित ''तुलसी–जीवन" के जन्म, जीवन और कर्म के तथ्यों को समान रीति से प्रमाणित करते मोहन मिश्र के ''तुलसी–जीवन वृत्त, एक सिंहावलोकन'' और प्रेम नारायण गुप्त की "तुलसी जन्भूमि : शोधपरक समीक्षा" आदि कृतियां भी विचारणीय हो उनके जन्म को सौरों में सिद्ध मानती हैं ।

हिन्दी साहित्य के अन्वीक्षण और उसकी विश्वजनीन प्रतिष्ठा में प्रवृत्त श्री लोकनाथ द्विवेदी सिलहकारी जी का यह शोधात्मक अभियान उनके तात्कालिक युगीन परिदृश्य में अपूर्ण ही रहा। तुलसी मानस प्रतिष्ठान को इस अनुष्ठान के इस भूमिका भाग की पांडुलिपि को अपनी स्थापना और उद्देश्य के अनुरूप कीर्तिशेष श्री हरिविष्णु अवस्थी, अध्यक्ष श्री वीरेंद्र केशव साहित्य परिषद् टीकमगढ़ से मिलना एक बड़ा सुयोग ही है। वर्ष 1945 में हिन्दी में टाइप राईटर से टंकित यह द्वितीय प्रति (जो अब प्रतिष्ठान के निर्माणाधीन श्री राम संग्राहलय को सौंप दी गई है) यत्किंचित अस्पष्टता में बड़ी सावधानी और तकनीकी चेष्टा से उपयोग में ली गई है। इसके लिए मैंने स्वयं कम्पूटर टाइपिंग, श्रुति आलेख और गूगल लेंस आदि नाना विधियों का स्वयं प्रयोग कर इसे निर्दोषिता में सम्पूर्ण किया है। तुलसी मानस भारती के इस विशेषांक में हम इसका एक अंश–गो. तुलसीदास का प्रामाणिक जीवनी भाग ही पत्रिका की सीमा में प्रकाशित कर रहे हैं। सम्पूर्ण सामग्री योग्य संपादन विधि से शीघ्र ही प्रतिष्ठान द्वारा प्रकाशित की जाकर अन्तर्देश और देशान्तर के साहित्य शोध केन्द्रों और शोधार्थियों को उपयोग हेतु शीघ्र उपलब्ध हो, यह निश्चय किया गया है।

प्रभुदयाल मिश्र
प्रधान संपादक
8839319901

गोस्वामी तुलसीदास का प्रामाणिक जीवन शोध

पुण्यश्लोक लोकनाथ द्विवेदी 'सिलहकारी'

शोधकार्य के तत्कालीन ओरछा नरेश महाराज वीरसिंह जू देव की इच्छा और आदेश से किए जाने का साक्ष्य

लोकनाथ द्विवेदी "सिलहकारी" साहित्याचार्य, टीकमगढ़
(सी.आई.), 10.2–45 ता.
सेवा में
श्रद्धेय श्रीजू देव,टीकमगढ!

श्रीमन् मंगलमय भगवान् मुरली मनोहर श्रीमान् को सदा सर्व सुख सम्पन्न रखें! श्रीमान् के दर्शनों की अत्यन्त तीव्र उत्कण्ठा से विवश होकर कुछ समय प्रदान करने की विनम्र प्रार्थना कर रहा हूँ। तुलसीदास–विषयक कार्य के हेतु तन मन से अध्ययन और मनन में संलग्न हूँ, पर लेखन कार्य श्रीमान के आदेश और आशीर्वाद की प्राप्ति के पूर्व प्रारम्भ नहीं कर सकता। अब बिलम्ब होने में मुझे लज्जा सी लगती है। आशा है, थोड़ा समय प्रदान करने की अविलम्ब कृपा करेंगे। कुछ अनूठे और अछूते साहित्यक निबन्ध श्रीमान् की प्रसन्नता के हेतु सुनाने की भी आकांक्षा है। विशेष विनय!
श्रीमान् का स्नेह भाजन,

अकिंचन आज्ञाकारी
लोकनाथ सिलहकारी

तुलसीदास जी का आत्मचरित्र : अंतःसाक्ष्य

विश्व कवि महात्मा तुलसीदास के जीवन चरित्र की कुल सामग्री उनकी रचनाओं में बिखरे हुए रूप में प्राप्त होती है जिसे संकलित करके यथाक्रम उपस्थित करने से उनके आत्मचरित के मूलसूत्रों को प्रकट किया जा सकता है। ऐसी सामग्री स्वयं तुलसीदास द्वारा उनकी रचनाओं में प्रस्तुत की गई है। रामचरित मानस, विनय पत्रिका, कवितावली तथा हनुमान बाहुक आदि ही में तुलसीदास जी ने अपने विषय में आत्मप्रकाश की प्रेरणा से लिखे ऐसे अनेक वाक्य हैं जिन्हें उन्होंने अपने जीवन की घटनाओं की स्मृति में रचा है। इस सामग्री के आधार पर उनके सबसे अधिक विश्वसनीय और प्रमाणिक जीवन चरित्र दिया जा रहा है।

तुलसी का आविर्भाव

जन्मकाल :

गोस्वामी तुलसीदास जी का जन्म विक्रम की 16वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में तब हुआ था जब मुगलों और पठानों के युद्ध में जनसमूह पिस रहा था। हिंदू आठवीं शताब्दी बाह्य आक्रान्ताओं से युद्ध करते करते प्रायः पराजित हो पराधीनता पाश में बंधन के गर्त में धकेले जा रहे थे। उन्होंने अपनी रचनाओं में तत्कालीन भारत की व्यवस्था का सच्चा प्रभावशाली चित्रण किया है। मुस्लिम काल में भारत में लूटपाट, घोर अत्याचार के कारण भारतीय समाज की दुर्दशा के विषय में उन्होंने बहुधा बहुत कहा है।

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख बलि
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी
जीविका बिहीन लोग सीद्यमान सोच बस
कहे एक एकन सों कहा जाए का करी।

—कवितावली पृष्ठ 225

उस समय प्रजा की दशा बेहद बिगड़ी हुई थी और आत्माभिमान बेचकर लोग यहाँ तक पतित, दीन और दरिद्री भी हो गए थे कि अपनी गुजर चलाने हेतु बेटा बेटी बेचने लगे थे। नीच कर्म से ग्लानि बिक गई थी। तुलसी दास जी लिखते हैं—

ऊंचे नीचे करम धरम अधरम कर।
पेट ही को पचत बेचत बेटा बेटकी।।

—कवितावली पृष्ठ 225

इतना ही नहीं तत्कालीन शासक वर्ग के विषय में उन्होंने बहुत स्पष्ट लिखा है—

गोंड़ गंवार नृपाल महि, यवन महा महिपाल।
साम न दान न भेद कलि केवल दंड कराल।।

(दोहावली पृष्ठ 152)

तत्कालीन भारतीय समाज और उसकी सामान्य दशा का एक पूर्ण चित्र तुलसी दास जी ने अपनी विनय पत्रिका के निम्नलिखित पद में दिया है—

दीन दयालु दुरित दारिद दुख
दुनी दुसह तिहुं ताप तई है
देव दुबार पुकारत आरत
सब की सब सुख हाँनि भई है।

- - -

राज़ समाज कुसाज
कोटि कटु, कल्पत कलुष कुचाल नई है
नीति प्रतीति प्रीत परमिति पति
हेतु वाद हठि हेरि हई है
आश्रम बरन धरम विरहित
जग, लोक वेद मरजाद गई है।
प्रजा पतित पाखंड पाप रत,
अपने अपने रंग रई है।
सांति सत्य सुभ रीति गई घटि,
बड़ी कुरीति कपट कलई है।
सीदत साधु साधुता सोचति,
खल बिलसत हुलसति खलई है।

\- - -

तापर दांत पीसि कर मीजत
को जाने चित कहा ठई है।
त्यों त्यों नीच चढ़त सिर ऊपर
ज़्यों ज्यों सील बस ढील दई है

– विनय पत्रिका पृष्ठ 533

उस समय अधिकारी को सात्विक धन मिलना दुर्लभ हो गया था। तत्समय के श्रीमान दान शील अर्थ के दास बने हुए थे। दूसरों की निंदा और उपहास की प्रवृत्ति बढ़ी हुई थी और अपने दोषों पर दृष्टि नहीं थी जो सुधार की कुंजी है। दूसरों की संपत्ति और मान बढ़ने पर डाह हो रही थी। तुलसीदास लिखते हैं –

गारी देत नीच हरिचंद हूँ दधीच हूँ को
अपने चना चबाइ हाथ चाटियत है
आप महापातकी हसत हरि हर हू पर
आप ह्वे अभागी भूरि भागी डाटियत है।

–कवितावली पृष्ठ 226

इस विषम परिस्थिति में उत्पन्न तुलसीदास जी ने शेरशाह सूरी के पीछे सम्राट अकबर का सुशासन देखा था। उस समय प्रजा का अधिकांश संकट टल चुका था और भारतवर्ष में धार्मिक स्वाधीनता के साथ साथ सुख शांति का वायुमंडल भी हो गया था–

समरथ बड़ो सुजान सुसाहिब
सुकृत सेन हारत जितई है।
सुजन सुभाय सराहत सादर
अनायास सांसति बितई है।

– विनय पत्रिका 534

कुल, वंश जन्म स्थान :

तुलसीदास जी का जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ था। वे स्वयं लिखते हैं–

जानि के ज़ोर करो परिनाम
तुम्हें पछ्ते हो पै मैं न मितैहों ।
ब्राह्मण ज्यों उगिल्यौ उरगारि हौं
त्यों ही तिहारे हिये नहितैहों

–कवितावली उत्तरकाण्ड छंद 102

दियो सुकुल जनम सरीर सुंदर
हेतु जो फल चारि को
जे पाइ पंडित परम पद
पावत पुरारि मुरारि को

–विनय पत्रिका पृ. 528

भलि भारत भूमि भले कुल जनमि
समाज सरीर भलो लहिकें

– कवितावली पृष्ठ 210

जायो कुल मंगल बधावनी बजायो सुनि
भयो परिताप पाप जननी जनक को

– कवितावली पृष्ठ 219

इन उद्धरणों से स्पष्ट कि तुलसीदास का जन्म उत्तम ब्राह्मण कुल में हुआ था जो पंडित

माना जाता था और उसकी पुरोहिती वृत्ति थी तथा उनका शरीर सुंदर था ।

बाल्यावस्था :

तुलसीदास जी की बाल्यावस्था में ही उनके माता पिता ने उन्हें त्याग दिया था। इसका उल्लेख विनय पत्रिका और कवितावली के अनेक वाक्यों में किया गया है–

जननि जनक तज्यो जनमि
करम बिनु विधिह सृज्यो अवडेरे
फिरयो ललात बिनु नाम उदर
मोह सो कोऊ कोऊ कहति
समहि को सो प्रसंग किहि करे।
लगि दुखउ दुखित मोह हेरे ।
मातु पिता जग जाय तज्यो विधि
हू न लिखी कछु भाल भलाई

– – –

तनु जन्यो कुटिल कीट
ज्यों तज्यो मातु-पिता हू
काहे को रोस दोस कहिधों मेरे ही
अभाग मोसों सकुचत छुड़ सब छाहू
दुखित देख संतन कहौ
सोचे जनि मन माहू

–विनय पत्रिका पृष्ठ –599

इन उद्धरणों से स्पष्टता विदित हो जाता है कि तुलसीदास को शैशव काल ही में माता पिता के द्वारा त्याग दिए जाने से उनका जातकर्म पिता के द्वारा नहीं हुआ और इस प्रकार त्यागे जाने पर बचपन में उन्हें उदर पूर्ति के निमित्त दीनता दिखलानी पड़ती थी। वे बचपन में इतने दीन और दरिद्री थे कि लोग उनकी छाया तक छूने से घृणा प्रदर्शित करते थे। उन्हें दुखी देख कर दुख भी दुखी होता था। अनाथ दुखी बालक पर अंत में संतो की दया उत्पन्न हुई और उन्होंने तुलसीदास को सात्वना देकर समझाया कि मन में दुखी होकर सोच न करो और अनाथों के नाथ श्री राम का भजन करो जो अशरण शरण हैं ।

माता पिता के द्वारा त्याग दिए जाने के बाद तुलसीदास ने उन्हें स्वार्थी कहकर उनके प्रति उपेक्षापूर्ण तिरस्कार का भाव प्रकट भी किया है –

स्वारथ के साथिन तज्यो तिज़रा
सो टोटक औचक उलटि न हेरो

– विनय पत्रिका पृष्ठ 598

इस तिजरा को स्पष्ट करते हुए पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने इसको टोटका के अर्थ में स्पष्ट करते हुए लिखा है–सोरों और उसके आस पास तिजरा बच्चों की पसली चलने की बीमारी को कहते हैं। उसके लिए यह टोटका किया जाता है कि आटे का पुतला बनाकर लोग उसे चौराहे पर छोड़ आते हैं और फिर उलटकर उसकी ओर नहीं देखते । देखने से उसके फिर वापस आने का डर रहता है इससे यह भी पता चलता है कि तुलसीदास जब आटे के पुतले की तरह असमर्थ थे तभी उनके माता पिता उन्हें अनाथ छोड़ कर चले गये थे – (तुलसी दास और उनकी कविता भाग एक पृष्ठ ७)

दरिद्रता के अपार कष्टों को भोगते हुए तुलसीदास अंत में संत कृपा से सूकरखेत (सोरों) पहुँचे। वहाँ वे महात्मा नरहरि दास के शरणापन्न हुए इसका उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा है–

ज्यों ही कहो मैं हूँ चेरो ह्वेहो रावरे जू
मेरो कोऊ कूँह नाहि चरन गहत हों।

(विनय पत्रिका)

गुरु आश्रय

अनाथ बालक तुलसीदास की दीन प्रार्थना को सुन कर महात्मा नरहरिदास जी ने उनको अपनी सेवा में ले लिया । तुलसीदासजी ने लिखा है–

मींजो गुरुपीठ अपनाह गहि बांह बोलि
सेवक सुखद सदा वरद वहत हौं ।

(विनय पत्रिका 505)

वहाँ उनके दुख दूर हो गए और वे गुरु सेवा करते हुए विद्याध्ययन करने लगे। गुरु के उपदेशों से उनका मोह भी दूर हो गया और उन्हें ज्ञान की उपलब्धि हो गई। उन्होंने अपने आश्रयदाता और ज्ञान प्रदाता गुरु की भावापन्न ह्रदय से वंदना करते हुए लिखा है–

बंदऊँ गुरु पद कंज, कृपासिंधु नर रूप हरि
महा मोह तम पुंज, जासु वचन रवि कर निकर।

(मानस बालकाण्ड)

बालक तुलसीदास को समय समय पर अपने गुरुदेव के मुख से श्रीराम की पावन कथा सुनने का अवसर प्राप्त हुआ। इस संबंध में उन्होंने कहा है–

मैं पुनि निज गुरु सुनी, कथा सो सूकर खेत
समझी नहीं तब बालपन, मैं अति रहा अचेत।

अबोध रहने से बालक तुलसी अपने गुरु मुख से सुनी रामकथा को यद्यपि पूरी तरह से समझने में असमर्थ रहे पर आगे अध्ययन करने पर बुद्धि का विकास होता गया। इस समय अनेक बार गुरु मुख सिंह राम कथा सुनते सुनते उन्हें उसका रहस्य समझ में आने लगा और उससे अनुरक्ति भी हो गयी । तुलसीदास जी स्वयं लिखते हैं–

तदपि कही गुरु बारहि बारा
समुझि परी कछु मति अनुसारा।

इसी समय राम कथा को भाषाबद्ध करने की भावना उनके मन में हुई और उन्होंने उसे भाषा में लिखने का मन ही मन संकल्प भी लिया । तुलसीदास जी ने इसका उल्लेख निम्नलिखित चौपाई में किया –

भाषा बद्ध करब मैं सोई
मोरे मन प्रबोध जेहिं होई।

बाल कांड

नाम

तुलसीदास को माता पिता द्वारा उस समय त्याग दिया गया जबकि उनका नाम करण संस्कार आदि भी न हो पाया था। दीन दशा में बालक तुलसीदास को संत मंडली ने दया करके अपने साथ रख लिया था। वे बचपन में ही दुखित हो राम को सहायतार्थ पुकारते थे। इसी समय संतों ने उनका नाम रामबोला रख दिया था जिसका उल्लेख उन्होंने स्वयं किया –

राम को गुलाम नाम रामबोला राख्यो नाम
काम यहे नाम द्वे हों कबहूँ कहत हों
तुलसी अकाज काज राम ही रीझे खीझे
प्रीति की प्रतीति मन मुदित रहत हों।

– विनय पत्रिका पृष्ठ 505

राम रूप संतों ने राम के गुलाम का नाम राम बोला रख दिया था और उसी से राम के रीझने ओर खींझने में उन्हें काज और अकाज की प्रत्यक्ष अनुभूति हो रही थी। उन्होंने कवितावली में स्पष्ट ही उल्लेख किया और लिखा है–

काम कोह लाइके दिखाइयत आंख मोह
राम बोला नाम हों गुलाम राम साहि को

(कवितावली पृ. 227)

कदाचित पीछे गुरु के यहाँ इनका नाम तुलसी रख लिया गया और बड़े होने पर इनकी विशेष

बुद्धि और रामभक्ति के बढ़ने से तुलसीदास कहा जाने लगा। वे स्वयं लिखते हैं –

नाम तुलसी भोंडे भाग से कहायो दास
किये अंगीकार ऐसे बड़े दगाबाज को
(कवितावली पृष्ठ 205)

केहि गिनती महं गिनती जस वन घास
नाम जपत भए तुलसी तुलसीदास।
(बरवै रामायण पृष्ठ 24)

विवाह और गृहस्थ जीवन -

तुलसीदास जी ने अपने गुरु के यहाँ विद्याध्ययन करने के उपरान्त युवावस्था में गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया। यद्यपि उन्होंने अपने श्वसुर या पत्नी आदि के नामों का स्पष्ट उल्लेख कहीं भी नहीं किया है, परन्तु अपने गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने और युवावस्था में काम भाव से पत्नी में अत्यधिक आसक्त रहने की बात अनेक स्थलों पर स्पष्ट रीति से व्यक्त की है–

कछु ह्वे न चाह गयो जनम जाय
अति दुर्लभ तनु पाइ कपट तजि
भजे न राम मन वचन काय
लरकाई बीती अचेत चित
चंचलता चौगुनी चाय
जीवन जुर जुवती कुपथ्य करि
भयो त्रिदोष भरि मदन वाय
मध्य वयस धन हेतु गंवायी
कृषी बनज नाना उपाय
राम विमुख सुख लयो न सपनेहु
निसि वासर तयो तिहूं ताय
ऐसे नहि सीतापति सेवक
साधु सुमति भले भगति माय
सुनै न पुलकि कहे न मुदित मन
किए जे चरित रघुवंश राय
जिन लगि निज परलोक बिगार्यो
ते लजात होत ठाड ठांय
तुलसी अजहु सुमरिं रघुनाथहिं
तरो गयंद जाकै चरण नाय।
–विनय पत्रिका पृष्ठ 508

ग्रहस्थ आश्रम को त्यागते समय का यह पद बहुत ही स्पष्ट है। तुलसीदास को बाल सुलभ चंचलता में जीवन को स्थिर कर महत् कार्य करना संभव ही न था। यौवन–काल महत्त्व के कार्य का अवसर था पर यौवनोन्माद जनित ज्वर में युवती, सुंदरी के सेवन का कुपथ्य किया जिससे मदन वाय की वृद्धि होकर ऐसा सन्निपात हुआ कि कर्तव्य कर्म की सुधि ही न रही। गृहस्थी का खर्च चलाने कृषि तथा व्यापार आदि अनेक उपायों द्वारा धनोपार्जन किया किंतु रात दिन दैहिक, दैविक अथवा भौतिक त्रिताप ज्वाला में जलता रहा। आनंद धाम राम से विमुख होते ही यथार्थ सुख और शान्ति तथा सन्तोष की स्वप्न में भी उपलब्धि न हो सकी। राम के भक्तों और साधुओं की भक्ति भाव से सेवा नहीं की जिससे यथार्थ ज्ञान पैदा न हो सका। उनके साथ सत्संग करके पुलकित ओर मुदित मन से रघुकुल राज़ श्रीराम के चरित्रों को न सुन सका। जिन पत्नी संबंधियों के लिए मैंने श्रीराम की भक्ति छोड़ अपना परलोक बिगाड़ा वे ही आज अपने स्थान पर खड़े होते देख लज्जित होते हैं। हे तुलसीदास, तू अब भी चेत जा। भक्तभय हारी पतित पावन श्रीराम का स्मरण कर जिन्होंने अपने नाम राम के लेते ही प्राण संकट में पड़े गजेन्द्र की ग्राह से अभिलंब रक्षा की। इसमें एक वाक्य से उस घटना का उल्लेख है जिसमें कहा जाता है की तुलसीदास अपनी

पत्नी पर अत्यंत आसक्त थे ओर एक बार उसके पिता के गृह जाने पर रात के समय बेचैन होकर उसके पास पहुँच गए थे। उसे उन्होंने जा जगाया तब उसने उनकी उपस्थिति पर लज्जित होकर उन्हें फटकारते हुए कहा लोकलाज त्याग कर इतने कामी कैसे बन गए ! जो यह आसक्ति जो हाड मांस की मेरी इस देह में है, यदि श्री राम भगवान से होती तो स्वर्ग की प्राप्ति हो गई होती–

बालिपने सूधे मन राम सनमुख भयो
राम नाम लेत मांगि खात टूंक टॉक हों।
परो लोक रीति में पुनीत प्रीति राम राय
मोह बस बैरी तोरि तरक तराक हों ।

– हनुमान बाहुक छंद 40

इसमें लोकरीति में पड़कर सांसारिक ग्रहस्थ जीवन में पड़ने और गृहस्थी के फेर में भगवान की भक्ति भूल बैठने का स्पष्ट ही उल्लेख है । पत्नी में आसक्त होने का पुनः तुलसीदास ने इस दोहे में भी उल्लेख किया–

दीपसिखा सम जुवति तन, मन जनि होसि पतंग।
भजहि राम तजि काम सब करहि सदा सत्संग।।

–दोहावली दोहा 269

अपने मन को संबोधित कर तुलसीदास कहते हैं – मेरे मन सुंदर युवती का शरीर दीपशिखा है। तू उसका पतंग मत बन नहीं तो जलकर भस्म हो जाएगा। काम मद का त्याग कर। राम को भज और सदा सत्संग कर। तुलसीदास जी वैराग्य लेने के अनंतर वृद्धावस्था में पुनः एक बार अपनी पत्नी से मिले थे जिसका स्पष्ट उल्लेख उनके निम्नलिखित दोहे में है–

खरिया खरी कपूर सब, उचित न पिय तिय त्याग।
के खरिया मोह मेलि के, विमल विबेक विराग।।

–दोहावली छंद 255

जब साधु होने के बाद तुलसीदास की भेंट अपनी पत्नी से हुई तब उसने उनकी झोली में खरी (गोपीचंदन) और सफेद कपूर आदि तिलक करने की सामग्री देख कर कहा– हे प्रीतम, जब आप गोपीचंदन घी कपूर आदि को झोली में साथ रखते हैं तब मुझे भी साथ क्यों नहीं ले लेते ? आडम्बरी मति में इन वस्तुओं के समान मैं भी आपको संसार में प्रसिद्ध करूँगी। यदि आपको विशुद्ध ज्ञान हो चुका है तो इन वाह्य आडंबरों को भी त्याग देना चाहिए जैसा कि मेरा त्याग किया है! तुलसीदास जी ने काम की आसक्ति से नारी के रूप पर अत्यधिक प्रेम किया था। बचपन से दुखी थे। गुरु के यहाँ उनकी सेवा कर विद्या प्राप्त करने में किशोरावस्था बीती थी। युवक होने पर सुंदर पत्नी का स्नेह प्राप्त कर अत्यधिक आसक्ति होना स्वाभाविक ही था। पर जब कामिनी के रूप पर बावले तुलसीदास ने पत्नी के प्रेम में लोक लाज की बाधा और पत्नी की उदासीनता और तिरस्कार के भाव देखे तब उनके प्रेमी मन पर आघात लगा। प्रेमी प्रेम का तिरस्कार न सह सका। बचपन से राम नाम और साधु संतों के समागम में जीवन व्यतीत करने वाले तुलसीदास ने यौवन में जिस तरह प्रेम में सर्वस्व भुला दिया था, वे राम भक्ति में भी उसी प्रकार लीन हो गए जिसकी ध्वनि उनके निम्नलिखित वाक्य में देखी जा सकती है–

जिन लगि निज परलोक बिगार्यो
ते लजात होत ठांढ़ ठांय ।

–विनय पत्रिका पृष्ठ 508

गृहत्याग

गृहस्थ आश्रम त्यागते समय उनकी अवस्था 32 वर्ष की थी। सम्वत् 1589 में उनका जन्म हुआ

था। ग्रहस्थ आश्रम त्याग कर वैराग्य लेने के पीछे वे काशी पहुंचे जहाँ संवत 1621 विक्रमी में उन्होंने पंडित गंगा राम जी के कहने से रामाज्ञा प्रश्न की रचना की जिसका उल्लेख उन्होंने स्वयं ही निम्नलिखित दोहे में किया है–

सगुन प्रथम उनचास सुभ, तुलसी अति अभिराम
सब प्रसन्न सुर भूमि सुर, गो गन गंगाराम।

(रामाज्ञा प्रश्न सर्ग 1 सप्तक 7 दोहा 7)

पंडित गंगाराम ज्योतिषी का स्थान प्रहलाद घाट काशी में आज भी है। इन्हीं के यहाँ प्रथम काशी में जाकर तुलसीदास जी ठहरे थे। गंगाराम जी के उत्तराधिकारी अभी भी वहाँ हैं। उनके पास उनका एक प्राचीन चित्र है जिसे जहांगीर बादशाह की आज्ञा से बनवाया बताते हैं। इसकी रचना की तिथि के विषय में स्वयं तुलसी दास लिखते हैं–

सगुन सत्य ससि नयन गुन
अवधि अधिक नय बान
होई सुफल सुभ जासु जस
प्रीति प्रतीति प्रमाण ।

(रामाज्ञा प्रश्न सर्ग 7 सप्तक 7 दोहा पृ.3)

अर्थात् चन्द्रमा, नेत्र, गुण, नीति और वास के आधिक्य की अवधि (समय) में यह सगुन (माला) जिसका सुयश यह है कि प्रीति प्रतीति के अनुसार ही वे सुफल होती है, सत्य है ।

उसमें चंद्र से 1, नेत्र से 2, गुण से 6, नीति से 4, बाण से 5 का तात्पर्य है। नीति के 4 और बाण के 5 में 1 का अंतर है। इससे यहाँ तात्पर्य 1 से है। इस प्रकार 1261 अंक आते हैं और कवि– प्रथा में –अंक नाम वामती गति के नियम से इसके अंत से पढ़ने से संवत 1622 विक्रमी स्पष्ट निकलता है, जो कवि को अभिप्रेत है। साधना हेतु ही उन्होंने काशी का सेवन किया था क्योंकि यह विद्वानों और महात्माओं का केंद्र थी। तुलसीदास ने स्वयं लिखा है–

मुक्ति जन्म महि जान, ज्ञान खानि अघ हानि कर
जहं बस संभु भवानि सो काशी सेइय कस न।

रामचरित मानस

तीव्रतम वैराग्य में अपने सम्पूर्ण प्रेम की आधार प्रिय पत्नी का परित्याग कर तुलसी राम भक्ति की ओर अग्रसर हुए। उनके बालपन के संस्कार ने भी उस समय प्रभाव डाला। वे प्रेम में विह्वल हो राम भक्ति में तल्लीन योगी बन गए। उन्हें विश्व के विषय आदि दोषों और कपट प्रपंच से वैराग्य हो गया था, पर वे अपने उपास्य विश्वपति का इस चराचर विश्व में साकार दर्शन करने वाले थे अतएव वे लोक सेवा में लोकपति की सेवा का मर्म समझकर सर्वव्यापी विभु श्री राम से प्रति वैराग्य की दृढ़ता और ज्ञान के विकास हेतु तीर्थाटन और संत समागम करने लगे। इस समय राम कथा ही उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य हो गई ।

मुख्य निवास त्याग

वे प्रधान रूप से काशी वासी हो गए ओर उनका अधिकांश जीवन काशी में हीं व्यतीत हुआ। तुलसी दास जी का स्मारक काशी में है जिनमें निम्नलिखित चार स्थल अत्यधिक प्रसिद्ध हैं –

काशी घाट

तुलसीदास जी का मंदिर जहाँ वे विशेष रूप से रहे और जहाँ उनका स्वर्गवास हुआ वह मंदिर गंगा के घाट पर है उसमें प्राचीनता स्पष्ट झलकती है। कहीं कहीं पुनर्निर्मित अवश्य हुआ है। नीचे खंड में एक कमरा है जिसमें हनुमान जी की मूर्ति है। इसे गोस्वामी तुलसीदास की कोठी कहते हैं। ऊपर के कक्ष में कुछ पुरानी मूर्तियाँ हैं।

यहाँ लकड़ी का एक टुकड़ा है जिसे पुरानी नौका का अंश कहते हैं। यह गोस्वामी जी की उस नाव का टुकड़ा है जिसपर वे गंगा पार जाते आते थे। यहाँ एक जोड़ा खड़ाऊँ हैं जिन्हें गोस्वामी जी पहनते थे गोस्वामी जी का एक चित्र भी है उनके स्वर्गवास के समय का निम्नलिखित सुप्रसिद्ध दोहा इस स्थान से संबंध बतलाता है–

संवत् सोलह सौ असी असी गंग के तीर
श्रावण शुक्ला सप्तमी तुलसी तज्यो शरीर

गोपाल मंदिर के अहाते में एक निजी कोठी है। यहीं बैठकर उन्होंने विनय पत्रिका के अनेक पदों की रचना की। यह स्थान बिंदु माधव जी के समीप है।

प्रहलाद घाट :

काशी में पहले गोस्वामी जी यहीं ठहरे थे। यहाँ गंगा राम ज्योतिषी ने उनको स्नेह से ठहराया था। इनके उत्तराधिकारी अब भी वहाँ रहते हैं । उनके पास गोस्वामी जी का एक चित्र है जिसे वे प्राचीन बताते हैं ।

संकट मोचन हनुमान :

समीप ही एक नाले पर संकट मोचन मारुति की मूर्ति है जिसकी स्थापना गोस्वामी जी ने की थी। उन्ही की स्तुति में संकट मोचन स्तोत्र की रचना की गई है।

काशी की जन श्रुति के अनुसार तुलसीदास पहले हनुमान फाटक पर रहते थे। फिर मुसलमानों के उपद्रवों के कारण गोपाल मंदिर के अहाते में रहने लगे थे। पर वहाँ भी जब वल्लभ संप्रदाय के गोसाई लोगों से विरोध पड़ा तब वे असी घाट पर रहने लगे। अपनी रामायण के अनुसार उन्होंने रामलीला प्रारंभ की थी जो अब भी वहाँ होती है।

अयोध्या में गोस्वामी जी बहुत समय तक रहे और यही तुलसी चौरा नामक स्थान में छोटा सा तुलसी का मंदिर और मूर्ति है जहाँ उन्होंने विश्ववंद्य महाकाव्य रामचरित मानस की रचना की थी।

नवमी भौमवार मधुमासा
अवधपुरी यह चरित प्रकासा ।

वे चित्रकूट की यात्रा बड़ी श्रद्धा और स्नेह से करते थे। इसका उल्लेख उन्होंने कवितावली विनय पत्रिका में स्वयं किया है ।

तीर्थराज प्रयाग में भी वे संत समागम के हेतु रहे थे। कवितावली में अनेक छंदों में उन्होंने प्रयाग का स्वाभाविक और मनोहर वर्णन किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने बद्रिकाश्रम और पंचवटी आदि की भी यात्रा की थी जिसका उल्लेख उनकी विनय पत्रिका में है। वे मथुरा वृन्दावन भी गए थे। इन यात्राओं से उनको सत्संग का लाभ तो हुआ ही था पर साथ ही उनकी ख्याति भी दूर दूर तक फैल गई।

यश प्राप्ति :

इस समय संत समाज के साथ ही जनता में भी उनका सम्मान खूब बड़ा । बड़े बड़े साधु संत और राजा महाराजा गण अब तुलसीदास को आदर देकर उनके चरण पूजने लगे थे। तुलसी दास ने अपने सम्मान का कारण रामभक्ति को ही माना है। वे तो उस समय भी परमात्मा के सामने अपने आप को अधम जीव मात्र ही अनुभव करते थे। वे स्वयं भी कहते हैं–

छार ते संवारि के पहार हूँ ते भारी कियो
गारो भयो पंच में पुनीत पच्छ पाह के
हों तो जैसो तब तैसो अब अधमाई कै

पेट भरो राम रावरेई गुन गाइ के ।

(कवितावली पृष्ठ 215)

उनका तो तो स्पष्ट ही कहना था–

लोक रीति विदित विलोकियत जहाँ तहां
स्वामी के सनेह स्वान हूँ को सन्मान है।

(कवितावली पृष्ठ 216)

वे अपने इष्टदेव श्रीराम से कहते हैं–

हो तो सदा खर को असवार
तेहरोई नाम गयंद चढ़ायो।

(कवितावाली 215)

अपनी दीन वाल्य अवस्था को अपने प्रौढ़ काल के इस सम्मान से तौलते हुए उन्होंने लिखा है–

घर घर मांगे टूक पुनि, भूपत पूजे पांय
जो तुलसी तब राम बिनु सो अब राम सहाय।

(दोहावली दोहा 109)

इस समय उनको अपने सम्मान पर कभी कभी गर्व भी होता था जिसका प्रमाण हमें उनके निम्नलिखित कथन से मिलता है–

छाछी को ललात जे ते राम नाम के प्रसाद
खात खुनसात सोंधे दूध की मलाई है।

– कवितावली

तुलसी की प्रसिद्धि शीघ्रता से बढ़ती गई और उसी के साथ प्रतिष्ठा भी दिन दूनी रात चौगुनी होती गई। यहाँ तक कि आदि कवि महामुनि बाल्मीकि के समान ही वे देश के पूज्य हो गए । इसका उल्लेख उनके निम्नलिखित छंद में स्पष्ट है–

जाति के सुजाति के कुजाति के पेटागि बस
खाए टूक सबके विदित बात दुनी सो
मानस वचन काय किए पाप सति भाय
राम को कहाय दास दगाबाज पुनी सो
राम नाम के प्रभाव पाय महिमा प्रताप
तुलसी से जग मानियत महा मुनी सो
अति ही अभागो अनुरागत न राम पद
मूढ़ ए तो बड़ो अचरज देख सुनी सो ।

विरोध -

महात्माओं और महापुरुषों का जीवन संघर्ष मय होता है। उन्हें विरोध का सामना करना ही पड़ता है। निंदक विपत्तियों की तीखी बौछार से वे कभी कभी विचलित भी हो उठते हैं। विश्ववंद्य महाकवि और लोकगुरु तुलसीदास की प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा पर डाह करने वाले कीर्ति लोलुप विद्याभिमानियों और पाखंडी साधु तथा संकुचित विचार वाले साम्प्रदायक अंधविश्वासियों ने उन्हें वदनाम करने और कष्ट देने में कुछ उठा न रखा।

अंत में उनसे खींझकर विचिलितमना तुलसी दास ने अनेक बार दुखित हो जो कुछ लिखा है उसमें भावुक हृदय के उद्‌गार प्रतिबिंबित होते हैं। ईर्ष्यालु प्रकृति के लोगों को लक्ष्य कर उन्होंने स्पष्ट कहा है–

तुलसी जे कीरत चहै, पर कीरत को खोय।
तिनके मुंह मसि लागि है मिटहि न मरिहै सोय।।

जो उत्तम कार्य के द्वारा कीर्ति संपादन करने के मार्ग का त्याग कर किसी यशस्वी की निंदा करके कीर्ति की अभिलाषा रखते हैं उनके माथे पर अपकीर्ति की ऐसी कालिख लगती है जो धोते धोते मर जाने पर भी नहीं छूटती। विरोधियों की निंदा को सहते हुए विरक्त गृहत्यागी तुलसीदास अपने हृदय को धैर्य देते हुए लिखते हैं–

लोग करें पोच सो न सोच न सँकोच मेरे
व्याह न बरेखी जाति पाति न चहत हों

तुलसी अकाज काज राम ही के रीझे खीझे
प्रीति की प्रतीति मन मुदित रहत हों।
—कवितावली

जान पड़ता है तुलसी राम जी की जाति और उनके कुल गोत्र आदि के प्रश्नों को लेकर एक और विवाद प्रबलता से चल पड़ा था। इसके विरोध से विचलित हृदय तुलसी दास जी लिखते हैं —

मेरे जाति पाँति न न चहों काऊ की जाति पांति
मेरे कोऊ काम को न हों काऊ के काम को
लोक परलोक रघुनाथ ही के हाथ सब
मोह है भरोसो तुलसी के एक नाम को
अति ही अयाने उपखानों नाहिं बूझें लोग
साह ही के गीत गोत होत है गुलाम को
साधु के असाधु के भलो है सोच पोच कहा
का काहू के द्वार परो जो हों सो हों राम को
— कवितावली

निंदकों से व्यथित और विचलित तुलसीदास ने विरोधियों को फटकारते हुए अंत में स्पष्ट कह दिया —

धूत कहो अवधूत कहो रजपूत
कहो जुलहा कहो कोऊ
काऊ की बेटी सों बेटा न ब्याहब
काऊ की जाति बिगार न सोऊ
तुलसी सरनाम गुलाम है राम को
जाको रुचै सो कहे किन कोऊ
मांग के खेबो मसीद के सोएबो
लेबे को एक न देवे को दोऊ
— कवितावली

राम के भक्त तुलसीदास को काशी के कट्टर सांप्रदायिक खेमों ने बहुत ही सताया था जिससे दुखी हो उन्होंने शिव जी को उलाहना देते हुए लिखा

देव सरि सेवों वामदेव गाँव रावरे ही
नाम राम ही के मागि उदर भरत हों
दीजै जोग तुलसी न लेत काहूँ को कछुक
लिखी न भलाई भाल पोच न करत हों
ए ते पर हू जो कोऊ रावरो हुए ज़ोर करै
ताको ज़ोर देवै दीन द्वारे गुदरत हों
पाय कै उराहनों उराहनो न दीजे मोहि
काल कला कासीनाथ कह निवरत हों
— कवितावली

विभिन्न शाखाओं के शिवोपासकों द्वारा विरोध की प्रबलता से परितप्त हो शिवजी से तुलसीदास ने एक स्थल पर और भी कहा है—

भूत भव भवत पिसाच भूत प्रेत प्रिय
आपनी समाज शिव आपु नीके जानिए
नाना वेष वाहन विभूषन वसन वास
खान पान बलि पूजा विधि को बखानिए
राम के गुलामन की रीति प्रीति सुधी सब
सब सों सनेह सब ही को सनमानिए
तुलसी की सुधरे सुधारें भूत नाथ ही के
मेरे माय बाप गुरु संकर भवानिये
— कवितावली

एक स्थान पर और भी कहा है—

गांव वसत बामदेव मैं कबुहों न निहोरे
आधि भौतिक बाधा भई ते किंकर तोरे
वेगि बोलि बरजिए करतूति कठोर
तुलसी दल रुंध्यो चहे सठ साखि सिहोरे
— विनय पत्रिका

गोरखपंथी हठयोगियों द्वारा जो करामात दिखाते हुए जनसमूह पर प्रभाव डाल उद्दंडता की जा रही थी उस पर तुलसीदास सताए गए थे। इसी से उन्होंने लिखा है—

गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग

निगम नियोग ते सो कलि ही छरी सो है ।

अत्यधिक खीझ कर पाखंडी अलख जगाने वाले योगियों को फटकारते वे कहते हैं –

हम लख हमहिं हमार लख हम हमार के बीचु
तुलसी अलखहिं का लखे राम नाम जप नीचु।

– तुलसी सतसई

संत मत के कबीर पंथी आदि द्वारा अनर्गल आक्षेप रहना नहीं देस बिराना है, भोर भये उठ जाना है आदि कहते हुए वेद शास्त्र की निन्दा और लोक की मर्यादा का उल्लंघन तथा उच्छृंखलता का प्रचार देख तुलसीदास लिखते हैं –

साखी सब्दी दोहरा कहि कहनी उपमान
भगति निरूपहिं भगत कलि निंदहिं वेद पुरान
श्रुति सम्मत हरि भक्ति पथ संयुत विरति विवेक
तेहिं परिहरहिं विमोह बस कल्पहिं पंथ अनेक।

– दोहावली

इन विरोधियों का भी विवेकी भक्त तुलसीदास ने कोई विरोध नहीं किया और न उन से वे भयभीत हुए। उन्हें अपने समर्थ स्वामी श्रीराम की दयालुता और भक्त वत्सलता का विश्वास था । वे स्वयं भी लिखते हैं–

पुण्य पाप जस अज़स के भावी भाजन भूरि
संकट तुलसीदास को राम करहिंगे दूरि

– दोहावली

इस समय तुलसीदास का सम्मान बढ़ चुका था और उनकी शक्ति भी बढ़ चुकी थी पर उन्होंने उस शक्ति को विश्व कल्याण के लिए लगाना उचित समझा। शक्ति रहते हुए भी उन्होंने विरोधियो को नीचा दिखाने या स्वयं बदला चुकाने का प्रयत्न नहीं किया। शक्ति संपन्न उदाराशय तुलसीदास रामभक्ति के उच्च आदर्श पर थे। उन्होंने स्वयं लिखा है–

असन वसन हीन विषम विषाद लीन
देख दीन दूबरो करै न हाय हाय को
तुलसी अनाथ सों सनाथ कियो रघुनाथ
दियो फल सील सिंधु अपने सुभाय को
ताते तनु पेखियत पीर बर तोर मिस
फूटि फूटि निकसत लोन राम राय को

–हनुमान बाहुक छंद 41

उन्होंने मारुति को बाहु पीड़ा को हराने की प्रार्थना करते हुए लिखा है–

आपने ही पाप तें त्रिताप ते कि साप ते
बड़ी है बांह वेदना कही न सही जाति है
औषधि अनेक मंत्र तंत्र टोंटकादि किए
वादि भए देवता मनाए आधिकात हैं ।

इस समय उन्होंने मारुति से बांह पीड़ा को हरने की प्रार्थना करते हुए पनः लिखा है –

जानत जहान हनुमान को निवार्यो जन
मन अनुमान बलि बोल न बिसारिये
साहसी समीर के दुलारे रघुबीर जू के
बांह पीर महावीर वेग ही निवारिए

– हनुमान बाहुक 20

जान पड़ता है की बाहु की पीड़ा उनको अधिक समय तक रही थी इसी से उन्होंने मारुति जी को उलाहना देते हुए कहा है–

चेरो तेरो तुलसी तू मेरो कहो रामदूत
ढील तेरी वीर मोहि पीर ते पिरात है

– हनुमान बाहुक

जब पड़ता है इस पर मारुति ने शीघ्र ही उनकी पुकार सुनी और उनकी बाहु पीड़ा दूर कर दी। इसी समय मारुति की स्तुति करते हुए उन्होंने स्पष्ट ही लिखा है–

दुर्जन को काल सो कराल पाल सज्जन को
सुमरे हरन हार तुलसी की पीर को
सीय सुख दायक दुलारो रघुनायक को
सेवक सहायक है साहसी समीर को
–हनुमान बाहुक

दोहावली में भी भुज मूल या वाहु की पीडा और उसके दूर करने को हनुमान जी से प्रार्थना की गई है–

तुलसी तनु सर सुख सजल,
रुज भुज गज वर जोर।
दलत दयानिधि देखिए कपि केसरी किसो।।

श्री रघुनाथजी से भी कहा है–

भुज तरु कोटर रोग अहि, वरबस कियो प्रवेस
बिहग राज वाहन तुरत, काटिय मिटय कलेश
तुलसी रघुवर सेवकहिं, खल डांटति मन मांखि
बाजराज के बालकहिं, लवा दिखावत आँखि ।
– दोहावली 144

यही सोच समझकर वे किसी से कुछ न कहते थे। सबकी सहते थे और फिर निर्विकार राम भक्ति में लीन उन्हीं के भरोसे निश्चिंत रहते। इस का उल्लेख करते हुए उन्होंने स्वयं से कहा है–

कोऊ कहें करत कुसाज दगाबाज बडो
कोऊ कहे राम को गुलाम खरो खूब है
साधु जाने महा साधु खल जाने महाखल
वानी झूठी साची कोटि उठत हुजूम है
चहत न काहू सों न कहत काहूँ सों कछु
सब की सहत उर अंतर ना ऊब है
तुलसी को भलो सोच हाथ रघुनाथ ही के
राम की भगति भूमि मेरी मति दूब है ।
(कवितावली छंद 108)

रुग्णावस्था

शरीर व्याधि का मंदिर है। पंचभौतिक स्थूल शरीरधारी गोस्वामी गोस्वामी तुलसीदास की जीवन में दो बार रोग के भयानक आक्रमण सहन करना पड़ा था। उसमें भी वेदना से चीख उठे राम भक्त रोगी तुलसी दास ने उस समय भी धैर्य रखकर अपने कृपालु देवता भगवान शंकर रुद्रावतार मारुति नन्दन हनुमान और जगन्नियंता सर्वेश्वर भगवान श्री रामचन्द्र जी की कृपा द्वारा ही रोग की निवृत्ति की थी। इस समय उन्होंने स्तुति करते हुए जो छन्द लिखे हैं उनमें जो कहा रोमांचकारी वर्णन है। तुलसीदास जी अपनी युवावस्था के अपने अहंकार को समझते थे जिसमें वे राम को भूल गये थे। वे लिखते हैं–

बालपने सूधे मन राम सनमुख भयो
राम राम लेत माँगि खाति टूक टाक हों
तुलसी गुसाँई भयो भोंड़े दिन भूल गयो
ताको फल पावत निदान परिपाक हों।
(कवितावली पृष्ठ 263 छंद 40)

राम का अवलंब लेने वाले निर्भय भक्त तुलसी दासजी ने स्पष्ट लिखा है–

जो पै कृपा रघुपति कृपालु की
वैर घोर के कहा सरै
होइ न बाकों बार भगत को
कोउ कोटि उपाय करै
तकै नीच जो मीच साधु की
सोइ पामर तेहि मीच मरै
वेद विदित प्रह्लाद कथा
सुनि को न भगति-पथ पाँव धरै
तुलसीदास रघुवीर बाहु बल
सदा अभय काहूँ न डरै !
(विनय पत्रिका पृ.137)

रचिवे को विधि जैसे पालवे को हरि हर
मीच मारिवे को ज्यायवे को सुधा पान भो
आरत की आरति निवारवे को तिहू पुर
तुलसी को साहिब हठीलो हनुमान भो

— हनुमानबाहुक छंद 11

जान पड़ता है कि एक बार भयानक बीमारी से हनुमान जी द्वारा बचाए गए तुलसी दास पुनः दूसरी बार रोगग्रस्त हुए थे। इस बार उन्होंने अपार कष्ट भोगा था। इस पीड़ा के विषय में उन्होंने स्वयं कहा है—

पांय पीर पेट-पीर बांह पीर मुह पीर
जर्जर सकल सरीर पीर मई है
देव भूत पितर करम खल काल ग्रह
मोहि पर धवरि दमानक सी दई है
हों तो बिन मोल को बिकानो बलि बारे ही तें
ओट राम नाम की ललाट लिख लई है
कुंभज को किंकर बिबस बूढ़े गोखुरनि
हाय राम राय ऐसी हाल कहूँ भई है ।

—हनुमान बाहुक 38

इस बार भी आदर्श रामभक्त मारुति ने अपने तुलसी को रोगों द्वारा आक्रांत और व्यथित देखा तब पुनः कृपा कर उन्हें रोग मुक्त किया। इस बार उन्हें वात व्याधि थी। घोर वर्षा ऋतु में उसकी वेदना अत्यधिक बढ़ गई थी। स्वयं तुलसीदास ने इस विषय में कहा है—

घेर लियो रोगनि कुजोगनि कुलोगनि ज्यों
वासर जलद घन घटा धुकि धायी है
बरसत वारि पीर जारिये जवासे जस
रोष बिनु दोष धूम मूल मलिनाई है
करुणानिधान हनुमान महा बलवान
हेरि हंसि हाँकि फूंक फौज तें उड़ाई है
खायो हुतो तुलसी कुरोग रोग राकसनि
केसरी किसोर राखे वीर वरियाई है।

(हनुमान बाहुक छंद 35)

इस प्रकार हम देखते हैं श्रीराम के अनन्य भक्त तुलसी ने शरीर व्याधि के निमित्त भी औषधि का सहारा न ले 'एक विश्वास' के भरोसे के प्रण का भली भाँति पालन कर लोक को अनन्य प्रेमी की दृढ़ इच्छा शक्ति और रामभक्ति के बल का प्रत्यक्ष परिचय दे दिया। तुलसीदास ने खलों से रक्षा हेतु मारुति जी को पुकारते हुए लिखा है—

वीर बरजोर घटि ज़ोर तुलसी के घोर
सुनि सकुचाने साधु खल गन गाजे हैं
विगरी संवार अंजनीकुमार कीजे मोहि
जैसे होत आए हनुमान के निवाजे हैं ।

—हनुमान बाहुक छंद 15

तुलसी दास अपने साधु और सरल स्वभाव से सदाचार प्रिय ओर रामभक्त लोक सेवा—रत अपनी दारुण व्याधि और अपने निर्दोष आदर्श लोक व्यवहार में वैषम्य देख कर हृदय की जानने वाले वंद्य आचार्य मारुति से बड़ी सरलता से पूछते हैं—

सुजान सिरोमणि हो हनुमान
सदा जन के मन वास तिहारो
ढारो बिगारी मैं का को कहा
केहि कारण खीझत हों तो तिहारो
साहिब सेवक नाते ते हो तो कियो
कियो तो तई तुलसी को न चारो
दोष सुनाए ते धागेहु को हुसियार
हुइहों मन तो हिय हारो ।

(कवितावली पृ. 256 छंद 16)

रोग ग्रस्त होने पर उन्होंने भगवान शंकर से अधीर होकर मृत्यु की कामना करते हुए जो

प्रार्थना की है उसका कारुणिक वर्णन उनके निम्नलिखित छंद में दर्शनीय है–

चेरो राम राय को सुजस सुन तेरो हर
पाहूँ तर धाइ रह्यो सुर सरि तीर हों
वामदेव राम को सुभाव सील जानि जिय
ना ते नेह जानियत रघुवीर भीर हों
अभिभूत वेदन विषम होत भूतनाथ
तुलसी विकल पाहि पचत कुपीर हों
मारिये तेरे अनायास कासी बास खास फल
ज्याइये तो कृपा करि निरुज सरीर हों
जीवे की न लालसा दयालु महादेव मोहि
मालुम है तोहि मरवेइ को रहत हों
काम रिपु राम के गुलामनि को कामतरु
अवलम्ब जगदंब सहित चहत हों।
रोग भयो भूत सो कुपूत भयो तुलसी को
भूतनाथ पाहि पद पंकज गहतु हों
ज्याइये तो जानकी-रमन जन जानि जिय
मारिये तो मांगी मीचु सूचिये कहत हों ।

–कवितावली छंद 166– 167

इन्हीं दो व्याधियों को दूर करने हेतु उन्होंने जिस बाहुक की रचना की है उसमें राम भक्ति की शक्ति की महिमा गाते हुए स्पष्ट ही मारुति और श्रीराम से ही विनम्र यह अनुरोध किया–

उथपे थपन थिर थपे उथपन हार
केसरी कुमार बल आपनो सँभारिये
राम के गुलामनि को काम तरु रामरूप
रामदूत मो से दीन दूवरे को तकिये तिहारिये
साहिब समर्थ तो सो तुलसी के माथ पर
सोऊ अपराध बिनु बीर बांधि मारिए
पोखरी विसाल बाहु बलि बारि चर पीर
मकरी ज्यों पकरि के वदन विदारिए

हनुमान बाहुक छंद 22

राम है मात पिता गुरु बंधु
संगी सखा सुत स्वामि सनेही
राम की सौंह भरोसो है राम को
राम रंग्यो रुचि राच्यौ न के ही
जीयत राम मुए पुनि राम सदा
रघुनाथहि की गति जे ही
सोइ जिए जग में तुलसी न
तु डोलत घोर मुए धरि देही

– (कवितावली पृ. 91 छंद 36)

भक्ति के आदर्श और बल के विषय में तो तुलसी दास ने स्पष्ट ही कहा है –

सेवक एक से एक भए तुलसी
जग में तेहु ताप न दाड़े
प्रेम बड़ो प्रह्लादहु को जिन
पाहन ते परमेसुर काड़े ।

श्री राम अनन्य प्रेमी भक्त को त्रिताप संताप नहीं देते। वह पत्थर से भी सर्वशक्तिमान परमेश्वर को निकालने की शक्ति रखता है। इस आदर्श को सन्मुख रखने वाले दृढ़ निश्चयी अनन्य भक्त तुलसी उनसे विनय कर रोग हरण किया तो इसमें आश्चर्य कैसा?

अवसान (मृत्यु)

कवितावली में गोस्वामी जी ने रुद्र बीसी और मीन के शनि काशी में महामारी के प्रकोप का वर्णन किया है। ज्योतिष की गणना के अनुसार रुद्र बीसी और मीन के शनि का समय संवत् 1665 विक्रमी से संवत् 1685 विक्रमी तक का है। इस समय के मध्यकाल में भारत में भयंकर प्लेग का प्रकोप हुआ था। यह समय जहांगीर बादशाह

के राजत्व काल का है। इस समय काशी में प्लेग के प्रकोप से हुई दयनीय दशा का तुलसीदास ने बड़ा ही हृदय विदारक वर्णन किया है। इस भयंकर रोग के भीषण प्रकोप का आंखों देखा वर्णन स्वयं सम्राट जहांगीर ने अपने ग्रंथ तुजुक जहांगीरी में किया है। केवल आगरे ही में प्रतिदिन सैकड़ों मनुष्य इस रोग से पीड़ित हो प्राण त्याग रहे थे। जिसके घर में इसका प्रवेश हुआ वह निर्जन शमशान बन गया। मृतकों का जलाना या दफनाना असंभव सा ही हो गया था। भय विह्वल नर नारी प्राण रक्षा हेतु घरबार छोड़ भाग रहे थे । यह निश्चित प्लेग का प्रकोप था जो चूहों पर शीघ्र प्रभाव डाल मनुष्यों की गिल्टी आदि के रूप में रोगी के स्पर्श मात्र से अन्य व्यक्ति को लग उसे मृत्यु का ग्रास बना लेता। इसके वर्णन से स्पष्ट इसे मुसलमान इतिहासकारों ने बर्बा ये बाउन और तुलसीदास ने महामारी नाम दिया है। प्रोफेसर ईश्वरी प्रसाद एम ए डी लिट ने अपने 'भारत में मुस्लिम शासन' नामक इतिहास ग्रन्थ में इस प्रकार वर्णन किया है– "जब सम्राट गुजरात की यात्रा से लौट रहा था तब उसे हिंदुस्तान में प्लेग के प्रकोप का समाचार मिला। जहाँगीर इस बीमारी के विषय में संक्षिप्त में लिखता है कि यह काँख के नीचे अथवा गले में गिल्टिओं के निकलने से होती है जिससे लोग मरते हैं। तत्कालीन इतिहास लेखक मुतमादखां लिखता है यह दुष्ट रोग पहले पहले पंजाब में प्रारंभ हुआ फिर सरहिंद में फैला और उसके बाद दूब में पहुंचा। यहाँ दिल्ली और उसके निकट के नगरों तथा गांव तक फैल गया। उसने प्लेग के रूप का जो वर्णन किया है वह आज भी उसी तरह ठीक है जिस तरह लिखने के समय था। उसका कहना है–

'जब इसका प्रारंभ होता था तब एक चूहा अपने बिल से पागल के समान निकलता था और दरवाजे अथवा दीवाल से टकरा कर प्राण दे देता था। यदि उस घर के रहने वाले उसी समय उस घर को त्याग देते और जंगल की खुली हवा में रहने लगते तो इनके प्राणों की रक्षा हो जाती अन्यथा उस धरती पर सभी रहने वाले भी तो मरते ही थे साथ ही उस संपूर्ण गांव के सभी जीव मृत्यु के ग्रास बन जाते थे।

यदि कोई व्यक्ति उस रूप से मरे मृतकों या उसके वस्त्रों को छूता तो वह भी संसर्ग से फिर जीवित नहीं रह पाता था। इस संसर्ग जनित रोग का प्रभाव हिंदुओं पर अपेक्षाकृत अधिक था। लाहौर में इसका इतना भीषण प्रकोप था कि एक ही घर के 10–10, 20–20 आदमी मर रहे थे और उनके सभी पड़ोसी मुर्दों की लाशों की दुर्गन्ध के कारण अपने घरों को त्यागने को विबश होते थे। कोई भी व्यक्ति प्राणों के भय से उनके समीप जाने का साहस न करता था। कश्मीर में भी इसका प्रकोप बहुत था। यहाँ तक कि दरवेश ने जब अपने मित्र की लाश को दफनानें की पूर्व नहलाया तब दूसरे दिन वह मर गया। एक गाय जिसने उस स्थान की घास चरी थी तो वह एवं जिस व्यक्ति ने उस गाय का गोश्त खाया तो वह भी तुरंत ही मर गया। यहाँ तक कि वे कुत्ते जिन्होंने उस गाय का मांस खाया, उसी स्थान पर मर गये। हिंदुस्तान में ऐसा कोई स्थान न बचा था जहां प्लेग न हुआ हो। यह बीमारी आठ वर्ष तक रही। सन् 1618– 19 में इसका आगरा में पुनः प्रकोप हुआ और तुरंत ही आस पास के नगर और गांव इससे अछूते न बचे। राज्य के सेवकों ने सम्राट को सूचित किया कि वे राजधानी मैं ही

रहें। मृत्यु की दैनिक औसत संख्या औसत 100 के करीब थी। अमीरों के भवनों से लेकर गरीबों की झोपड़ी तक सर्वत्र उसका प्रकोप था। इसका कोई प्रमाण कहीं नहीं मिलता कि राज्य की ओर से इस विनाश कारी रोग के आक्रमण को रोकने का कोई प्रयत्न किया गया। इतिहास लेखक मुतमाद खान लिखता है 'उस समय तक मनुष्य के जाने में आए, सुने और लिखे रोग सभी की अपेक्षा प्लेग बहुत भयंकर था।'

प्रोफेसर माताप्रसाद गुप्त एमए डी लिट अपने ग्रंथ 'तुलसीदास' में रूद्र बीसी और मीन के शनि तथा प्लेग के प्रकोप से समय का मिलान करते हुए लिखते हैं– संवत 1680 विक्रमी इसके भारत में पहली बार आने से लेकर विक्रमी संवत 1681 तक उसके बने रहने तक की अवधि है और संवत 1681 विक्रमी कवि तुलसी की मृत्यु की तिथि का वर्ष है– तुलसीदास पृष्ठ 144

काशी में उस समय मृत्यु की यह विभीषिका नाच उठीं थी। हाहाकार होने लगा। भीषण रोग के प्रकोप के कारण नर नारियों के दारुण चीत्कार और करुण क्रंदन से तुलसीदास अत्यंत व्यथित हो उठे। संसार के दुःख हर्ता भक्तवत्सल भगवान राम और उनके संबंध से महान देवी देवताओं से नर नारियों के संकट हरण की उन्होंने प्रार्थना बड़े ही जोरदार रीति से की। उन्होंने संसार के दुख हर्ता करुणा भक्त वत्सल भगवान राम और उनके संबंध से महान देवी देवता को सहायतार्थ पुकारते हुए समग्र संसार के स्वामी से संवेदनशील साधु तुलसी ने दीन प्रार्थना में करते हुए घोर उपेक्षा पर साफतौर से आश्चर्य के भाव रखे । तत्कालीन काशी के बारे में वे लिखते हैं –

संकर सहर सर नर नारि वारिचर
विकल सकल महा मारी माँझ भई है
डूबत उतरात फहरात मरि जात
भभरि भगत जल थल मीचु मई है
देव न दयालु महिपाल न कृपालु चित
बारानसी बाढति अनीति नित नई है
पाहि रघुराज पाहि कपिराज रामदूत
राम हूँ की बिगरी तुही सुधार लई है।

–कवितावली पृष्ठ 156 छंद 176

इस भयंकर प्लेग प्रकोप के कारण तुलसीदास ने लिखा है –

लोगन के पाप कैधों सिद्ध सुर साप कैधों
काल के प्रताप कासी तिहूं ताप तई है !

इष्टदेव श्रीराम से प्रार्थना करते हुए विह्वल होकर उन्होंने लिखा है–

विरची विरंचि की बसति विश्वनाथ की जो
प्रान हू ते प्यारी पुरी केशव कृपालु की
ज्योति रूप लिंग मई अगनित लिंग मई
मोक्ष वितरनि विदरनि जगजाल की
देवी देव देवसरि सिद्ध मुनिवर वास
लोकपति विलोकत कुलिपि भोंडे भाल की
हा हा करे तुलसी दयानिधान राम ऐसी
काशी की कदर्थना कराल कलि काल की

– कवितावली पृष्ठ 159 छंद 182

शिवजी से अपनी पुरी के विनाश देखते सहायतार्थ न आने पर खींझकर तुलसीदास उन कृपालु महादेव शंकर से कहते हैं–

विश्वनाथ पुर फिरी आन कलि काल की
छ:मुख गनेश ते महेश के प्यारे लोग
विकल विलोकियत नगरी विहाल की
पुरी सुर वेलि केलि काटत किरात कलि

निठुर निहारिए उघारि डीठि भालकी
— कवितावली पृष्ठ 152 छंद 169

उन्होंने महामारी आदि जैसे प्रकोपों पर शासन करने वाली जगदम्बा आदिशक्ति से भी प्रार्थना करते हुए लिखा है—

रचत विरंचि, हरि पालत,
हरत हर तेरे ही प्रसाद
जग अग जग पालिके
तोहि में विकास विश्व
तोहि में विलास सब
तोहि में समात मातु भूमिधर बालिके
दीजे अवलंब जगदंब न विलंब कीजै
करुणा तरंगिणी कृपा तरंग मालिके
रोष महाभारी परितोष महतारी दुनी
देखिए दुखारे मुनि मानस मरालिके।
—कवितावली पृष्ठ 154 छंद 173

इस बार तुलसीदास स्वयं ही ऐसे रोगग्रस्त हुए कि फिर कभी स्वस्थ न हुए। मरण से पूर्व रोग निवृत्ति हेतु प्रार्थना करते करते थक कर अंत में उन्होंने स्वयं ही कहा है—

कहों हनुमान सों सुजान रामराय सों
कृपा निधान शंकर सो सावधान सुनिए
हरस विषाद राग रोस गुन दोष मई
बिरची बिरञ्चि सब देखियत दुनिये
माया जीव काल के करम के सुभाय के
करइया राम वेद कहें ऐसी मन गुनिए
तुम से कहा न होय हा हा सो बुझइये मोह
हों हू रहों मौन बयो सो जान लुनिए
— हनुमान बाहुक अंतिम छंद

अंत में श्रावण मास में एक दिन रोग ग्रस्त तुलसी दास गंगा तट पर आ पडे। वहीं मृत्यु से कुछ ही पूर्व संसार के इस अमर यशस्वी महाकवि ने क्षेमकरी पक्षी के दर्शन कर अपना निम्नलिखित छंद कहा था—

कुमकुम रंग सु अंग जितो मुख
चंद सो चंदन होड़ परी है
बोलत बोल समृद्ध चवै
अवलोकत सोच विचार हरी है
गौरी कि गंग विहंगनि वैष
कि मंजुल मूरति मोद भरी है
पेखु सप्रेम पयान समै सब
सोच विमोचन क्षेमकरी है ।
(कवितावली)

इस छंद के 'पेखु सप्रेम पयान समै' से स्पष्ट है कि मृत्यु के कुछ ही पूर्व इसकी रचना हुई है। अंत में निम्नलिखित दोहा कह कर विश्व शांति के महान पथ प्रदर्शक महाकवि तुलसीदास सदा के लिए अपने व्यापक उपास्य राम में लीन हो गए ।

राम नाम जस बरनि के, भयेउ चहत अब मौन
तुलसी के मुख दीजिए अब ही तुलसी सोन।

उनकी मृत्यु का निम्न दोहा प्रसिद्ध है —

सम्वत सोलह सो असी असी गंग के तीर
सावन शुक्ला सप्तमी तुलसी तज्यो सरीर

इस श्रावण शुक्ला सप्तमी के स्थान पर श्रावण श्यामा तीज शनि भी पाठ प्राप्त होता है जो ज्योतिष की गणना के अनुसार ठीक ठहरता है । साथ ही साथ इसकी पुष्टि इससे भी होती है कि तुलसीदास के काशी स्थित मित्र टोडरमल के बंशधर चौधरी लालबहादुर सिंह के यहाँ गोसाई तुलसी दास के नाम पर ब्राह्मणों को श्रावण शुक्ला तीज के दिन सीधा दिया जाता है।

बहिर्साक्ष्य : मित्र तथा परिचित व्यक्ति

पंडित गंगाराम

श्री तुलसीदास जब वैराग्य लेकर काशी पहुंचे तब वे वहाँ सर्वप्रथम अपने मित्र पंडित गंगा राम जोशी के यहाँ रहे जिनके बंसधर अद्यावधि प्रहलाद घाट पर निवास करते हैं। कहते हैं कि उस समय काशी के राजघाट के नरेश एक गहरवार राजपूत नरेश थे जिनके पंकज आजकल मांडा स्टेट के राजा हैं। एक दिन उनका राजकुमार शिकार से लौट कर नहीं आया और उसी समय एक बाघ द्वारा किसी शिकारी के निधन का समाचार उन्हें दिया गया। इस पर अधिक चिंतित राजा ने पंडित गंगाराम जोशी को बुलाकर उनसे राजकुमार के सकुशल लौटने का प्रश्न किया। गंगा राम जी को उस समय उत्तर न सूझा और वे गणित करने के उपरांत दूसरे दिन उत्तर भेजने की शर्त कर घर लौटे। उस दिन सायंकाल में वे नित्य के नियम के अनुसार तुलसीदास के साथ नाव पर बैठ गंगा पार संध्या वंदन आदि के हेतु उपस्थित न हो सके। तुलसीदासजी ने उन्हें घर से बुलवाया और उनकी चिंता का कारण जान उन्हें सांत्वना दी। सायंकालीन संध्या बंदन आदि से निवृत्त होकर 6 घंटे के घोर परिश्रम से उन्होंने रामाज्ञाप्रश्न की रचना की। गंगाराम ज्योतिषी ने जब उस पर से उक्त प्रश्न का उत्तर निकाला तब उन्हें अगले ही दिन संध्याकाल तक राजकुमार के सकुशल लौटने का उत्तर मिला। उन्होंने राजा को तदनुसार सूचित कर दिया। दूसरे दिन उक्त समय पर राजकुमार के सकुशल लौटकर आ जाने पर राजा ने गंगा राम ज्योतिषी जी को बुलाकर उनका आदर मान किया और उन्हें रु. 1,00,000 प्रदान किए। गंगाराम ने उक्त राशि तुलसीदास को देने का हठ किया पर बार बार विशेष आग्रह करने पर भी तुलसीदासजी ने कुछ न लिया। अंत में मित्र को प्रसन्न करने के लिए उन्होंने उसमें से रु. 12,000 ले हनुमान जीके 12 मंदिर बनवा दिए। इन सब मंदिरों में विशेषता यह है कि इनमें हनुमान जी की मूर्ति दक्षिणाभिमुखी है।

टोडरमल

काशी में उस समय टोडरमल नामक एक भूमिहार जमींदार रहते थे। इनसे तुलसीदास की मित्रता हो गई थी। उनकी जमींदारी का इलाका काशी के एक छोर से दूसरे छोर तक फैला हुआ था और उसमें मंदिनी, नन्दसर, शिवपुर, छीतूपुर और लहरतारा नामक पांच गांव थे। मंदनी इस समय काशीराज के अधिकार में है और उसी में असी घाट है । कहते हैं कि जब वल्लभकुलीन गोसाई लोगों के विरोध से तुलसीदास जी को गोपाल मंदिर छोड़ना पड़ा था उस समय टोडरमल ने उनके लिए इसी घाट पर एक मंदिर बनवा दिया और बड़े आग्रह से भी उन्हें वहाँ ले गए। तुलसीदास मृत्यु पर्यन्त वहीं रहे। कहा जाता है कि वल्लभ संप्रदाय के गुसाइयों ने उन्हें मार डाला था। उनसे गोस्वामी तुलसीदास को अत्यधिक स्नेह था। टोडरमल के निधन पर उनके

लिखे उनके निम्नलिखित दोहे से यह व्यक्त होता है–

चार गांव को ठाकुरो, मन को महा महीप।
तुलसी या कलिकाल में, अथयो टोडर दीप।।
तुलसी राम-सनेह को, सिर पर भारी भार।
टोडर कांधा न दियो, सब कहि रहे उतार।।
तुलसी उर काला विमल, टोडर गुनगन बाग।
ये दोऊ नैनन सींचिहौं, समुझि समुझि अनुराग।।
राम धाम टोडर गए, तुलसी भए ससोच।
जियवो मीत पुनीत बिनु यही जानि संकोच।।

धन्य हैं टोडरमल जिनके लिए तुलसीदास जी ने नर काव्य रचना करना स्वीकार किया ।

टोडरमल की मृत्यु के पीछे उनके वंशधरों में गोसाईं तुलसीदास का आदर अक्षुण्ण बना रहा। टोडरमल के निधन के उपरांत जब उनके पुत्र आनंद राम और पोते के बीच संपत्ति के बंटवारे के संबंध में झगड़ा हुआ था उस समय तुलसीदास ने उसका समाधान किया। उस समय तुलसी दास जी की अनुमति से जो पंचनामा लिखा गया था उसके आरंभ में मंगलाचरण पर एक श्लोक और दो दोहे गोस्वामी जी के हाथ से लिखे गए हैं जो निम्नलिखित हैं –

श्री जानकी वल्लभो विजयते
दिवश्शरं नामि संक्ते दिवस्थापयति नाश्रितान्
द्वर्षराति न चार्थिव्यो रामो द्वैनैव भाषते।
तुलसी जान्यो दशरथहिं, धरमु न सत्य समान
राम तजो जेहि लागि बिनु, राम परिहरै प्रान।
धर्मों जयति नाधर्मस्सत्यं जयति नानृतम्
क्षमा जयति न क्रोधो विष्णुर्जयति नासुरः।

उक्त पंचनामा 11 पीढ़ी तक टोडरमल के वंशधरों के पास रहा। 11 वीं पीढ़ी में पृथ्वीपाल सिंह ने उसे काशीराज को दे दिया जो अब भी काशीराज की यहाँ सुरक्षित है। उक्त लिखावट सरस्वती भवन काशी में रचित गोसाईं जी के हाथ लिखी वाल्मीकि रामायण के उत्तरखंड से बिल्कुल मिलती है जिससे यह विश्वास दृढ़ होता है कि पंचनामें की उक्त सात पंक्तियों को तुलसीदास के द्वारा अपने हाथ से ही लिखा गया है ।

शेष अंश फारसी लिपि में है जिसकी हिंदी प्रति निम्नलिखित है–

श्री परमेश्वर

सम्वत 1669 कुमार सुदि तेरस बार शुभ दिन लिखित पत्र अनंतराम तथा कन्हे के अंश विभाग पूर्वक आगे दुनहु जने मांगा जे भाग मैं से प्रमान माना दुनहु जने विदित तफसीलु अंशु टोडरमल के माह जे विभाग

अंश आनंदराम– मोजे मदनी मह अंश पाव तेहि यह अंश दुई आनंदराम तथा लहरतारा सगरेउ तथा छितरपुरा अंश टोडलमल के हील हुज्जती नास्ती लिखितम आनंदराम के ऊपर लिखा सो सही।

अंश कन्हई – मौजे भदेनी मह अंश पाँच तेहि मह तीनि अंश कन्हई तथा मौजे शिवपुरा तथा नदेसरी अंश टोडरमल के हाल हुज्जती नास्ती, लिखितं कन्हई के ऊपर लिखा से सही ।

इसके बाद तैतीस साक्षियों के हस्ताक्षर हैं और फिर लिखा है–

शहद व माफिह ताहिर इबनी
खवाज दौलते कानून गोय ।
जलाल मकूबली लिखत ।

मोहर सादुल्लाह बिन

(फिर अधिकारियों की ओर से दोंनों के विभाग लिखे गए हैं और नीचे अस्पष्ट अक्षरों में काजी के

हस्ताक्षर हैं जिसको लोगों ने अनहरुबला पढ़ा है। (डा. श्यामसुंदरदास और डॉ. पीताम्बर बडथ्वाल कृत गोस्वामी तुलसीदास पृष्ठ 109–110)

नवाब अब्दुर रहीम खानखाना :

(संवत 1613 से 1686 तक) भारतवर्ष में मुगल साम्राज्य के संस्थापक बैरम खां के पुत्र और अकबर के दरबार के नवरत्न अब्दुर्रहीम खानखाना जो हिंदी साहित्य संसार में महाकवि रहीम के नाम से प्रसिद्ध हैं, गोस्वामी तुलसीदास के सुपरिचित महान प्रशंसकों में से थे। कन्या के विवाह के हेतु अर्थ प्राप्ति की लालसा से एक निर्धन ब्राह्मण एक दिन तुलसी दास जी से याचना करने आ पहुंचा । उन दिनों रहीम की दानशीलता की देश में धूम थी। तुलसी दास जी ने उस ब्राह्मण को निम्न लिखित आधा दोहा लिख कर दिया और उसे रहीम के पास भेज दिया–

सुरतिय नरतिय नागतिय अस चाहत सब कोय।

उस ब्राह्मण ने जाकर जब रहीम को तुलसीकृत दोहा दिखलाया तो उन्होंने उसे यथेष्ट धन देकर उस दोहे का उत्तरार्ध इस प्रकार पूर्ण कर लौटा दिया –

गोद लिए हुलसी फिरै तुलसी सो सुत होय।

महाकवि रहीम तुलसीदास जी के रामचरित मानस पर मुग्ध होकर कर लिखते हैं–

रामचारित मानस विमल संतन जीवन प्रान
हिंदुवान को वेद सम जवननि प्रकट कुरान।

रहीम ने सर्वप्रथम बरवै छंद लिखे और उन्होंने तुलसीदास के रचे कुछ दोहों पर बरवें लिख कर गोस्वामी तुलसीदास के पास भेजे तथा उनसे बरवै छंद में रचना करने का अनुरोध भी किया। यह घटना सम्वत 1669 विक्रमी के लगभग की है। गो. तुलसीदास के दोहे और उन पर रहीम कृत वरवे छंदों के तीन उदाहरण निम्नलिखित हैं–

जेहि सुमिरत सिधि होइ गणनायक करिवर वदन
करहु अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभ गुण सदन।

–तुलसीदास

बंदहुं विघन बिनासन रिधि सिधि हंस
निरमल बुद्धि प्रकासन सिसु ससि सीस।

–रहीम

वंदौ पवन कुमार खल वन पावक ज्ञान घन
जासु हृदय आगार वसहिं राम सर चाप धर

– तुलसीदास

ध्यावहुं विपत्ति विदारन सुवन समीर।
खल दानव बन जारन प्रिय रघुवीर।।

–रहीम

वंदऊँ गुरुपद कंज कृपासिंधु नर रूप हरि।
महा मोह तम पुंज जासु वचन रविकर निकर।।

– तुलसीदास

पुनि पुनि वंदऊँ गुरु के पद जलजात।
जेहि प्रसाद ते मन के तिमिर विलात।।

–रहीम

इन बरवै रचनाओं पर रीझकर तुलसीदास जी ने बरवै रामायण की रचना की ।

महाराजा मान सिंह

अकबरी दरबार के सम्मानित राजपूत नरेश आमेराधिपति महाराज मानसिंह रामकथा के बड़े प्रेमी थे। वे गोस्वामी तुलसीदास जी के दर्शनों को प्रायः बनारस असी घाट आते रहते थे। जनश्रुति के अनुसार तुलसी मंदिर का घाट और बड़ी कोठी इन्हीं मान सिंह महाराज ने बनवाई थी। एक दिन जब एक व्यक्ति ने गोस्वामी तुलसी दास जी से

कहा कि महाराज आपके दर्शनों को तो बड़े बड़े महाराजा आते हैं और पैर पूजते हैं तब तुलसी दास जी ने निम्न लिखित दोहा उत्तर में लिखा था—

घर घर मांगे टूक पुनि, भूपति पूजे पाय।
ते तुलसी तब राम बिन, ए अब राम सहाय।।

मीरा बाई

मेवाड़ के राजकुमार भोजराज की पत्नी मीराबाई अपनी भक्तिपूर्ण सरस गीति रचना के कारण हिंदी साहित्य संसार और हिंदू जाति में अत्यंत प्रसिद्ध हैं। पति के युवावस्था मैं स्वर्गवासी हो जाने पर उनके हृदय आराध्य परमात्मा श्रीकृष्ण हो गये। वे भगवद भजन और साधु संत समागम हरि चर्चा ही में समय व्यतीत करती थीं। भक्ति विह्वल हो वे श्री कृष्ण की मूर्ति के सम्मुख अपने रुचिर पदों को गाती और नाचती थीं। जब तक उनके प्रतापी ससुर राणा संग्राम सिंह थे तब तक उन्हें कोई कष्ट नहीं हुआ। उनके स्वर्गवासी होने पर राणा रत्न सिंह गद्दी पर बैठे। उन्होंने भी अपने जेठे भाई की बिधवा पत्नी को भक्तिभाव में लीन देख कोई कष्ट नहीं दिया। पर उनके निधन पर जब उनके भ्राता राणा विक्रमादित्य सिंह गद्दी पर बैठे तब उन्हें मीराबाई का साधु संतों के साथ बैठना तथा भक्ति के आवेश में आराध्य देव की प्रतिमा के समक्ष गाना, नाचना कुल मर्यादा के विरुद्ध जान पड़ा। उन्होंने मीराबाई को बहुत सताया। उनके अत्याचार से तंग आकर मीरा बाई ने निम्नलिखित पत्र तुलसी दास जी के पास भेजा और उनसे कर्तव्य कर्म के विषय में सहमति मांगी

स्वस्ति श्री तुलसी गुण भूषन दूसन हरन गोसाईं
बारहिं बार प्रनाम करों अब हरहु सोक समुदाई
घर के स्वजन हमारे जेते सबनु उपाधि बड़ाई
साधु संग अरु भजन करत मोहि देत कलेश महाई
बालपने ते मीरा कीनी गिरधरलाल मिताई
सो तो अब छूट्य नाहीं लगी लगन बरियाई
मेरे माता पिता के सम हो हरि भगतन सुखदाई
हमको कहा उचित करिवो है सो लिखियो समुझाई

— मीराबाई

इसके उत्तर में गोस्वामी तुलसीदास ने निम्न लिखित पद लिख भेजा —

जाके प्रिय न राम वैदेही
तजिये ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही
तजो पिता प्रहलाद विभीषन बंधु भरत महतारी
वलि गुरु तजे कन्त ब्रज वनितन भए मुद मंगलकारी
नातो नेह राम सों मनियत सुहृद सुसेव्य जहां लों
अंजन कहा आँख जेहिं फूटे बहुतक कहों कहाँ लों
तुलसी सो सब भांति परम हितु पूज्य प्राण ते प्यारो
जाते होय सनेह राम पद एतो मतो हमारो।

— तुलसीदास

अनेक सज्जन इस घटना पर संदेह प्रकट करते देखे जाते हैं । पर हम इतनी प्रसिद्ध घटना को झुठलाने का साहस कैसे करें ? यदि हम भारतेंदु हरिश्चंद्र के मतानुसार मीराबाई की मृत्यु सम्वत 1620 विक्रमी मानें तो फिर इसमें समय का कोई अंतर नहीं रह जाता।

श्री मधुसूदन सरस्वती

अद्वैत शंकर मतानुयाई श्री स्वामी मधुसूदन सरस्वती संस्कृत भाषा और दर्शन के प्रसिद्ध पंडित माने जाते थे। तुलसी दास ने संस्कृत भाषाभिमानी पंडित और गर्वित ब्राह्मण वर्ग से भी बहुत कष्ट पाया था। वे उन्हें हिंदी भाषा में लिखने और व्यवहार करने के कारण अल्पज्ञ मूर्ख कहकर उनका उपहास करते थे । अंत में श्री

मधुसूदन सरस्वती को झूठी बातों से उभारकर उन्हें तुलसी दास जी से शास्त्रार्थ के हेतु ललकारने को विवश किया। गोस्वामी तुलसी दास जी ने स्वामी मधुसूदन सरस्वती से शिष्टता पूर्ण व्यवहार करके अपना मत शास्त्रार्थ में उपस्थित कर अपनी रचना उन्हें सुनाई। स्वामी जी ने तुलसी दास के सिद्धांत और उनकी रचना पर अत्यंत उदारतापूर्वक प्रशंसा करते हुए निम्न लिखित श्लोक कहा–

आनंदकानने ह्यस्मिन् तुलसी जंगमस्त:
कविता मंजरी भाति राम-भ्रमर-भूषिता।

रामायण साहित्य के माननीय पंडित और तुलसी साहित्य को प्रकाश में लाने के हेतु अपूर्व कार्य करने वाले स्वर्गीय महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह ने इस श्लोक का अनुवाद इस प्रकार किया –

तुलसी जंगम तरु लसै, आनंद कानन खेत
कविता जाकी मंजरी राम भ्रमर रस लेत।

(पंडित महादेव प्रसाद अपने भक्ति विलास में इसे किसी अन्य पंडित कदाचित रविदास का लिखा और पंडित गोपालदास रामायण माहात्म्य में इसे किसी आनंद कानन ब्रह्मचारी का कहा मानते हैं ।)

जैन कवि बनारसी दास

इनका जन्म जौनपुर में हुआ था। अपने अर्ध कथानक नामक आत्मचरित लिखने के कारण वे विशेष प्रसिद्ध हैं क्योंकि यह कथानक हिंदी में आत्म चरित लेखन की सर्वप्रथम रचना है। इनके लिखे जैन धर्म संबंधी अनेक काव्य ग्रंथ है जिनमें जैन धर्म का सरल और धर्मनीति का वर्णन है। इनके बनारसी बिलास और नाममाला ग्रंथ आज भी प्रसिद्ध हैं। समर्थ अर्थपूर्ण व्यवस्थित भाषा में विषय को उपस्थिति करने में यह कवि बड़ा कुशल है।

अपने अर्थ कथानक में उन्होंने स्वयं ही लिखा है कि उनका जीवन दुष्चरित्रता में बीता था। पीछे धर्म बुद्धि का उदय हुआ और फिर जैन साधुओं में इनका महत्वपूर्ण स्थान हो गया। इनकी गोस्वामी तुलसीदास से अनेक बार भेंट हुई थी। गोस्वामी तुलसीदास के रामचरित मानस को सुन आपने उनके आध्यात्मिक भाव पर निम्न लिखित रामायणी व्यवहार दृष्टिकोण प्रकट करने वाला पद लिख कर उनको भेंट किया था–

विराजे रामायण घट माहीं
मरमी होए मरम सो जाने
मूरख माने नाहीं
आतम राम ज्ञान गुण
लक्षमन सीता सुमति समेत
शुभ प्रयोग वानर बल मंडित
वर विवेक रन तेत
ध्यान धनुष टंकार सोर
सुनि गई विषय दिति भाग
भई भस्म मिथ्या मत लंका उठी धारना आग।
जरे अजान भाव राक्षस
कुल लरे निशंकित सूर
जूझे राग द्वेष सेनापति
संशय गढ़ चकचूर
विलखत कुंभकरन भव विभ्रम
पुलकित मन दरयाब
थकित उदार वीर महि
रावन सेतुवन्द समभाव
मूर्छित मंदोदरी दुरासा
सजग चरन हनुमान
घटी चतुर्गति परिनिति सेना

छुटै छपक गुनवान
निरखि सकति गुन चक्र
सुदर्शन उदय विभीषण दीन
फिरे कबंध मही रावन को
प्रान भाव सिरहीन
इहि विधि साधु सकल
घट अंतर होय सकल संग्राम
यह विवहार दृष्टि रामाइन
केवल निश्चय राम।

वानारसी विलास के संपादक ने बनारसीदास की तुलसी दास जी से भेंट का उल्लेख करते हुए लिखा है गोस्वामी जी ने उक्त रामायण विषयक पद सुन कर प्रसन्नता प्रकट करते हुए तीर्थंकर पार्श्वनाथ जी की स्तुति में दो छंद कहे जो निम्नलिखित हैं–

पद जलज भगवान जू के वसत हैं उर माहिं
चहुं गति विखंडन तरन तारन देख विघन विलाहिं।

गंग कवि

सुप्रसिद्ध महाकवि गंग जिन्हें महादानी खान खाना रहीम ने एक ही छंद पर 36 लाख रुपयों का पुरस्कार दिया था, उनके विषय में यह प्रसिद्ध है कि –

तुलसी गंग दोऊ भए, कवियन के सिरदार।
जिनके काव्यन में मिली, भाषा विविध प्रकार।।
(आचार्य भिखारीदास काव्य निर्णय)

वे गोस्वामी तुलसी से मिलने आए थे। वे कुछ उद्धत स्वभाव के मुह फट मसखरे थे। जिस समय गंग तुलसी दास के यहाँ पहुंचे उस समय तुलसीदास माला फेर रहे थे। उन्हीने संकेत से आसन ग्रहण करने को कहा और कुछ समय तक पुनः माला फेरने में लगाया। अधीर गंग ने उपहास करते हुए तुलसीदास पर आक्षेप कर कहा– गोसाई जी, गजराज ने कौन माला जपी थी जो भगवान राम उनकी सहायता को घर छोड़ दौड़े आए ? तुलसीदास ने इस कुतर्क का उत्तर न दिया और माला फेर चुकने पर आनंद से गंग से बात की। पर साधु के अपमान का दंड गंग को प्राप्त हुआ और उन्हें हाथी के पैर तले दब कर प्राण देना पड़े–

थकि धरनि पति नहिं पार
पावत नर सु बापुरा कौन
तिहि लसत करुना-जन
पयोधर भाजहिं भवि ज़न तौन
दुति उदित त्रिभुवन मध्य
भूषण जलधि ज्ञान गभीर
जेहि भाल ऊपर छत्र
सोहत दहत दोष अधीर
जिहि नाथ पारस जुगल
पंकज चित्त चरनन जास
रिधि सिद्धि कमला अजर
राजत भजत तुलसीदास ।
(बनारसी विलास भूमिका)

यद्यपि जड़ चेतन सब में राम का अखंड व्यापक रूप में दर्शन करने वाले ज्ञान ज्ञानी तुलसीदास की अभिन्न दृष्टि के कारण कथानक और विषय वर्णन की संभावना होती है कि उक्त वर्णन तुलसी की धर्म प्रवृत्ति के प्रतिकूल नहीं है परंतु तुलसी के छंद प्रवाह और वाक्य गठन शैली के साथ उसकी भावमय पदस्थापन प्रणाली में प्रसाद की प्रांजलता का उक्त छंदों में दर्शन नहीं होता।

केशवदास

आचार्य केशवदास से गोस्वामी तुलसीदास की

भेंट हुई थी। गोस्वामी जी के कहने पर ही केशवदास ने अपने सुप्रसिद्ध महाकाव्य रामचंद्रिका की रचना करके अपनी वाणी को पावन किया। लोक कल्याणकारी उच्च भागों और विषयों की दृष्टि से रामचंद्रिका प्रशंसनीय और यथार्थ महत्वपूर्ण रचना है ।

इस प्रकार समकालीन नरेशों, नवाबों, जमींदारों, पंडितों, आचार्यों, महाकवियों से समादृत गोस्वामी तुलसीदास का यश उनके जीवन काल में उत्कर्ष पहुँच चुका था। यहाँ विस्तार भय से दो सम कालीन महापुरुषों की तुलना तुलसी दास से भेंट का उल्लेख अनिवार्य रूप से किया जाना आवश्यक जान पड़ता है।

दत्तात्रेय

जयपुर आदिलशाही राज्य के दान धर्माध्यक्ष ब्राह्मण दत्तात्रेय महोदय बनारस यात्रा को आये थे। गो. तुलसीदास जी के दर्शन कर वे मुग्ध हुए। अंत में उन्होंने गोस्वामी जी से प्रसाद रूप में उनके हाथ की लिखी राम की पोथी मांगी। उदाराशय श्री तुलसीदास जी ने उनकी श्रद्धा वृत्ति पर रीझ उन्हें स्व हस्त लिखित वाल्मीकि रामायण की प्रति सहर्ष समर्पित कर दी।

इस का एक अंश उत्तर–कांड अब तक काशी के सरस्वती भवन में सुरक्षित रूप से रखा है । इसकी पुष्पिका निम्नलिखित हैं–

इत्यार्षे रामायणे वाल्मीकीये चतुर्विंशति साहरुयां संहितायां उत्तरकांडे स्वर्गारोहण नाम सर्गः। शुभमस्तु समाप्तं चेदं महकाव्यं श्री रामायणमिति सम्वत् १६४१ समये मार्ग सुदि सप्तमी रवौ लिखितं तुलसीदासेन।

इस प्राप्ति के अंत में निम्न लिखित श्लोक दिया है जिससे विदित होता है कि गोस्वामी जी ने यह प्रति कदाचित दत्तात्रेय के लिये लिखी थी–

श्रीमदेदिलशाह भूमिप सभा सम्येन्द्र भूमिसुरः
श्रेणी मंडन मंडली धुरिदया दानादि भाजिप्रभु
वाल्मीकेः कृतिमुत्तमां
पुररिपोः पुर्यां पुरोगः कृती
दत्तात्रेय समाह्वयो लिपि
कृतैः कर्म्मत्वमाची करन्।

श्री श्रीमान आदिलशाह भूमिपति की सभा के सदस्यों में इंद्र के समान वे श्रेष्ठ जो ब्राह्मण मंडली का मण्डन और उनकी जाति के रथ का आधारभूत आश्रय रूप धुरा हैं, जो दया दान आदि विभाग के अध्यक्ष और जिनको दत्तात्रेय नाम से कहते हैं, उन्होंने वाल्मीकि की इस उत्तम कृति का लिपि कर्म करवाया ।

इस ग्रंथ की लिपि गोस्वामी तुलसीदास के हाथ की लिखी मानी जाती है और अब तक के सभी तुलसी साहित्य विवेचकों ने इसकी प्रमाणिकता स्वीकार की है।

नाभादास

भगवान की प्रशस्ति के प्रख्यात प्रामाणिक गायक और प्रसिद्ध श्री नाभा दास की गोस्वामी तुलसीदास जी से विचित्र भेंट हुई। नाभादास जी बनारस यात्रा करते समय गोस्वामी तुलसीदास के आश्रम असीघाट स्वयं उनके दर्शनार्थ उपस्थित हुए। उस समय तुलसीदास पूजन में लगे थे। अतएव उठकर आदर देने ना आ सके। नाभा जी ने भूल से समझा कि तुलसीदास को अपनी प्रतिष्ठा और भक्ति निष्ठा पर गर्व हो गया है और वे रुष्ट हो बनारस से मथुरा चले गए ।

जब गोस्वामी तुलसीदास ने यह सब सुना तो वे स्वयं ही मथुरा पहुंचे। जिस समय वे नाभा जी

के यहाँ पहुंचे उस समय वहाँ साधुओं का भंडारा हो रहा था। निमंत्रण के अतिरिक्त अनेक आगत मान्य अतिथि और अभ्यागत भी इस भोज में प्रसाद पा रहे थे। गोस्वामी तुलसीदास जी भी एक ओर बैठ गए। नाभा जी के रुष्ट होने के कारण अनिमंत्रित तुलसीदास के प्रति वहाँ उपेक्षा भाव प्रकट था। प्रसाद के लिए तुलसी को कोई वर्तन तक ना दिया गया और खीर प्रसाद ग्रहण करने को कहा गया। तुलसीदास ने एक संत की पास पड़ी जूती को सामने कर उसमें प्रसाद देने को कहा। इस पर प्रश्न किए जाने पर विनम्रता की मूर्ति भगवान के दासानुदास तुलसी ने उत्तर दिया कि इससे अधिक पवित्र पात्र और कौन है ! संतों की चरन रज पवित्र होती है फिर उन चरणों की सेविका पनही जो साथ रहती है, पवित्र होगी ही। नाभाजी तुलसीदास की भक्तों के प्रति ऐसी भावना को देख उनकी सरलता और नम्रता पर रीझ गए। उन्होंने भक्तों की माला –भक्तमाल कृति नाम से तैयार की थी। उस माला का सुमेरु उन्होंने तुलसीदास को माना।

संवत 1642 विक्रमी में नाभा जी ने भक्तमाल में प्रत्येक भक्त के विषय में अत्यंत संक्षेप में केवल एक ही छप्पय में बड़े नपे तुले प्रमाणिक ढंग से लिखा है । तुलसीदास के विषय में वे लिखते हैं –

कलि कुटिल जीव निस्तार
हित वाल्मीकि तुलसी भयो
त्रेता काव्य निबंध करी
सत कोटि रामायण
इक अच्छर उच्चरै
ब्रह्म इत्यादि परायण
अब भक्तन सुख देन बहुरि बपु धरि विस्तारी
राम चरन रस मत्त रहत
अहि निसि व्रतधारी
संसार अपार के पार को
सुगम रूप नौका लियो
कलि कुटिल जीव निस्तार
हित वाल्मीकि तुलसी भयो

(नाभादास भक्तमाल)

त्रेता युग में वाल्मीकि ने शत कोटि छन्दों में रामायण महाकाव्य के रूप में रचना की जिसका एक ही अक्षर उच्चारण करने से ब्रह्म हत्या आदि महापाप करने वाले को भी मुक्ति की प्राप्ति होती है। अब पुनः मानवीय शरीर धारण कर भक्तों को सुख देने वाली रामायण का विस्तार जिसने किया वह रामभक्ति का व्रत धारण करने वाले तुलसी दास श्री रामचरण की भक्ति के रस में रात दिन उन्मत्त की नाईं मग्न रहते हैं। वे अपार भवसागर से पार जाने हेतु रामचरित मानस रूपिणी नौका प्रस्तुत आकर कुटिल कलि काल के जीवों के उद्धार हेतु महा मुनि वाल्मीकि तुलसीदास के रूप में उत्पन्न हुये।

प्रियादास

तुलसीदास जी की जीवनी पर प्रकाश डालने वाले सर्वप्रथम प्रमाणिक प्रिया दास जी हैं जिन्होंने अपने गुरु नाभा दास जी की आज्ञा से उनकी भक्तमाल पर भक्तिरस बोधनी नामक ग्रन्थ में स्वतंत्र विस्तार दिया गया है। इनके संबंध में आगे बहिर्साक्ष्य भाग में विचार विस्तार से किया जा रहा है ।

ऐतिहासिक आधार ग्रंथ

प्रियादास जी द्वारा लिखित सुबोधिनी टीका

प्रिया दास द्वारा लिखित तुलसीदास जी की जीवनी पर प्रकाश डालने वाले सर्वप्रथम प्रमाणिक लेखक प्रियादास जी हैं। उन्होंने अपने गुरु नाभा दास जी की आज्ञा से उनके भक्तमाल पर भक्त सुबोधनी विस्तृत टीका लिखी जिसके छप्पय छंद में उनके संक्षिप्त चरित्र को तत्कालीन समाज में प्रसिद्ध जनश्रुतियों के आधार पर स्वतंत्र विस्तार दिया गया। इसके विषय में रचना काल ओर उसका निर्माण का हेतु बताते हुए स्वयं प्रिया दास जी ने लिखा है लिखा है –

नाभादास जी की अभिलाष पूरन लिखी मैं तो
ताकि साखी प्रथम सुनाई नीके गाइके
संवत प्रसिद्ध दस सात सत्त उनहत्तर
फाल्गुन मास वदी सप्तमी विताई के

कवित 623

इससे स्पष्ट है कि यह रचना नाभादास जी आज्ञा से हुई थी और इसकी पूर्ति संवत 1769 विक्रमी फाल्गुन मास कृष्णपक्ष सप्तमी के दिन हुई थी।

इसमें गोस्वामी तुलसीदास जी की जीवनी पर एकादश कवित्त कहे गए हैं जो छंद संख्या 500 से लेकर 510 छंद संख्या तक है। इन्हीं के आधार पर पिछले लेखकों ने तुलसी की जीवनी पर विस्तार से लिखा है। अतः यहां इनको उद्धृत करना आवश्यक प्रतीत होता है–

पत्नी प्रेम

तिया सों सनेह बिनु पूछे पिता गेह गई
भूली सुधि देह भजे पाही ठौर धाए हैं
वधू पति लाज भई रिस सों निकस गई
प्रीति राम नई तन हाड़ चाम छाए हैं
सुन जब बात मानो ह्वे गयो प्रभात
वह पाछे पछताय तजि काशीपुरी धाए हैं
कियो तँह वास प्रभु सेवा ले प्रकाश कीन्हों
लीनो दृढ़ भाव नाम रूप के तिसाये है।

छंद 500

तुलसीदास अपनी पत्नी पर अत्यंत आसक्त थे। उसके एक बार नैहर जाने पर आप भी रात को नदी पार कर पहुँचे और दरवाजे पर आवाज़ दी। पत्नी ने लज्जित हो तुलसीदास की कामासक्ति और निर्लज्जता की भर्त्सना करते हुए कहा– हाड़ मांस की नारी देह पर जो अनुरक्ति है वो राम पर हो तो मुक्ति मिल जाए। इस पर तुलसी को वैराग्य हो गया और वे भक्ति साधना के हेतु काशी चले गए।

जब तुलसीदास अपनी पत्नी के निकट भयावनी रात में गंगा की धार पार कर पहुँचे तब उसने उन्हें देखते ही कहा–

लाज ना लागत आपको दोरे आए साथ।
धिक् धिक् ऐसे प्रेम को कहा कहों मैं नाथ।।
अस्थि चर्ममय देह मम तामें ऐसी प्रीति।
होती जो श्रीराम में होति न तो भव- भीत।।

घर छोड़ने के बाद भी एक बार पत्नी ने उनकी कामासक्ति पर कटाक्ष करते हुए निम्नलिखित दोहा लिख भेजा था–

कटि की खीनी कनक सी

रहति सखिन संग सोय
मोहि कटे को डर नहीं
धनत कटे डर होए ।

उत्तर में तुलसीदास जी ने निम्नलिखित दोहा भेजा था–

कटे एक रघुनाथ संग बाँधि जटा सिर केस।
हम तो चाखा रामरस पत्नी के उपदेश।।

हनुमत् कृपा

इस घटना का समर्थन स्वयं तुलसीदास जी के कथन से होता है जिसका उल्लेख उनके आत्मचरित में हो चुका है। इसके सिवाए प्रायः सभी लेखकों ने इसका समर्थन किया है।

शौच जल शेष पास भूतहु विशेष कोऊ
बोल्यो सुख मानि हनुमान जू बताए हैं
रामायन कथा सी रसायन है कानन की
धावत प्रथम पाछे जात घृणा छाये हैं।
जाहि पहचानि संग चले उर धानि धाए
वन मध्य जानि धाइ पग लपटाए हैं
करें सत्कार कहीं सकोगे न टार मैं तो
जाने रस सार रूप धरो जैसे गाए हैं.

501

उनके नित्य प्रति जल दान से प्रेत ने संतुष्ट होकर उन्हें श्री हनुमान जी का पता बतलाया था जो एक रोगी दरिद्री ब्राह्मण के वेश में नित्यप्रति रामायण सुनने उपस्थित होते थे। उन्होंने हनुमान जी से प्रार्थना की और उनके प्रसन्न होने पर उनसे राम दर्शन कराने का वरदान मांगा। हनुमान जी ने उन्हें चित्रकूट में जाकर राम दर्शन करने की बात कही।

मांग लीजे वर कहि दीजे राम भूप रूप
अति ही अनूप नित नयन महि राखिए
कियो है संकेत वाहि दिन ही लाग्यो हेत
धाई सोई समय चित चेत कवि चाखिये।
आए रघुनाथ साथ लक्ष्मण चडे घोड़े।
पट रंग बरे हरे कैसे मन राखिये।
पाछे हनुमान आए बोले देखे प्रान प्यारे
नेक न निहारे मैं तो भले फेरि भाखिए ।

502

मृगयाचारी राम दर्शन

वहाँ पहुँच तुलसीदास ने धनुष बाण लेकर आते श्रीराम और लक्ष्मण के दर्शन किए पर पहचानने में भूल होने से उन्हें शिकारी राजकुमार समझ मुँह फेर लिया। हनुमान जी के द्वारा उनसे दर्शन होने की बात पूछने पर जब उन्हें पता लगा तो वे अपनी भूल पर बहुत पछताए ।

इस घटना के संबंध में तुलसीदास का निम्नलिखित पद प्रसिद्ध है जिसमें उन्होंने उस अवसर पर श्रीराम लक्ष्मण को ना पहचान पाने की भूल से दर्शनों का आनंद न ले सकने का दुख व्यक्त किया है–

लोचन रहे वैरी होय
जान बूझ अकाज कीन्हों गये भू में गोय
अविगत जु तेरी गति न जानी रह्यो जागत सोय
सबै छबि की अवधि मेरे निकासि गो ढिग होय
करम हीन हों पाय हीरा दियो पल में खोय
दास तुलसी राम बिछुरे कहो वैसी होय ।

इस समय वेदना से व्याकुल तुलसीदास को हनुमान जी ने कृपाकर सांत्वना दी और पुनः राम दर्शन होने का संकेत दिया। इस बार प्रातःकाल तुलसीदास रामघाट पर जा विराजे। उसी समय एक सुंदर पुरुष ने उनके निकट आकर कहा– बाबा चंदन दो। तुलसीदास चंदन घिसने लगे।

इसी समय श्री मारुति जी ने शुक रूप धारण कर निम्न दोहा कहा जिसमें श्री राम की उपस्थिति का तुलसीदास को संकेत किया गया है–

चित्रकूट के घाट पर भई संतन की भीर
तुलसीदास चंदन घिसैं तिलक देत रघुवीर

तुलसीदास अपलएक दृष्टि से श्री राम की छवि देख मग्न हो गए। उन्हें सुधबुध ना रही। तब श्री राम अपने हाथ से तिलक लगा कर अंतर्धान हो गए ।

चित्रकूट में राम दर्शन की उक्त घटना का उल्लेख विनय पत्रिका के निम्नलिखित पद्यांश में भी है–

तुलसी तो को कृपालु जो कियो कोसल पालु
चित्रकूट को चरित्र चेतु चित्त करि सो
(विनय पत्रिका)

गोस्वामी तुलसीदास जी को मृगया–विहारी राम का दर्शन हुआ था। और उस समय की मनोहर मूर्ति उनके चित्र पटल पर सदा के लिए अंकित हो गयी थी । इसी से उन्होंने रामचरित मानस में स्वयं कहा है–

सरगु नरक अपबरग समाना
जहं तन्ह देख धरे धनु बाना
करम वचन मन राउर चेरा
राम करहु तेहि के उर डेरा ।
(मानस)

इसी की झलक उनके निम्न लिखित गीत में भी है–

सुभग सरासन सायक जोरे
खेलत राम फिरत मृगया वन
वसति सो मृदु मूरति मन मोरे
ललित कंध कर भुज विसाल
उर लेंहि कंठ रेखें चित चोरे
अवलोकत मुख देत परम सुख
लेत सरद शशि की छवि छोरे
ज़टा मुकुट सिर सारस नयननि
सोहें तकत सु भोंह सकोरे
सोभा अमित समात न कानन
उमगि चली चहुँ दिसि मिति फ़ोरे
(गीतावली पृ. 369 गीत सं. 2)

एक स्थल पर और भी कहा है –

सोहत मधुर मनोहर
मूरति हेम-हरिन के पाछें
धावनि नवनि विलोकनि
विथकनि बसे तुलसि उर आछे
(गीतावली पृ.369 गीत संख्या 3)

मम पाछे धर धावत धरे सरासन बान
फिरि फिरि प्रभुहि बिलोकि
हों धन्य न मोसम आन ।

कवितावली में मृगया बिहारी श्रीराम की शोभा वर्णन करते हुए लिखा है–

लोचन लोल चलें भृकुटी बल
काम कमानहु सो तृन तोरे
राजत राम कुरंग के संग
निसंग कसे धनु सों सर जोरे
सर चारिक चारु बनाह कसे
कटि पानि सरासन सहायक ले
बन खेलत राम फिरे मृगया
तुलसी छवि सो बरने किमि है
अवलोकि अलौकिक रूप मृगी
मृग चौंक चके चितवे चित दे
न डगे न भगें जिय जानि

सिलीमुख पञ्च धरे रति नायक हैं ।

(कवितावली पृ. 170)

बरवैं रामायण मैं भी मृगया बिहारी श्रीराम की शोभा के विषय में लिखा है –

जटा मुकुट कर सर धनु संग मरीच
चितवनि वसति कनखियनु अखियन बीच

(बरवै रामायण पृ. 21 छंद 30)

वन मुद्राओं के इस प्रकार के स्वाभाविक और सुन्दर चित्रण से तुलसीदास के हृदय पर मृगया बिहारी श्रीराम की सुन्दर मूर्ति की छाप बड़ी जान पड़ती है जो पूर्व उक्त घटना को प्रमाणित करने में सहायक है। साथ ही उन्होंने चित्रकूट को कामना सिद्ध करने वाला और श्रीराम के मंगल मैं निवास का धाम कहा है। वे लिखते–

अब चित चेत चित्रकूटहिं चलु
भूमि विलोकि राम-पद-अंकित
वन विलोक रघुवर बिहार थलु

एवं .. सब सोच विमोचन चित्रकूट आदि ।

हत्या करि विप्र एक तीरथ करन धायो
कहे मुख राम हत्या टारिए हत्यारे की
सुनि अभिराम नाम धाम में बोलाइ लियो
दीयो लै प्रसाद कियो सुद्ध गायो प्यारे को
भई द्विज सभा कहि बोलि के पठायो आप
कैसे गयो पाप संग लेके जए न्यारे को
पोथी तुम बांचो हिए भाव नाहि साँचो धूप
ताते मति कांची दूर ना करे धंध्यारे को।

503

हत्यारे का उद्धार

बनारस में एक हत्यारा राम नाम लेता हुआ आत्मग्लानि से भरा सब पर अपना पाप प्रकट करता भीख माँगता था। वह एक दिन दुखी हो अस्सी घाट पर गोस्वामी तुलसीदास के आश्रम में पहुंचा और राम नाम पर भिक्षा मागी। तुलसीदास ने उसके हार्दिक पश्चाताप पर शुद्ध भाव से रामभक्ति के द्वारा उसको पवित्र हुआ देख उसे साथ बैठाकर भगवान का भोग लगाया। पंडितों ने व्यवस्था के प्रतिकूल हत्यारे के साथ भोजन करने पर तुलसी दास जी से प्रश्न किया कि प्रायश्चित विधि को पूर्ण न करने वाले हत्यारे को ऐसे समय साथ रखना क्या अधार्मिक कृत्य नहीं है ? इसे आपने शुद्ध कैसे मान लिया ? गोस्वामी तुलसीदास ने विनम्रता से उत्तर दिया कि राम नाम का प्रभाव ही ऐसा है जिससे पतित पावन हो जाते हैं। पंडितों ने राम नाम महात्म को स्वीकार करते हुए भी उस हत्यारे के पवित्र होने के प्रत्यक्ष प्रमाण मांगे तो तुलसीदास ने सरल भाव से उनसे मनचाही परीक्षा लेने की बात कही। इस पर पंडितों ने यह शर्त रखी की यदि शिवजी का नंदी उस हत्यारे के हाथ से प्रसाद खाले तो हत्यारा पावन या शुद्ध हुआ माना जा सकता है। दर्शकों और परीक्षकों के आश्चर्य का उस समय कुल पार न था जब उन्होंने शिव जी के नादिए को उस हत्यारे के हाथ से प्रसाद लेते स्वयं देखा। अब तुलसीदास भक्त और ज्ञानी के साथ सिद्ध माने जाने लगे।

देखी पोथी वॉच नाम महिमा हूँ कहीं सांच
ये पै हत्या करे कैसे तरै कहि दीजिये
आवे जो प्रतीति कही याके हाथ जेबें जब
शिव जू के बेल तब पंगति में लीजिए
थार में प्रसाद लियो चले जहाँ पान कियो
बोले आप नाम के प्रसाद मति भीजिए
जैसी तुम जानी तैसी कैसे कै बखानी वही

सुनि के प्रसन्न पायो जे धुनि रीझिए ।
504

चोरों पर कृपा

एक बार कुछ चोर अर्धरात्रि के समय जब तुलसीदास गहरी नींद में सो रहे थे उनकी कुटिया में घुसकर चोरी करना चाहते थे। इस समय गोस्वामी तुलसीदास को श्रीमानों से प्रचुर भेंट प्राप्त होने से उनकी संपत्ति मठाधीश जैसी हो गई थी। चोरों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उन्होंने बार बार प्रयत्न करने पर भी प्रत्येक द्वार पर सांवली सूरत के धनुर्धारी को सजग भाव से रक्षा करते और पहरा देते देखा। प्रातःकाल वे गोस्वामी तुलसीदास के पास पहुंचे और उस सांवले धनुर्धर प्रहरी के विषय में प्रश्न किया। गोस्वामी तुलसीदास ने सुनते ही श्रीराम की अपूर्व कृपा पर सजल लोचनों से कहा– भाई तुम धन्य हो जो तुम श्री राम के दर्शन कर सके। मैं तो ऐसा अभागा हूँ कि इस तुच्छ संपत्ति के हेतु अपने प्रभु को पहरा देने का कष्ट दे रहा हूँ। इतना कहकर उन्होंने उसी दिन अपनी संपूर्ण संपत्ति दान कर दी। वे चोर भी अपनी करनी पर लज्जित हो पश्चाताप करते हुए भगवान राम के भजन कर सदाचार से रहने लगे।

डॉक्टर ग्रियर्सन ने चोरों के संबंध में एक और चमत्कारी कथा लिखी है। वे कहते हैं कि एक बार काशी में कही से डेरे पर लौटते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी को रात हो गई। अंधेरी रात में चोरों ने उन्हें घेरा। गोसाई जी ने जंगल में हनुमान जी का स्मरण कर यह दोहा कहा –

वासर ढासनि के ढका,
रजनी चहुं दिसि चोर।
चलत दयानिधि देखिए,
कपि केसरी किसोर।।

(गोस्वामी तुलसीदास पृष्ठ 123)

इसके साथ ही हनुमान जी प्रकट हो गए और चोर भागते नजर आए।

आये निसि चोर चोरी करन हरन धन
देखे स्याम घन हाथ चाप सर लिए है
जब जब धावे बान साध डर पावें ये तो
अति मडरावे ये पे बली दूर किए हैं
भोर धाए पूछें खूब सांवरे किसोर कौन
सुनि कर मोन रहे आंसू डार दिए है
दी सबे लुटाय जानी चौकी राम राय दई
लई पूर्ण दिक्षा शिक्षा सुद्ध भए हिये हैं ।
505

कियो तन विप्र त्याग लागी चली संग तिया
दूर ही देख कियो चरन प्रनाम है
बोले यो सुहागवती मरयो पति होंहु सती
अब तो निकसि गई जाए सेवो राम है
बोलि के कुटुम्बों कही जो पे भक्ति करी सही
नहीं तब बात जीव दियो अभिराम है
भये सब साधि व्याधि मेटी लै विमुख ताकि
जाकी बास रहे तौन सूझे स्याम धाम है ।
506

मृतक को पुनर्जीवन

किसी युवा ब्राह्मण के मरने पर उसकी विधवा पत्नी सती होने जा रही थी। अकस्मात् तुलसी दास उसी मार्ग से निकले। उसने विनम्रता से सिर झुका हाथ जोड़ तुलसीदास जी को प्रणाम किया। तुलसीदास जी ने सहज भाव से उसे सुख सौभाग्य संपन्न रहने का आशीर्वाद दिया। जब उसने अपने वैधव्य की बात बताई और बाबा तुलसीदास से निहोरा किया तब उन्होंने कहा अब

क्या है मुख से वाणी निकल चुकी है। तुम इसे रामकृपा समझो। इतना कहकर उस मृतक के कुटुम्बियों से सदाचार से रह कर रामभक्ति करने का प्रण लेकर तुलसीदास जी ने राम से प्रार्थना की। तब वही मृतक फिर से जी उठा। विधवा पति के पुनर्जीवन से सुखी सधवा के रूप में घर लौटी। श्रीराम की भक्ति की महिमा के साथ ही तुलसी दास के सिद्ध महात्मा होने की ख्याति बड़ी।

सम्राट जहाँगीर पर अनुग्रह

दिल्ली सम्राट ने तुलसीदासजी की ख्याति सुनकर अहदी भेज कर उन्हें सादर दिल्ली बुलाया। अहदी ने सम्राट का निमंत्रण देते हुए प्रार्थना की कि बादशाह आपके द्वारा मृत ब्राह्मण के पुनर्जीवन की कथा सुनकर आपके दर्शन के अत्यंत उत्सुक हैं। तुलसीदास जी उसके साथ दिल्ली पहुंचे। वहाँ सम्राट ने उन्हें सादर आसन दे सम्मान प्रदर्शित करते हुए उनसे कोई करामात, कोई सिद्धि दिखाने का विशेष हठ किया। तुलसी दास जी ने गंभीरता से कहा कि सब राम का किया होता है। उनकी भक्ति सब सार है। करामात आदि दिखाना तुलसीदास को रुचिकर न था। वे तो शील सदाचार और सत्य के द्वारा प्रेम मूर्ति व्यापक परमात्मा श्रीराम की भक्ति को लोकसेवा में परिणित करने का आदर्श सिखला रहे थे। अंत में क्रुद्ध हो सम्राट ने उन्हें बंदी खाने में कैद कर दिया।

दिल्ली पति बादशाह अहदी पठाये लैन
ताको सो सुनायो सूने विप्र ज्यायो जानिए
देखवे को चाहे नीके सुख सो निपाहे आइ
कही बहु विनय गही चले मन आनिए
पहुंचे नृपति पास आदर प्रकास कियो
दियो उच्च आसन ले बोल्यो मृदु वानिए
कीजे करामाति जग ख्यात सब भाँत किये
कही झूठ बात एक राम पहचानिये।

507

उस समय दुःखपूर्ण हृदय से गो. तुलसी दास जी ने फिर हनुमान जी से प्रार्थना की। इस पर बंदरों की एक बड़ी सेना ने शाही दुर्ग पर धाबा किया और सम्राट के हरम तथा दरबार के सभी लोगों की खूब दुर्गति कर डाली। घबराकर बादशाह तुलसी दास जी के शरणापन्न हुआ। इस समय सरल हृदय तुलसीदास जी ने दयाद्र हो पुनः मारुति से कपियों को शांत कर उन्हें कष्ट देने के हेतु क्षमा याचना करने की प्रार्थना की। सम्राट से उस कोट को त्याग नया कोट बनाने का प्रण करा तुलसीदास वहाँ से काशी लौट आए।

इस घटना की पुष्टि अन्य साक्षियों से भी होती है। तुलसी दास जी की विनय पत्रिका के पदों में इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। बंदी होने पर तुलसी दास जी ने श्री हनुमान जी से प्रार्थना करते हुए कहा–

तोहि ना ऐसी बूझिये हनुमान हठीले
सेवक सीता राम के तुमसे ना बसीले
तेरे देखत सिंह के सुत मेढक लीले
जानत हूँ कलि तेरिउ मनी गुन गन कीले
हांक सुनत दसकंध के भय बंधन ढीले
सो बल गयो कि भए अब कछु गर्व गहीले
सेवक को पर्दा फटे तू समरथ सीलें
अधिक आपु ते आपु मैं सन्मान सहीले
सांसति तुलसीदास की देखि सुजस तुही ले
तिहू कॉल तिन को भलो जो राम रंगीले ।

(विनय पत्रिका)

फिर सम्राट के शरणापन्न होने पर उन्होंने उपद्रव शांति हेतु निम्न प्रार्थना की –

अति आरत अति स्वार्थी अति दिन दुखारी
इनकी विलगु न मानिये बोलहिं न बिचारी
लोक रीति देखी सुनी व्याकुल नर नारी
अति बरसे धन बरसै देहि देवहिं गारी
ना कहि धाए नाथ सो भई सासति भारी
करि धाए कीवी क्षमा निज ओर निहारी ।
समय सांकरी सुमरिये समरथ हितकारी
सो सब सवधि दया करे अपराध बिसारी
बिगरी सेवक की सदा साहिब है सुधारी
तुलसी पै तेरी कृपा निरुपाधि निहारी ।

(विनय पत्रिका)

कवितावली के निम्नलिखित छंद से भी उक्त प्रकार से बंदी बनना विदित होता है–

कानन भूधर बारि बयारि दबा
बिस ज्वाल महा अरि घेरे
संकट कोटि परो तुलसी तहं
मातु पिता सुत बंधु न मेरे
राखहि राम कृपा करि के
हनुमान से पालक हैं जिनके
नाक रसातल भूतल में
रघुनायक एक सहायक मेरे ।

(कवितावली)

इस घटना में दिल्लीश्वर सम्राट का नाम नहीं दिया गया है। श्रीयुत एफ एस ग्राउस ने अपने ग्रंथ 'रामायण ऑफ तुलसी दास' में प्रोफेसर विल्सन का मत उद्धृत करते हुए लिखा है– सर विल्सन अपने बहुमूल्य और आकर्षक निबंध 'ऐसे ऑन रीलिजस सेक्ट ऑफ हिंदूज' में तुलसी दास के विषय में निम्नलिखित सूचना देते हैं जिसे वे भक्तमाल से प्राप्त हुई कहते हैं–

'अपनी जिस पत्नी पर तुलसीदास कामुक भाव से अत्यंत आसक्त थे उसी के द्वारा भर्त्सना किए जाने पर उनमें रामभक्ति की विशेष अंतर्प्रेरणा हुई और उन्होंने वैराग्य ले पहले बनारस की यात्रा की और फिर वे चित्रकूट गए जहाँ उन्हें हनुमान जी के प्रत्यक्ष दर्शन हुए जिनसे उन्हें राम काव्य रचने की प्रेरणा प्राप्त हुई और उनमें चमत्कार, सिद्धि की शक्ति जागृत हुई। उनकी ख्याति दिल्ली तक पहुंची। वहाँ उस समय शाहजहाँ सम्राट था। वादशाह ने उन्हें बुलाया और श्रीराम के प्रत्यक्ष दर्शन कराने का हठ किया।

देखों राम कैसे कहि कैद किए किए हिये
हूजिए दयाल हनुमान जी कृपाल हो
ताही समय फैल गए कोटि कोटि कपि नए
नीचे तन खैंच चीर भयो यों विहाल हो
फ़ोरें कोट मारे चोट किए डारे लोट पोट
लीजे कौन ओट धाय मानो प्रलै काल हो
भई तब आंखें दुख सागर को चाखैं अब
वे ई हमें राखे भाखैं बारों धन माल खों ।

508

तुलसीदास ने जब बादशाह का कहा न माना तब उसने उन्हें कैदखाने में डलवा दिया। आसपास रहने वाले लोगों ने उन्हें बंधन मुक्त करने की प्रार्थनाएँ की क्योंकि वे अपनी खुद की रक्षा के हेतु चिंतित हो रहे थी। बंदी खाने में झुंड के झुंड वानर आ पहुँचे और वे कैद खाने के साथ ही उसके निकटस्थ भवनों को भी गिराने और नष्ट करने लगे।

धाइ पाहि लिए तुम दिये हम प्राण पावें
आप समझावें करामाति नैकु लीजिए
लाज दबि गयो नृप तब राखि लियो कह्यो
भयो घर रामजू को वेगि छाँड़ि दीजिए

सुनि तजि दयो और करो लेंकें कोट नयो
अब हूँ न रहें कोऊ बामें तन छीजिए
कासी जाइ वृंदावन धाइ मिले नाभा जू सों
सुनी हो कवित्त निज रीझ मति भीजिए ।

509

शाहजहाँ ने तुरंत कवि तुलसी दास को बंधनमुक्त कर उन्हें सताने पर क्षमा याचना करते हुए उनकी कृपा चाही। इस पर तुलसी दास ने सम्राट को पुरानी दिल्ली को, जो उस दिन से राम का स्थान हो गई थी, से चले जाने की बात कही और उसे मानकर शाहजहाँ ने पुरानी दिल्ली त्याग नई दिल्ली बसाई जो उसके नाम पर शाहजहांनाबाद कही जाने लगी। इसके पश्चात् तुलसीदास वृंदावन गए।'

इसमें शाहजहाँ का नाम दिया गया है जो प्रिया दास और नाभाजी की भक्तमाल तरह उसकी टीका मैं मूल में कहीं भी नहीं है। इस पर अधिक कुछ लिखना व्यर्थ है क्योंकि शाहजहाँ बादशाह तुलसीदास के मृत्यु के पूरे पांच वर्ष पीछे गद्दी पर बैठा था। अतएव गोस्वामी तुलसीदास जी को सम्राट शाहजहाँ के पिता बादशाह जहांगीर के द्वारा बंदी बनाने की बात होना ही संभव है। उन्हीं के बुढ़ापे में मृत्यु के पांच वर्ष पूर्व दिल्ली के पुराने किले में बंदरों के डेरा डालने और कोर्ट तहस नहस किए जाने की घटना घटी थी जिसपर उनके बाद ही सम्राट शाहजहाँ ने दिल्ली का नया किला बनवाया था। इस घटना में अपनी छिपी पराजय की अनुभूति ने इसका उल्लेख जहांगीर के आत्म चरित 'तुजुके जहांगीरी' या जहांगीरनामा मैं नहीं करने दिया। संत को सताने और अपने फजीते के इस किस्से को जहांगीर स्वयं अपनी कलम से लिखने में झिझके तो इसमे आश्चर्य है क्या ?

मदन गुपाल जू को दरसन करि कही
सही राम इष्ट मेरे दृग भाव पागी है
वैसोई सरूप कियो दियो लै दिखाइ रूप
मन अनुरूप छवि देख नीकी लागी है
काहू कह्यो कछू कृष्ण अवतारी जू प्रशंस
महा राम अंश सुनि बोले मति अनुरागी है
दसरथ सुत जानो सुंदर अनूप मानो
ईसता बताई रति कोटि गुनी जागी है ।

510

(नाभादास सटीक पृष्ठ 280, 284)

इस घटना के विषय में डॉ श्यामसुंदर दास और डॉ. पीतांबर दत्त बडथ्वाल ने विचार करते हुए लिखा है–ऐतिहासिक दृष्टि से भी यह बात असंभव नहीं क्योंकि गुसाई जी बहुत समय तक जहांगीर के समसामयिक रहे। जहांगीर नामा में इस बात का उल्लेख क्यों नहीं मिलता कदाचित जहाँगीर इसे अपने लिए कलंक की बात समझता था कि मैंने व्यर्थ ही एक साधु को सताया। इससे उसको अपने ग्रंथ में उल्लेख न होने दिया हो।

(गोस्वामी तुलसीदास पृष्ठ 139)

स्वयं तुलसीदास हनुमान जी को 'बंदीछोड़' कहते हैं तब उनकी कैद होने और हनुमान जी द्वारा छुड़ाए जाने की कथा सत्य ही है। वे लिखते हैं–

बंदी छोर विरुदावली निगमागम गाई
नीकी तुलसीदास की तोरि न निकाई।

(विनय पत्रिका)

श्री कृष्ण का रामरूप दर्शन

काशी से गोस्वामी तुलसीदास जी नाभा दास जी से मिलने वृंदावन पधारे थे। इसका उल्लेख नाभादास से उनके परिचय के साथ किया जा

चुका है। इस समय नाभादास जी के साथ वे व्रज भूमि के देवस्थानों में दर्शनों को गए थे। इस समय मदन गोपाल जीके दर्शनों के काल उन्होंने मदन गोपाल श्रीकृष्ण से अपने इष्टदेव श्री राम के रूप में अपने दर्शन देने की प्रार्थना की और उसी समय सबके देखते देखते श्री कृष्णमूर्ति में श्रीराम मूर्ति के दर्शन हुए। इस समय भक्त तुलसी दास ने प्रसन्न हो विनयावनत कहा–

मुरली मुकुट दुराय के धर्यो धनुष सर हाथ
तुलसी लखि रुचि दास की नाथ भए रघुनाथ।

दो सौ वैष्नवन की वार्ता मैं श्री गोकुल नाथ गोसाईं ने इस घटना का उल्लेख नन्ददास की वार्ता में इस प्रकार किया है–

'जब नन्ददास जी श्रीनाथजी के दर्शन करिवे कू गए तब तुलसीदास हूँ उनके पीछे–पीछे गए । जब श्री गोवर्धनाथ जीके दर्शन करे तब तुलसी दास जी ने माथो नवायो नहीं। तब नन्ददास जी जान गए– ये श्री रामचन्द्रजी बिना और दूसरे कु नहीं नमेंहैं। तब नन्ददास जी ने मन में विचार की तो यहाँ श्री गोकुल में इन कूं श्री रामचन्द्रजी के दर्शन कराऊं तब ये श्री कृष्ण को प्रभाव जानेगे। तब नन्ददास जी ने गोवर्धननाथ जी सों विनती करी–

कहा कहूं छवि आपकी भले विराजे नाथ
तुलसी मस्तक तब नवे धनुष वान लो हाथ।

ये बात सुनके श्रीनाथजी को श्री गोसाँई जी की कांन पे विचार भयो। जो श्री गोसाई जीके सेवक कहे सो हमको मानो चाहिए। जब श्री गोवर्धननाथ जी श्री रामचन्द्रजी को रूप धरके तुलसी दास जी को दर्शन दए तब तुलसीदास जी ने श्री गोवर्धन दास नाथ कों साष्टांग प्रणाम करी।' इसमें श्री कृष्ण मूर्ति के श्री राम मूर्ति में दर्शन देने का हेतु पुष्टिमार्गी नंददास को कहा है (अष्ट छाप पृष्ठ 102)

इस घटना पर लोगों को आश्चर्य प्रकट करते देख तुलसीदास जी भक्ति की दृढ़ता के बल तथा भगवान की भक्त वत्सलता की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए कहा–

प्रभु सत्य करी प्रहलाद गिरा
प्रगटे नर केहरि खंभ महाँ
झषराज ग्रस्यो गजराज कृपा
तत्काल विलंब कियो न तहाँ
सुर साखी है राखी पाण्डु बधू
पट लूटत कोटिन भूप जहाँ
तुलसी भज सोच विमोचन
जन को प्रन राखो न राम कहां।

इस प्रसिद्ध घटना का उल्लेख करते हुए महाराष्ट्र के कवि मोरोपंत लिखते हैं–

श्री कृष्ण मूर्ति जेणे केली
श्री राममूर्ति सज्जन हो
राम-सुत मयूर म्हणे त्याचा
सूयशी नित्तान्त सज्जन हो
(तुलसी स्तव)

इस समय जब कुछ लोगों ने श्रीकृष्ण को 16 कला से पूर्ण भगवान का अवतार कहा और श्रीराम को 12 कलाओं से युक्त अंश अवतार कहा तब तुलसीदास जी ने विनम्रता से कहा कि मैं तो अब तक दशरथ नदन, आदर्श शील संपन्न अति सुन्दर मानकर ही श्री राम का अनन्य भक्त था। आज उन्हें ईश्वर अवतार आप से सुन कर मेरी भक्ति उनमें सौ गुनी बढ़ गई है ।

प्रियादास जी के पीछे फिर अनेक भक्त मालाएँ प्रस्तुत होती रहीं जिनमें नाभादास जी के मूल् की

प्रिया दास की विस्तृत टीका में उल्लेखित भक्त विषयक वार्ता को अपनाया गया। हम उन सबमें इनकी दी गई बातों को अवश्य पाते हैं। तुलसी दास जी के सभी जीवन चरित लेखकों ने प्रिया दास के छंद उद्धृत किए हैं। इस स्थान में हम उन पर विचार भी कर सके हैं। हम भक्तमाल पर प्रिया दास की टीका के आधार पर चलनेवाले राजा प्रताप सिंह और उनके भक्ति कल्पद्रुम महाराज रघुराज सिंह की रामरसिकावली, भक्तमाल बाबा बेनी माधव दास के मूल गोसाईं चरित आदि सभी में उक्त सात घटनाओं को कुछ परिवर्तित और परिवर्धित रूप में पाते हैं। टीकाकारों ने भूमिका में तुलसी चरित्र में उनका उल्लेख अनिवार्य रूप से किया है । इन्हीं के आधार पर राजा प्रताप सिंह ने अपने कल्पद्रुम में, रीवा नरेश महाराष्ट्र विश्वनाथ सिंह ने अपने भक्तमाल में और महाराज रघुराज सिंह अपनी रामरसिकावली में तुलसीदास का चरित्र अंकित किया है ।

बेनी माधवदास का मूल गोसाईं चरित्र

प्रियादास जी की तुलसी विषयक जीवन सामग्री के अतिरिक्त उल्लेखनीय रचना बाबा बेनी माधव दास का मूल गोसाई चरित्र है। इसका सर्वप्रथम उल्लेख ठाकुर शिव सिंह सेंगर ने अपने शिव सिंह सरोज मैं गोस्वामी तुलसी दास का संक्षिप्त परिचय और उनकी रचनाओं की संख्या देते हुए किया है। उन्होंने लिखा है – तुलसीदास के जीवन चरित्र की पुस्तक वेणी माधव दास कवि बसका ग्राम बासी ने, जो इनके साथ रहे, बहुत विस्तारपूर्वक लिखी है। उसके देखने से महाराज के सब चरित्र प्रकट होते हैं। इस पुस्तक में ऐसी विस्तृत कथा को हम कहाँ तक संक्षेप में वर्णन करें।

(शिवसिंह सरोज पृष्ठ 427)

श्री तुलसीदास जी के जीवन चरित्र और साहित्य के अन्वेषकों में स्वर्गीय सर जॉर्ज ग्रियर्सन से लेकर श्री वैद्यनाथ जी आदि किसी को भी खोज करने में इस ग्रंथ की कही प्रप्ति न हो सकी। स्वयं शिव सिंह जी ने कदाचित इसके विषय में सुनी हुई बात लिख दी है। इसी से जहाँ वर्तमान मूल गोसाई चरित्र ने सम्वत 1554 विक्रमी तुलसी का जन्मकाल माना है वहाँ ठाकुर शिव सिंह ने सम्वत 1583 विक्रमी माना जो कदाचित सम्वत 1589 विक्रमी ही है। भूल से लिपि दोष से तीन को अंत नौ के स्थान पर लिखा गया। इससे स्पष्ट है शिवसिंह ने मूल गोसाई चरित्र को देखा नहीं था। शिवसिंह सरोज ने रचना के उदाहरण में जो पंक्तियां उद्धृत की, वे अन्य गोसाई चरित्र की हैं। इन्हें नवल किशोर प्रेस के महंत राम चरण दास की टीका के साथ प्रकाशित किया गया है और जिसके रचयिता कोई भवानीदास है।

वेणी माधवदास की रचना का मूल गोसाईं चरित से उद्धरण जो ठाकुर शिवसिंह सेंगर ने दिया है, वह निम्नलिखित है–

यहि भाँति कछुक दिन बीत गये
अपने अपने रस रंग रये
मुखिया इक जूथप माझ रहे
हरिदासन को अपमान गहे ।

–शिवसिंह सरोज पृष्ठ 131

इससे भी रचयिता भवानी दास ने गोसाई चरित्र नाम दिया है। इसका रचना काल सम्वत 1810 विक्रमी के लगभग है जबकि मूल गोसाईं चरित संवत् 1655 की रचना हो सकती है, यदि वैनी माधवदास उसके रचयिता हैं। उक्त पंक्तियाँ जो उद्धरण मैं दी है, भवानी दास के गोसाई चरित्र में इस प्रकार है–

यहि भाँति कछु दिन बीति गए
अपने अपने रस रंग रये
मुखिया इक झूथ समाज रहे
भक्तन निंदा दृढ़ भाव गहे ।

—गोसाई चरित पृष्ठ 20

तात्पर्य यह है कि वेणी माधव दास रचित जिंस गोसाईं चरित का उल्लेख शिवसिंह ने किया था वह वर्तमान मूल गोसाईं चरित से भिन्न था। वर्तमान मूल गोसाईं चरित की प्राप्ति की कथा यह है–

उन्नाव के एक वकील पंडित रामकिशोर शुक्ल बी ए ने रामचरित मानस का एक संपादित संस्करण संभवतः 1992 विक्रमी में नवल किशोर प्रेस से निकलवाया है। उसे आपने मूल गोसाई चरित बाबा बेनी माधव दास द्वारा सम्वत 1687 कार्तिक कृष्णपक्ष नवमी के दिन निर्मित बतलाते हुए प्रकाशित कराया है। उक्त शुक्ल जी ने अयोध्या के प्रसिद्ध रामायण रामानंदी संत महात्मा बालकराम विनायक द्वारा प्राप्त बतलाया है। बालकराम विनायक जी ने उसे पंडित रामधारी पांडे से प्राप्त किया है जिनके पिता उसे गोरखपुर के किसी व्यक्ति से पाठ करने हेतु ले आए थे । तब से वह पूजा में रहता और वही उसके दर्शन किए जाते थे। विदेशी कागज है 9 सही 1/2 X पांच) के आकार के 54 पृष्ठ हैं। प्रत्येक पृष्ठ में 12 पंक्तियाँ हैं । ग्रंथ की पुष्पिका इस प्रकार है

'इति श्री बेनी माधव दास कृत मूल गोसाईं चरित समाप्तम्। श्री शांडिल्य गोत्रोत्पन्न पंक्ति पावन त्रिपाठी राम रक्ष मणि रामदासेन तदात्मजेन लिखितम्। मिति विजयादशमी संवत 1848 भृगु वासरे' (मूल गोसाई चरित)

इसके प्रकाश में आते ही इस पर पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में निम्नलिखित मत प्रकट किया–

'शिवसिंह सरोज ने गोस्वामी जी के एक शिष्य बेनी माधव दास कृत गोसाईं चरित का उल्लेख किया है। इस ग्रंथ का कहीं पता न था। पर कुछ दिन हुए सहसा यह अयोध्या से निकल पड़ा है। अयोध्या में एक अत्यन्त निपुण दल है जो लुप्त पुस्तकों और रचनाओं को समय समय पर प्रकट करता रहता है। कभी सूरदास जी द्वारा तुलसी दासजी की स्तुति का यह पद प्रकाशित होता है–

धन्य भाग मम संत सिरोमनि
चरण कमल तकि धाये
दया दृष्टि से कम दिसि
हेरंउ तत्व स्वरूप लखाय
कर्म उपासन ज्ञान जनित भ्रम
संशय मूल नसाय
हरि लीला गाई तेहि सुनि
तनु पुलकित मानस धीर
सुधा समान बचन कहि
पोषेउ सुमिरत सिय रघुवीर
श्री तुलसी सुचि संत समागम
अद्‌भुत अमल अनूप
सूरदास जीवन फल पायो
दरसन जुगल स्वरूप ।

यथार्थ में ये दोनों पंक्तियाँ सूरदास जी के निम्न पद से खींची है–

कर्म जोग पुनि ज्ञान उपासन सब ही भ्रम भरमायो
श्री बल्लभ गुरु तत्व सुनायो लीला भेद बतायो।

सूरसागर सारावली।

इस पद के अनुसार सूरदास का कर्म उपासना ज्ञान जनित भ्रम बल्लभाचार्य जी ने नहीं तुलसी

दास जी ने दूर किया था। सूरदासजी तुलसी दास जी से अवस्था में बड़े थे और उनसे पहले प्रसिद्ध भक्त हो गए थे। ये सभी लोग जानते हैं। इसमें अनेक बातें इतिहास विरुद्ध है, इसमें कोई संदेह नहीं। तिथि, वार आदि ज्योतिष की गणना से कुछ ठीक मिला कर तथा तुलसी के संबंध में चली आती हुई सभी जनश्रुतियों का समन्वय करके सावधानी के साथ इसकी रचना हुई है। पर पदावली इसे बिल्कुल आज कल की रचना घोषित कर रही है। यह बात अवश्य है कि गोसाईं चरित्र में जो वृत्त दिए गए हैं वे अधिकतर वही हैं जो परम्परा से प्रसिद्ध चले आ रहे हैं'– हिंदी साहित्य का इतिहास पृष्ठ 150 से लेकर 152

आचार्य शुक्ल के उक्त कथन के विरोध में तुलसी साहित्य के प्रसिद्ध पंडित प्रोफेसर राम दास गौड़ एम. ए. ने लिखा है–

'मूल गोसाईं चरित में वे सभी बातें मौजूद हैं जिनका अंतर्साक्ष्य गोस्वामी जी की रचनाओं में मिलता है। जो बातें अप्राकृतिक मालूम होती हैं उनके समान बातें भक्तों की कथाओं में संसार के सभी देशों में पायी जाती हैं। वेणी माधव दास जी गोसाई जी के शिष्य और श्रद्धालु भक्त थे । संभव है कि गुरु के संबंध में अपने विश्वास के अनुसार कुछ सुनी सुनाई बातें भी लिखी हों। अच्छा लेखक अनेक बातों में अपनी स्मृति और धारणा पर विश्वास कर के ऐतिहासिक भूलें कर सकता है। मूल गोसाईं चरित में तिथियों के देने में जो असावधानी बेनी माधव दास ने वरती है उससे हम ये निश्कर्ष निकाल सकते हैं कि वेणी माधव दास जी ने इन घटनाओं के लिखने में सावधानी बरती होगी। उनके वर्णन का मेल यदि किसी और लेखक से न मिले तो हमें वेणी माधव दास पर अविश्वास करने की उतावली नहीं करनी चाहिए बल्कि सत्य के विषय में और अधिक प्रवृत्त होना चाहिए'। (मानसांक कल्याण का पृष्ठ 32)

इसके बाद स्वर्गीय बाबू श्यामसुंदर दास बीए और डॉक्टर पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने इस मूल गोसाई चरित को प्रामाणिक मान इसके आधार पर 'गोस्वामी तुलसीदास' नामक ग्रंथ में जीवनी पर प्रकाश डाला। उक्त विद्वान अन्वेषकों ने इसके विषय में लिखा है–

अभी थोड़े दिन हुए गोसाई जी के एक और शिष्य बाबा वेणी माधव दास का लिखा एक ग्रंथ मिला है। इसको जनता के समक्ष प्रकाशित करके उन्नाव के वकील पंडित रामकिशोर शुक्ल तुलसी प्रेमियों के हार्दिक धन्यवाद के भाजन हुए हैं। पंडित रामकिशोर शुक्ल माधव दास की प्रति कनक भवन अयोध्या के महात्मा बालक राम विनायक जी से प्राप्त हुई थी। बाबा बेनी माधव दास बसका गांव के रहने वाले थे। उन्हीं ने गोसाई चरित नाम से गोसाई जी का एक जीवन चरित्र पद बद्ध करके लिखा था जो अब कहीं नहीं मिलता। मूल गोसाईं चरित इसी बड़े चरित्र का संक्षिप्त संस्करण जान पड़ता है। इसे नित्य पाठ के लिए रखा था। मूल गोसाई चरित से इस बात का संकेत मिलता है कि जो गोसाई जी से वेणी माधव दास की पहली भेंट सम्वत 1609 और 1616 के बीच में हुई थी, संभवत इसी समय वे उनके शिष्य भी हुए हों। गोसाई जी की मृत्यु सर्वसम्मति से संबंध 1680 बिक्रमी में हुई। जिस व्यक्ति का अपने चरित नायक से 64–70 वर्ष का दीर्घकालीन संपर्क रहा हो उसके लिए जीवन चरित्र की प्रमाणिकता के विषय में संदेह के लिए बहुत कम अवकाश हो सकता है। यदि यह मूल

चरित्र प्रमाणिक ना हो तो आश्चर्य की बात होगी। वास्तव में मूल गोसाईं चरित से ही हम तुलसी दास जी के चरित्र का दृढ़ आधार प्राप्त करते हैं"।

(गोस्वामी तुलसीदास पृष्ठ 20 से 22)

परन्तु जब हम मूल गोसाईं चरित को सत्यान्वेषण की प्रवृत्ति से प्रेरित हो ज्ञान की कसौटी पर जांच के लिए रख कसते हैं तब हमें इसकी आधुनिक भाषा शैली के साथ ही घटनाओं के विषय भी अशुद्ध मिलते हैं। डायरी के रूप में घटनाओं की तिथि जैसी इसमें हैं हिंदी के तत्कालीन किसी ग्रंथ में प्राप्त नहीं होती। और ऐतिहासिक घटनाओं तथा तिथियों की भूलें हमें इस रचना को अप्रासांगिक ठहराने को विवश करती है। श्री सूरदासजी का तुलसीदास जी के दर्शनों को पहुँचने का वर्णन करते हुए लिखा है–

सोरह से सोरह लगे कामदगिरि ढिंग बास
श्रुति एकांत प्रदेश में आए सूर सुदास
पठये गोकुल नाथ जी कृष्ण रंग में बोरि
दृग फेरत चित चातुरी लीन्ह गोसाईं छोरि ।
कवि सूर दिखाउ सागर को
श्रुति प्रेम कथा नट नागर को
पथ द्वय पुनि गाय सुनाय रहे
पद पंकज पे सिर नाय कहे
अस आशिष देखत श्याम ढरे
यहि कीरति मोरि दिगंत चरे
सुनि कोमल बैन सुदादि दिए
पद पोषि उठाए लगाए हिये
कह श्याम सदा रस चाखत है
रुचि सेवक की हरि राखत है
तनिको नहिं संसय है यहि
माँ श्रुति शेष बखानत है महि
दिन रात रहे सत्संग पगे
पद कंज गहे जब जान लगे
गहि बांह गोसाईं प्रबोध किये
पुनि गोकुल नाथ को पत्र दिए
ले पाति गए जब सूर कवी
उर में पधराय के श्याम छ्बी ।

– मूल गोसाईं चरित 156

इसमें कामद गिरि पर ठहरे हुए तुलसीदास की सेवा में सूरदासजी की उपस्थिति फिर वह संबंध 1616 में और वह भी गोकुलनाथ जी के आदेश से जिन की अवस्था कठिनता से 10 वर्ष की होगी। फिर सूरदासजी के द्वारा गोस्वामी तुलसी दास के चरणों पर सूरसागर का रखा जाना और उनसे यश प्राप्ति का वर मांगना आदि सभी बातें हैं। ये सम्प्रदाय के अभिमानी किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा लिखी जान पड़ती है जिसे उस समय का कुछ भी ज्ञान न था। फिर विट्ठल नाथ न लिखकर गोकुल नाथजी को तुलसीदास द्वारा पत्र लिखे जाने की बात तो बिलकुल ही अशुद्ध है क्योंकि सम्वत 1642 तक वल्लभकुल की गद्दी पर बिट्ठलनाथजी थे। यह रचना यथार्थ में दो रामानंदी साधुओं की ओर से प्रस्तुत की गई जान पड़ती है। इसी प्रकार इसमें केशव दास जी के विषय में लिखा है –

कवि केशवदास बड़े रसिया
घनश्याम शुकुल नभ के बसिया
कवि जानके दर्शन हेतु गए
रहि बाहर सूचन भेज दिए
सुनि के जु गुसाई कहे इनकी
कवि प्राकृत के सब आपन की
फिर गे झट केशव सो सुन के

निज तुच्छता आपहु के गुन के
जब सेवक टेरेऊ गे कहि के
हों मेटि हों कालिह बिनै गहि के
रचि राम सु चंद्रिका रातहिं में
जुरे केशव जु सब घाटहि में
सत्संग जमी रस रंग मची
दोउ प्राकृत दिव्य विभूति रवची ।
–मूल गो चरित

मूल गोसाईं चरित के अनुसार सम्वत 1643 के लगभग केशवदास बनारस गए और एक ही रात में राम चंद्रिका की रचना कर डाली परंतु यह सरा सर झूठ है क्योंकि स्वयं केशवदास राम चंद्रिका की रचना के काल के विषय में लिखते हैं–

सोरह सौ अट्ठानवे कार्तिक सुदि बुधवार
रामचन्द का चंद्रिका तब लीनी अवतार।
– राम चंद्रिका

तात्पर्य है कि उक्त रचना बाबा वेणी माधव दास की नहीं है। यथार्थ में यह रचना भवानी दास रचित गोसाई चरित्र से ली गयी है और उनके बाद की है। इसके संबंध में डॉक्टर माता प्रसाद गुप्त के निर्णय से सहमत हूँ जो निम्न लिखित है–

एक बात और है जिसकी ओर ध्यान आकर्षित करना आवश्यक होगा। उपर्युक्त गोसाई चरित जो मूल गोसाई चरित्र के बीच में एक गहरी समानता का होना। प्रारंभ के कुछ छंदों को छोड़ कर मूल रूप में एक ही है। यह दोनों की परस्पर तुलना से स्पष्ट हो जाता है।

वस्तुतः उस दोहे के अनंतर जिसमें दोनों के लेखक राम दर्शन प्रसंग का वर्णन करते हैं, कवि के जीवन की ऐसी कोई घटना नहीं मिलती जिससे दोनों में स्थान न मिलता हो। उल्लेख योग्य अंतर यदि कोई है तो यही कि मूल गोसाईं चरित प्रत्येक घटना को तिथि से संबद्ध करता है और समस्त प्रसंगों का वर्णन एक स्थिति क्रम से करता है। और गोसाईं चरित किसी भी घटना के लिए कोई भी तिथि नहीं देता। ओर प्रसंगों के तारतम्य में मूल गोसाई चरित्र से कुछ भेद रखता है। साम्य केवल वर्णन उपक्रम तक ही सीमित नहीं है वरन हम देखते हैं की अधिकतर प्रसंगों के वर्णन मैं दोनों एक ही शब्दावली का प्रयोग करते हैं। नीचे लिखा दोहा दोनों ही में मिलता है–मूल गोस्वामी चरित 22 तथा गोसाईं चरित पृष्ठ 8–

श्री हनुमंत प्रसंग यह विमल चरित विस्तार।
लहेउ गुसाईं दरस रस विदित सकल संसार।।

उपर्युक्त पाठ मूल गोसाईं चरित का है। गोसाईं चरित में 'यह विमल, के स्थान पर 'शुभ प्रथम' पाठ मिलता है। यदि गोसाईं चरित के लेखक ने अपनी रचना के लिए सामग्री मूल गोसाईं चरित से प्राप्त की होती तो वह अनावश्यक रूप से तिथियों को क्यों निकाल देता और उनका सम्यक निर्वाह प्रसंग के तारतम्य में क्यों ना करता!
– (तुलसीदास पृष्ठ 55–56)

तात्पर्य यह है कि मूल गोसाई चरित्र उक्त भवानी दास रचित गोसाईं चरित के आधार पर लिखी आधुनिक रचना है जिसे गोरखपुर के किसी रामानंदी साधु ने प्रस्तुत किया। तुलसी दास जी के जीवन चरित्र के संबंध में इसका प्रमाण सर्वथा अग्राह्य ही है। इसी से इसकी दी हुई तुलसीदास की जन्मस्थल और जन्म संवत को अग्राह्य ही मानना ठीक समझा गया। यद्यपि इसकी उत्पत्ति गोरखपुर से होने के कारण स्थानीय महत्त्व की ममता से कल्याण के मानसी के संपादक ने इसके आधार पर तुलसीदास की जीवनी दे इसे भक्त समाज में महत्त्व दिया है पर

ऐतिहासिक विवेचन में इसका मूल्य नहीं के बराबर है।

इस मूल गोसाई चरित्र के अनुसार तुलसी दास जी की संक्षिप्त जीवनी यह है–

संवत् 1554 विक्रमी में सरवार के रहने वाले पाराशर गोत्र के ब्राह्मण वंश में जो राजापुर में बस गया था, तुलसीदास जी का जन्म माता हुलसी के गर्भ से हुआ था। जन्म के समय वे पंच वर्षीय बालक दीखते थे और उनके 32 दांत साफ दिखते थे। अन्य बालकों के समान वे रोये नही और राम राम कहने लगे –

सिसु जनमत रंचक रोयो नहीं,
सो तो बोलेउ राम गिरेऊ ज्यों मही।

फिर तुलसीराय जी स्वयं यह क्यों लिखते–

तुलसी जब जग में भयो जगत
जगत हंसे तू रोय।
ऐसी करनी कर चलो कि
तुम हँसु जग रोय।

अन्य वालकों के समान वे रोए नहीं और राम राम कहने लगे। शिशु के जन्मते प्रसूति गृह में उपस्थित स्त्रियाँ कांपने लगी और बोली की कोई राक्षस उत्पन्न हुआ है –

कपती बकती कोऊ राकस जायो।

बंधु बांधवों से परामर्श किया गया कि क्या किया जाए। यह निश्चित हुआ कि 3 दिन यदि जीवित रहे तो विचार किया जाएगा। इसी समय तुलसी माता की दशा बिगड़ी और आसन्न मरण उन्होंने अपनी चुनिया नॉमिनी दासी को अपने आभूषण दे बालक तुलसी दास के लालन–पालन का भार सौंपा। वह रातों–रात बालक को लेकर अपनी ससुराल चली गयी और यहाँ हुलसी की मृत्यु हो गई। चुनिया ने 65 मास तक पाला पोसा पर पीछे सांप के काटने से वह मर गयी। तुलसी दास के पिता को समाचार दिया गया पर कुलक्षणी बालक को लेने से उन्होंने स्पष्ट अनिच्छा प्रकट की। अंत में बालक तुलसीदास अनाथ दशा में द्वार द्वार भीख मागते। पार्वती जी ने दया कर ब्राह्मण रूप धर कुछ दिन खिलाया पिलाया। आखिर महादेव जी से पार्वती जी का रोज़ रोज़ कष्ट न देखा गया और उन्हीने राम सेल पर कुटी बनाकर रहने वाले अनंतानंद के शिष्य नरहर्यानंद को स्वप्न दिया कि बालक की रक्षा करो और उसे रामचरित मानस का उपदेश दे बालक को जाकर विधिवत मंत्र दो और उन्हें रामकथा का प्रबोध करने का आदेश दिया। नरहर्यानंद वालक तुलसीदास को खोजते चुनिया की ससुराल के गांव पहुंचे और वहाँ से तुलसीदास को साथ लेकर अयोध्या आ हनुमान टीले पर रहने लगे। यहीं उन्होंने तुलसी दास जी को पढ़ाया लिखाया। फिर एक बार हेमन्त ऋतु आने पर वे बालक तुलसी दास को ले घाघरा और सरयू के संगम पर सूकरखेत (पसका गांव) पहुँचे। वहाँ रहकर उन्होंने तुलसी को रामचरित मानस की शिक्षा दी। वहाँ से घूमते फिरते वे काशी पहुंचे और पंचगंगा घाट पर ठहरे। वहाँ शेष सनातन नामक विद्वान के पास तुलसी दास को विद्याध्ययन के लिए छोड़ नरहरि आनंद पर्यटन को चले गए। 15 वर्ष तुलसीदास ने शेष सनातन से विद्या पायी। अंत में 15 वर्ष के बाद उनके मरने पर वे राजापुर लौटे। एक भाट से अपने वंश के नष्ट हो जाने का वृतांत जान उन्हैं दुख हुआ। उन्होंने उनका श्राद्ध आदि किया और फिर राजापुर के लोगों के आग्रह से कहीं पर घर बनाकर रामायण बाँचकर उदर पूर्ति करने

लगे। एक बार यमुना पार के एक ग्राम में भारद्वाज गोत्र के कोई ब्राह्मण आए और उन्होंने हठ पूर्वक अपनी सुंदरी कन्या तुलसीदास को अर्पण करना चाही। बड़ी कठिनता से–(द्विज मान्यो नहीं धरना धर के, नहिं खाय पिये, समना करके) कन्या का विवाह तब तुलसीदास से कर पाया। फिर तो तुलसीदास उस रूपवती युवती पर ऐसे आशक्त हुए जैसे विश्वामित्र मुनि मेनका अप्सरा पर हुए थे । फिर अनेक वर्ष रस केलि में बीत गए। एक पल भी प्रिया से विलग रहना तुलसीदास को असह्य था । एक दिन चुपके से वह अपनी माता से मिलने भाई के साथ चली गई जब तुलसीदास एक गांव गए थे । वे जब लौटे तब दासी से पत्नी के ससुराल जाने की बात सुन तुरंत ही रात में किसी प्रकार नदी पार कर ससुराल पहुंचे और पत्नी को उसे सोते से जगाया। उसने खीझकर कहा–

हाड़मास को देह मम्
तापर जितनी प्रीति
तिसु आधी जो राम प्रति
अवसि मिटहि भव भीति ।

–मूल गोस्वामी चरित पृष्ट 9

इस कथन से तुलसीदास को आघात लगा और वे वैराग्य लेकर घर बार त्याग राम को खोजने निकल पड़े। उनकी पत्नी उनके बैरागी होने का समाचार पाते ही सुरलोक चली गयीं। तुलसीदास घूमते घूमते काशी पहुंचे और वहाँ बस कर उन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना की। अंत में सम्वत 1680 श्रावण शुक्ल श्रावण कृष्ण पक्ष शनिवार को उनके शरीर अंत हो गया।

बाबा रघुवर दास रचित तुलसी चरित

अभी कुछ दिनों से गोस्वामी जी के प्रामाणिक जीवन चरित की खोज की जा रही है। ऐसे समय जाली ग्रंथों को प्रामाणिक कहकर उपस्थित करने वालों का किसी नई रचना को लेकर उपस्थित होना आश्चर्य की बात नहीं है। इधर 19 वीं शताब्दी के अंतिम काल में तुलसी चरित्र पर अनेक तथ्यात्मक रचनाएं प्रस्तुत की गई जिनमें व्यक्तित्व की रक्षा के हेतु कुछ नई घटनाओं को घटा बढ़ा दिया गया और कुछ ऐसी बातें भी दे दी जिनमें पूर्व भारतीयों द्वारा उपस्थित कृतियों से कुछ मार्के का अंतर है। ऐसी रचनाओं मैं तुलसी दास जी के एक शिष्य बाबा रघुवर दास का लिखा एक तुलसी चरित है। इसकी चर्चा सर्व प्रथम संवत 1969 विक्रमी के ग्रीष्म काल में प्रारंभ हुई जो उसके प्रकट होने का काल है ।

सर्वप्रथम हिंदी मासिक मर्यादा पत्रिका की ज्येष्ठ 1969 की संख्या में श्री युत् इंद्रदेव नारायण जी ने हिंदी नवरत्न पर अपने विचार प्रकट करते हुए गोस्वामी तुलसीदास के जीवन संबंध में अनेक बातें ऐसी कहीं हैं जो अब तक की निर्धारित बातों में बहुत उलटफेर कर देती है। ऐसी कल्पनाएं तक किसी अन्य ने नहीं की। इन्द्र देव जी लिखते हैं –

गोस्वामी जी का जीवन चरित्र उनके शिष्य महात्मा महानुभाव रघुवर दास जी ने लिखा है। इस ग्रंथ का नाम तुलसी चरित्र है। यह बहुत ही बड़ा ग्रंथ है। इसके मुख्य चार खंड हैं– 1. अवध, 2. कश्मीर, 3. नर्मदा और 4. मथुरा। इसमें भी अनेक उपखंड हैं। इस ग्रंथ की संख्या इस प्रकार लिखी हुई है– एक लाख तेतीस हजारा, नौ सौ बासठ छंद उदारा ।

यह ग्रंथ महाभारत से कम नहीं है। इसमें गोस्वामी जी के जीवन चरित विषयक मुख्य

वृतांत नित्य प्रति के लिये हुए हैं। इसकी कविता अत्यंत सरल, मधुर और मनोरंजक है। यह कहने में अत्युक्ति नहीं होगी कि गोस्वामी जी के प्रिय शिष्य महात्मा रघुवर दास जी विरचित इस आदरणीय ग्रंथ की कविता श्री रामचरित मानस के टक्कर की है और यह तुलसी चरित बड़े महत्त्व का ग्रंथ है। इसके प्राचीन समय की सभी ज्ञातव्य बातों का परिज्ञान होता है।

नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित तुलसी ग्रंथावली में यह पूरा विवरण दिया है। तीसरा खंड पृष्ठ 11 से 17 तक। इसका जीवन विषयक अंश तुलसी के आत्मचरित के रूप में है। उदाहरण स्वरूप–

मोर व्याह ह्वे प्रथमे भयेऊ।
हस्त प्रास भार्गव घर ठयेऊ
भई स्वर्गवासी दोउ नारी।
कुलगुरु तुलसि कहेउ व्रत धारी
तृतीय व्याह कंचनपुर माहीं।
सोइ तिय बस विदेश अवगाही
अहो नाथ तिन्ह कीन्ह खुटाई ।
मात भ्रात परिवार छुड़ाई

– तुलसी ग्रंथावली पृष्ठ 15

इस पर श्री शिवनंद सहाय जी ने, जो उक्त इंद्रदेव नारायण जी के प्रांतीय स्वजन हैं, को जो उत्तर लिखा उसका निम्न उद्धरण ही रचना की अप्रमाणिकता प्रकट करने को पर्याप्त है–

'हमें ज्ञात हुआ है कि केसरिया (चंपारण) निवासी इंद्र देव नारायण की गोस्वामी जी के किसी चेले की 1 लाख दोहे चौपाइयों में लिखी हुई गोसाई जी की जीवनी प्राप्त हुई है। सुनते हैं गुसाई जी ने पहले उसके प्रचार न होने का श्राप दिया था लेकिन लोगों के अनुनय विनय से शाप मोचन का समय संवत् 1967 निर्धारित कर दिया। तब उसकी रक्षा का भार उसी प्रेत को सौंपा गया जिसने गोसाईं जी को श्री हनुमान जी से मिलने का उपाय बताकर श्रीराम सिंह जी के दर्शन का उपाय बताया था। वह पुस्तक भूटान के किसी ब्राह्मण के घर पड़ी रही। एक मुंशी जी उसके बालकों के शिक्षक थे। बालकों से उस पुस्तक का पता पाकर उन्होंने उसकी पूरी नकल कर डाली। इस गुरुतर अपराध से क्रोधित हो वह ब्राह्मण उनके वध के निमित्त उद्यत हुआ तो मुंशीजी वहाँ से चंपत हो गए। वही पुस्तक किसी प्रकार अलवर पहुंची और फिर पूर्व बाबू साहब के हाथ लगी। क्या हम अपने इन स्वजातीय इन मुंशीजी की चतुराई और बहादुरी की प्रशंसा न करेंगे? उन्होंने सारी नकल कर ली तब तक ब्राह्मण को कानों तक खबर न पहुँची और जब भागे तब अपने बोरियां बिस्तर के साथ उस बृहत्काय ग्रंथ को भी लेते हुए। इसके हाथ साथ ही क्या अपने दूसरे भाई को यह अश्रुत पूर्व और अलभ्य पुस्तक हस्तगत करने पर बधाई नहीं देना चाहिए ? पर प्रेत ने उसकी कैसी रक्षा की और वह उस ब्राह्मण के घर कैसे पहुंची यह कुछ हमारे संवाददाता ने नहीं बतलाया। जो हो जिस प्रेत की बदौलत सब कुछ हुआ उसके साथ गोस्वामी जी ने यथोचित प्रत्युपकार नहीं किया। वनखंड़ी तथा केशवदास के समान उसके उद्धार का उपयोग तो भला करते! उलटे उसके माथे 300 वर्ष तक अपनी जीवनी की रक्षा का भार डाल दिया । (गोस्वामी तुलसीदास पृष्ठ 19 व 20)

इसके अनुसार सीतापुर प्रांत के किसी राजा ने जिसकी राजधानी तीखनपुर में थी, तुलसी

दास के प्रपितामह परशुराम मिश्र को राजापुर में सम्मान से बसाया था। श्री मिश्र जी पहले सरयू के उत्तर में वसया नामक ग्राम में रहते थे। काशी में मृत्यु हो गई। इनके पुत्र शंकर मिश्र को वाक सिद्धि प्राप्त हुई थी और राजा रानी के साथ राजकुल के व्यक्ति और सरदार जी इनके शिष्य हो गए थे। इनके एक पुत्र रुद्रनाथ हुए जिनके 1. गणपति 2. महेश 3. तुलाराम 4. मंगल नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए। कुल गुरु तुलसी राम ने इनका नाम तुला राम रखा था। तुलाराम बाद में तुलसीदास कहे जाने लगे थे। तुलसी दास के तीन विवाह हुये। दो ब्याह भार्गव ब्राह्मण शाखा में हुए और तीसरा विवाह हुआ कंचनपुर के लक्ष्मण उपाध्याय की पुत्री बुद्धिमती से। इस तीसरे विवाह में तुलसीदास के पिता थे और उन्होंने कन्या पक्ष से दहेज में 6000 लिए थे। इसी बुद्धिमती ने उनका घरबार छुड़ाया था जिसका दुखड़ा रोते हुए तुलसीदास ने स्वयं ही किसी रघुनाथ नामक पंडित से कहा था–तृतीय व्याह तिय कीन्ह खोटाई, मात भ्रात परिवार छुड़ाई!

यह पूरा ग्रन्थ न तो इंद्र देव जी ही स्वयं विद्वान अन्वेषकों के बार बार आग्रह करने पर उपस्थित कर सके और न फिर इसके संबंध में उक्त प्रस्तुति से अन्य कोई अंश ही उपस्थित कर सके।

भवानी दास विरचित गोसाईं चरित

सरीले के स्वामी नन्दलाल की परंपरा में अयोध्या के बड़ा स्थान के महंत श्री राम प्रसाद जी के आदेश से भगवानदास ने जो महात्मा बोधाराम के शिष्य थे, ने गोसाईं चरित की रचना की है। राम प्रसाद जी का चरित्र उनके उत्तराधिकारी रघुनाथ प्रसाद जी महंत ने श्री महाराज चरित्र के नाम से लिखा है। इससे प्रकट होता है कि राम प्रसाद जी संवत् 1760 में उत्पन्न (पृष्ठ 11) और सम्वत् 1860 में स्वर्गवासी हुए (पृष्ठ 134) इसका रचना काल संवत् 1810 के लगभग है। रचयिता ने इसे भक्ति भाव से लिखा है। स्वयं ही कहा है–

सब गुण रहित अवगुण सहित
तव चरण दृढ विस्वास हो
हरि अंश संज्ञा नाम की
याचे भवानीदास हो

–गोसाईं चरित पृष्ठ 2

इस रचना का नाम गुसाईं चरित लिखते हुए निम्न पंक्तियाँ दी हैं –

यह बल मनहिं दृढ़ाइ, रामचरण सिर नाय कें
कहों कछु इक गाइ, श्री गोसाई अद्भुत चरित।

(गोसाईं चरित पृष्ठ 6)

इसमें बिखरी हुई सामग्री का संकलन किया गया है जो भक्त समाज में प्रचलित थी । यह विस्तृत चरित्र लगभग 30,000 शब्दों में लिखा हुआ विविध छंदों में बंधा भक्ति श्रद्धा पूर्ण महात्म्य ज्ञान से युक्त है। इसमें तुलसीदास के महात्म्य और उनके द्वारा अलौकिक घटनाओं के चमत्कार प्रदर्शन का विस्तार से वर्णन है जिसके काल तथा तिथियों आदि का कोई उल्लेख नहीं है।

रचना– कारण व अपने दीन भाव का उल्लेख करते हुए लिखा है–

तेहि कुल वैश्य सुधा निधि
रामप्रसाद प्रकास किय
हित चरण विषै रस अवधि
बस श्री स्वामी की वृत्ति लिय
मोहि आपुन कर जानि

मानि कुल कानि पक्षधर
नतरु बिषै लपटान
कौन हो पात्र कृपा कर
विविध प्रसंग सुनाइ
गोसाई के सुखदायक
भो निदेश ये चरित
करहु भाषा गुन गायक
आग्या सिर धरि जोरि कर
विनयों कवि कोविद चरन
लखि मूक क्षमा कीन्हीं सदा
जानि दास अपनी सरन।

चरित्र के विषय में स्वयं ही कहा है–

सकल अपूरव कथा विचित्र प्रसंग विविध विधि।
हरि प्रिय जन अभ्यास नवल बरनों मंगल निधि।।

पृष्ठ 8

इसका आधार लेकर ही मूल गोसाई चरित्र की रचना हुई है जिसके प्रमाण मैं दोनों में वर्णित नंददास प्रसंग और रसखान प्रसंग का मिलान करना यथेष्ट है–

काव्यकुब्ज यक विप्र नगर कनउज ढिंग वासी
श्री गोसाई गुरु बंधु रहे श्री कृष्ण उपासी
नन्ददास सुभ नाम स्वच्छ वृत पद जग गावे।
सुनि आगमन गुसाई को वृन्दावन में जाय
मिले पुलक अति प्रेम ते आनंद उर न समाय।

–गोसाईं चरित पृष्ठ12

नन्ददास कनौजिया प्रेम मढ़े
जिन शेष सनातन तीर पढ़े
सिक्षा गुरु बंधु भए तेहि ते
अति प्रेम सों धाय मिले....

–मूल गोसाईं चरित पृष्ठ 29

श्री स्वामी नंदलाल के जन यक प्रिय दयाल दास
ते हुए बिषै उदास कियो देव सरि निकट निवास
नित कथा प्रसंग होइ भाँति भाँति को विलास
श्री गोसाईं वानि को प्रमोद दोष दुख नास
तीनि बरस कर चित्त एकाग्र सावकास
रसखानि व्रत ठानि सुनी लीला आनंद प्रेम रास
उद्धरउ विचित्र काव्य कीन कवित सौ पचास
इष्ट भाव ते बखान करि सप्रेम मति प्रकाश
सब दोहानि कवित्त को देख बड़ो विस्तार
ता कारण तकि इक कह्यो जानव यही प्रकार ।

(रसखान कृत एक कवित्त दोहा,
गोसाई चरित्र पृष्ठ 9)

स्वामी नंद सु ललने की सिष्य पुनी
तिसु नाम दलाल सु दास गुनी
लिखि के सोइ पोथी स्व ठाँव
गयो गुरु के ढिंग जाए सुनाय दयो
जमुना तट पै त्रय वत्सर लों
रसखानहिं जाय सुनावत भो

–मूल गोसाईं चरित पृष्ठ 20

इस प्रकार उक्त गोसाईं चरित के वृक्ष से मूल गोसाई चरित्र बीज बनकर उत्पन्न हुआ है। इसमें 10X12 आकार के 64 पृष्ठ है। इसमें तुलसी दास और उनकी कविता भाग एक में पंडित राम नरेश त्रिपाठी ने इसे भूल से बैजनाथ दास रचित लिख दिया है (पृष्ठ 61)। इसमें प्रथम मंगलाचरण स्वरूप श्री गणेश व श्री राम आदि की वंदना है और उसके बाद नाभा जी का प्रसंग तथा नंद दास गुरु भाई प्रसंग आदि 42 प्रसंगों की सविस्तार कथा है जो तुलसी दास जीकी जीवनी में उल्लेखनीय हैं।

श्री बैजनाथ दास महाशय और श्री महादेव प्रसाद आदि के लिखे तुलसी दास के चरित्र

विषयक ग्रंथों की रचना उक्त गोसाई चरित्र के आधार पर की गई है। इसमें आलोक चमत्कार और घटनाओं का ही विशेषः उल्लेख है जिनसे लेखकों की तुलसी विषयक भक्ति तो प्रकट होती है पर जीवनी के लिए ऐतिहासिक आधार कुछ नहीं मिलता ।

वार्ता-नन्ददास

वल्लभ कुल संप्रदाय में तुलसीदास अष्टछाप के महाकवि नन्ददास तुलसीदास के चचेरे भाई के रूप में वर्णित किए गए हैं । इसका सर्वप्रथम उल्लेख गोकुलनाथ जी (संवत 1608–1668 विक्रमी) के ग्रंथ दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता में हुआ है । इनके पूर्व नाभादास जी ने नंददास जी के विषय में कहा है –

लीला पद रस रीति ग्रंथ रचना में नागर
सरस उक्ति कुल मुक्ति भक्ति रस गान उजागर
प्रचुर अवध लों सुयश रामपुर ग्राम निवासी ।
सबल सुकुल संवलित भक्ति पद रेनु उपासी ।
चंद्रहास अग्रज सुकृत परम प्रेम पै में पगे ।
श्री नन्ददास आनंद निधि
रसिक सु प्रभु हित रंग मगे।

(भक्त माल)

नाभादास नन्ददास जी को श्री कृष्ण प्रभु की माधुर्य भक्ति में लीन रसिक श्रेष्ठ गीतकार कवि और समुद्र पर्यंत प्रचुर कीर्ति प्राप्त लिखते है, परन्तु वे उन्हे चंद्रदास अग्रज कहते हैं, न कि तुलसीदास के अनुज। प्रियादास ने भी अपनी टीका में उन्हें तुलसीदास का अनुज नहीं लिखा । नाभादास जी नन्ददास जी को शुक्ल कहते है।

किन्तु 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में नन्ददास जी स्पष्टतः रामायण के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास के भाई कहे गये हैं। लिखा है–

'नंददास जी तुलसी दास के छोटे भाई थे। नंददास जी ऐसे विचारे कै मैं श्री रणछोड़ जी के दर्शन कूँ जाऊँ तो अच्छी है। जब इनने तुलसी दास जी तें पूंछी तब तुलसीदास जी श्री रामचन्द्र जी के अनन्य भक्त हते। जासूं दिन ने दुवारका जायवे की नहीं कही।

'सो वे नंददास जी ब्रज छोड़ के कहूँ जाते नहीं हुते। सो नंददास जी के बड़े भाई तुलसीदास जी ने विचार किया कि नन्ददास जी की टेक हम सूं अधिक है। हम तो अयोध्या छोड़ के कासी में रहे है और नन्ददास तो कहूँ ब्रज छोड़ के कहीं जाय नहीं है। इनकी टेक हमारी टेक से बड़ी है।

'सो नंददास के बड़े भाई तुलसीदास हुते सो काशी जी तैं नन्ददास जू कूँ मिलवे के लिए ब्रज में आए। सो मथुरा में आएकें श्री जमना जी के दर्शन करे। पाछैं नंददास जी की खबर काड कें श्री गिरिराज जी गये। जहाँ तुलसीदास जी नन्द दास जू कूँ मिले। जब तुलसीदास जी ने नंददास जू कूँ कही के तुम हमारे संग चलो ग्राम रुचे तो अयोध्या में रहो, पुरी रुचे तो काशी में रहो। पर्वत रुचे तो चित्रकूट में रहो, वन रुचे ती दंडकारण्य मे रहो।

'ऐसे बड़े बड़े धाम भी रामचन्द्र जी ने पवित्र किए हैं। तब नन्ददास जी ने ये पद गायो –

जो गिरि रुचे तो वसौं गोवर्धन
ग्राम रुचै तो बसों नंद ग्राम
नगर रुचे तो बसों श्री मधुपुरी ।
सोभा सागर अति अभिराम
सरिता रुचे तो बसों श्री यमुना तट
सकल मनोरथ पूरन काम

नंददास कानन रुचे तो ।
बसों भूमि वृन्दावन धाम ।
'ये पद सुन के तुलसीदास चुप रहे ।

'जब नन्ददास जी श्रीनाथ जी के दर्शन करने कूँ गये तब तुलसीदास हू उनके पीछे पीछे हो गये। जब श्री गोवर्धन नाथ जी के दर्शन करे तब तुलसीदास जी ने माथो नवायो नहीं। तब नन्द दास जी जान गये। जो ये श्री रामचन्द्र जी बिना और दूसरे कूं नमे नहीं। तब नन्ददास जी ने मन में विचार कीन्हों। यहां पर श्री गोकुल में इनकूं श्री रामचन्द्र जी के दर्शन कराऊँ तब ये श्री कृष्ण को प्रभाव जाने। तब नंददास जी ने भी गोवर्धन नाथ जी सौं बिनती करी सो दोहा –

कहा कहूँ छवि आप की भले विराजे नाथ
तुलसी मस्तक तब नमे धनुष बान लेओ हाथ ।

'ये बातें सुन के श्री नाथ जी की कान ते विचार भयो जो श्री गुसाई जी के सेवक कहे सो हमको मान्य चाहिये। जब श्री गोवर्धन जी ने श्री रामबन्द्र जी को रूप धर के तुलसीदास जू कूँ दर्शन दये, तब तुलसीदास जी ने श्री गोवर्धन नाथ जू कूँ साष्टांग दंडवत् करी ।'

('अष्ट छाप पृष्ठ ६४ से १०२)

इधर कुछ समय से दो सौ बावन वैश्वन की वार्ता के विषय में यह सन्देह उठाया जा रहा है कि कदाचित् वह गोसाईं गोकुलनाथ की श्री लिखी हुई नहीं है। इसके विषय में सर्वप्रथम पंडित रामचंद्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' पृष्ठ ४८० में लिखा है कि यह गोकुल नाथ जी के किसी शिष्य की लिखी जान पड़ती है, क्योंकि उसमें गोकुलनाथ जी का कई जगह बड़े भक्ति भाव से उल्लेख है। दो सौ बावन वैश्वनवों की वार्ता औरंगजेब के समय के लगभग लिखी गई प्रतीत होती है। इसके बाद डा धीरेन्द्र वर्मा ने हिन्दुस्तानी के अप्रैल, १६३२ के अंक में इसके विषय में लिखा कि इसमें गोकुलनाथ जी के स्वयं के प्रशंसात्मक उल्लेख के साथ ही इसमें एक स्थान पर १६६वीं वार्ता मे लाड़ वाई धार वाई के धन को औरंगजेब के द्वारा लूटे जाने की बात लिखी होने से भी यह गोकुलनाथ की रचना नहीं है। (पृष्ठ १८५) इसके आधार पर श्री माताप्रसाद गुप्त ने अपने 'तुलसीदास' नामक (पृष्ठ ६२,६३) में इस रचना को गोकुलनाथ जी द्वारा रची मानने पर आपत्ति प्रक्ट की है। इन्हीं ने यह भी लिखा है कि प्रियादास रचित भक्ति–रस–बोधिनी में अनेक कथाएं है जी एक दूसरे से मिलती है पर साथ ही उन्हें जहां प्रियादास ने जिन भक्तों की जीवनी पर घटनाएं मानी है वहीं उन भक्तों से भिन्न भक्तों की घटनाएँ भी वार्ता में दी गई दिखलाई लाई है (पृष्ठ ६२ से ६७) । यद्यपि गोकुलनाथ जी के ग्रन्थ में दो सौ बावन वैष्णवों में उनकी गणना अनिवार्य होने से उनके स्वयं के उल्लेख पर से उसके गोकुलनाथ रचित न होने की बात प्रमाणित नहीं पर उनके पीछे के चरित्र का उल्लेख होना अवश्य सन्देह उत्पन्न करता है। इस पर भी यह कहा जा सकता है कि गोकुलनाथ कृत ग्रंथ हस्तलिखित रूप मे रहा होगा और उसमें पीछे अनेक घटनाओं को जोड दिया गया। इस परिवर्तन या प्रतिलिपि से मूल में अन्तर आना स्वाभाविक ही है, परन्तु इतने पर से सम्पूर्ण ग्रन्थ गोकुलनाथ रचित न मानना सरासर अन्याय है। कुछ प्रक्षिप्त अंश होने से समूर्ण रचना अप्रामाणिक नहीं ठहराई जा सकती ।

इसमें गोसाईं गोकुलनाथ जी ने इष्ट की दृढ़ता और भक्ति के प्रभाव में नन्ददास जी को

तुलसीदास से श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयत्न किया है और कृष्ण मूर्ति का राम मूर्ति में परिवर्तित होना नन्ददास जी की भक्ति के बल से लिखा है, जब कि यथार्थ में प्रियादास जी आदि से लेकर दक्षिण के मोरो पन्त आदि ने भी उसे तुलसीदास जी के भजन–बल की महिमा के वर्णन में लिखा है। वल्लभ–कुल के सेवकों का माहात्म्यगान वार्ता में पक्षपात से किया गया है, यह तो वार्ता के पढ़ने से ही स्पष्ट हो जाता है। इसको छोड़कर शेष बात केवल यह है कि नन्ददास जी तुलसीदास जी के भ्राता थे।

इसमें रामपुर ग्राम निवासी नन्ददास शुक्ल को सनाढ्य कुलोत्पन्न भी कहा है जो श्री नाथ द्वारै और श्री गटुलाल जी के पास की हस्त लिखित प्रतियों में है। इसी के आधार पर स्व० श्री राधाकृष्ण दास ने नंददास कृत रास पंचाध्यायी की भूमिका में दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता के आधार पर नंद दास जी का जो वृत्त दिया है, उसमे लिखा है– 'नन्ददास सनौडिया ब्राह्मण तुलसीदास जी के छोटे भाई पूर्व देश के रहने वाले थे।' इससे निश्चित है कि राधाकृष्ण दास जी ने वार्ता की जिस प्रति से नंददास का वृत्त लिखा है उसने नंददास का सनाड्य होना लिखा था।

इसके विषय में श्रीयुत मिश्र वन्धुओं ने अपने 'विनोद'में लिखा है कि नंददास किसी तुलसीदास के भाई थे (मिश्र क्न्धु विनोद पृष्ठ २४७)। पंडित रामचन्द्र शुक्ल लिखते है– वार्ता में नंद दास जी तुलसी दास जी के भाई कहे गये है। गोकुलनाथ जी का अभिप्राय प्रसिद्ध गोस्वामी तुलसीदास जी से ही है, यह पूरी वार्ता पढ़ने से ही स्पष्ट हो जाता है।

(हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ २११)

इसमें मिश्र बंधुओं ने तो बिना विचार के मत प्रकट कर डाला है। यदि नंददास जी किसी अन्य तुलसीदास जी के भाई थे जो वनारस में रहते थे और रामायण भाषा के रचयिता थे तो उनकी खोज करके उनका कुछ परिचय देना आवश्यक था । बिना इसके किसी अन्य तुलसीदास के भाई कहना सर्वथा अग्राह्य ही है। पंडित रामचन्द्र वार्ता के उस मत को देकर लिखते है, पर गोस्वामी जी का नन्ददास से कोई सम्बंध न था, यह बात पूर्णतया सिद्ध हो चुकी है (हि. सा० का इतिहास पृष्ठ २११) शुक्ल जी हिन्दी साहित्य संसार के विवेचक माने जाते है। उनके उक्त मत को पढ़ कर आश्चर्य होता है। तुलसीदास से नन्ददास का कोई सम्वन्ध न था, इस पर कुछ भी विचार न कर के कोई प्रमाण न उपस्थित करके उसे पूर्णतया सिद्ध लिखने वाले विवेचक से तो विवेचना वेचारी पनाह मांगती है। इन दोनों मतों के प्रमाण हीन और विवेचना रहित होने के कारण इन्हें अग्राह्य मानना अनिवार्य होता है। स्व. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने गो. तुलसीदास जी की अष्टछाप के महा कवि श्री नन्ददास जी का भ्राता स्पष्ट ही कहा है–

तुलसीदास के अनुज सदा विठ्ठल पद चारी ।
अन्तरंग हरि सखा नित्य जेहिं प्रिय गिरधारी ।।
भाषा में भागवत रची अति सरस सुहाई।
गुरु आगे द्विज कथन सुनत जल माहिं डुबाई ।।
पंचध्यायी हठ करि रची तब
गुरु वर द्विज भय हरत ।
श्री नंद दास रस रास-रत
प्रान तज्यो सुधि सो करत ।।

(उत्तरार्ध भक्त माल पृष्ठ १०)

तुलसीदास जी

नंद दास अग्रज द्विज कुल मति गुन गन मंडित।
कवि हरि जस गायक प्रेमी परमारथ पंडित
रामायन रचि राम भक्ति जग थिर करि राखी।
थोरे में बहु कह्यो जगत सब या को साखी।।
जग लीन-दीन हू जा कृपा
बल न राम चरतहिं तजे।
श्री तुलसीदास प्रताप ते
नीच ऊँच सब हरि भजे ।।

(उत्तरार्द्ध भक्तमाल पृष्ठ ३०)

धर्माचार्य श्री गोकुलनाथ जी लिखित वार्ता में बल्लभ–कुल–सम्प्रदाय के सेवकों के अतिशयोक्तिपूर्ण माहात्म्यवर्धन तथा पुष्टि मार्गियों के पक्षपात की अधिकता में घटनाओं के व्यतिक्रम आदि को पाकर उसमें की घटनाओं की सत्यता पर भले ही सन्देह करें पर किसी समकालीन व्यति के भ्राता तक को वे झूठ मूठ लिख देंगे, इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। उसके अतिरिक्त इतिहास के अन्वेषक भातेन्दु हरिश्चंद्र ने उत्तरार्ध भक्तमाल में छान बीन कर तुलसीदास और नन्ददास के भाई होने का स्पष्ट उल्लेख किया है। इस संबंध में तुलसी साहित्य के प्रसिद्ध अन्वेषक डा. माता प्रसाद गुप्त एम.ए. लिखते हैं –

'नाभादास तुलसीदास तथा नन्ददास दोनों के समकालीन थे । यदि तुलसीदास और नन्ददास में भ्रातृ संबंध होता तो नन्ददास का परिचय देते हुए वह यही क्यों करते कि उन तुलसीदास से उनका संबंध बताते जिनका उन्होने भक्तमाल ही में अन्यत्र परिचय दिया था, बजाय इसके कि उन चंद्रहास के साथ उनका सम्बंध स्थापित करते जिनके सम्बंध में वह अपने भक्तमाल में एक शब्द भी नहीं कहते। सोरों की सामग्री के अनुसार नन्ददास के सगे भाई चन्द्रहास ही थे, तुलसीदास नहीं। इसलिए यह कहा जा सकता है कि नाभादास जी ने न केवल चन्द्रहास का भ्रातृ संबंध ही नन्ददास का परिचय देते हुए दिया हो फिर भी किसी और प्रकार से दोनों महानुभाओं की सन्निकटता नाभादास जी व्यक्त कर ही सकते थे। संवत १७६९ में उक्त छप्पयों पर टीका करते हुए प्रियादास जी भी इस सम्वन्ध का उल्लेख नहीं करते । (तुलसीदास पृष्ठ १३४)

इसमें गुप्त जी का सारा जोर इस बात पर है कि नाभादास जी को नंददास का परिचय देते समय उन्हे तुलसीदास का भाई अवश्य कहना था और यदि उन्होंने सगे भाई के नाते उन्हे चन्द्रहास अग्रज कहा भी था तो भी किसी और प्रकार से दोनों महानुभावों की सन्निकटता व्यक्त करना आवश्यक था। प्रथम तो नाभादास जी अत्यन्त संक्षेप में केवल एक छप्पय में भक्त के विषय में सम्पूर्ण चरित्र मत रूप में लिखने बैठे थे। उसके कुल आदि का पूर्ण वृत्त वर्णन करना उन्हें अभीष्ट न था। वे केवल उसकी महिमा और भक्ति के बारे में संक्षिप्त वर्णन कर सके हैं । दो चार के सम्बन्ध में ही उनके माता पिता भ्रातादि का उल्लेख करके रह गये है। दूसरे वे गुप्त की इस रचना आवश्यकता का पूरा ध्यान रखकर लिखने को वाध्य न थे। जब यह निश्चित है कि सोरों की सामग्री उन्हैं काका का पुत्र होने से बड़ा भाई मानती है तब उनके लिए एक आधार भी मिल जाता हे और भ्राता न मानने में भी जो एक शंका होती है, उसका परिहार हो जाता है। इस प्रकार नाभादास जी के दोनों छप्पयों में दोनों के चरित्र वर्णन पर से भ्राता न मान सकने का कोई प्रमाण नहीं प्राप्त होता और हम दोनों के होते हुए भी उन्हें चचेरे भाई मानने में कोई आपत्ति नहीं

देखते। प्रियादास जी के भक्त माल के भक्ति रस बोधिनी नामक टीका में अनेक चरित्र एक की छप्पय में रहने दिए है। उन्हीं ने नंददास पर नाभादास के छप्पय पर से नन्ददास के चरित्र का कोई विस्तार नहीं किया। यदि किया होता तो वे नंददास को तुलसीदास के चचेरे भाई अवश्य ही लिख देते ।

प्रिया दास की टीका की अपूर्णता देख कर ही प्रियादास रचित भक्ति रस बोधिनी पर सेवादास की टीका रची गई है जिसका रचना काल संवत १८६४ विक्रमी है। इसमें तुलसीदास की पत्नी रत्नावली और भ्राता नन्ददास पर प्रकाश डाला गया है। (पृष्ठ १६३,१६४)

इसके अतिरिक्त राम–चरित–मानस की दो प्राचीन प्रतियों में जो सोरों में पंडित मुरारीलाल शुक्ल से प्राप्त हुईं जो कि नन्ददास जी की वंश परंपरा में हैं। इस बात का प्रमाण प्राप्त होता है कि नंददास और तुलसीदास भाई–भाई ही थे। प्रथम प्रति रामचरित मानस के बालकाण्ड की है जो संवत १६४३ में कदाचित गोस्वामी तुलसीदास जी की आज्ञा से लिखी गई है। इसकी पुष्पिका इस प्रकार है –

'इति श्री रामचरित मानसे सकल कलि कलुष विध्वंशने विमल वैराग्य सम्पादिनी नाम १ सोपान समाप्तः संवत १६४३ शाके १५०८ सोरों – वासी नन्द दास पुत्र कृष्णदास हेत लिखी रघुनाथ दास ने काशी पुरी में' ।

दूसरी प्रति राम चरित मानस के अरण्य काण्ड की है। इसे लक्ष्मणदास काशी वासी ने संवत १६४३ आषाढ़ सुदी ४ शुक्रवार के दिन गोस्वामी तुलसीदास जी की आज्ञा से उनके भ्राता–सुत कृष्णदास सोरों निवासी के हेतु लिखी थी । इसकी पुष्पिका इस प्रकार है –

'इति श्री रामायने सकल कलि कलुष विध्वंसने विमल वैराग्य सम्पादिनी षट सुजन सम्वादे राम–वन–चरित्र वर्णनी नाम तृतीयो सोपान अरण्य काण्ड सामाप्त। श्री तुलसीदास गुरु की आज्ञा सों उनके भ्राता सुत कृष्णदास सोरों क्षेत्र निवासी हेत लिखित लछिमन्दास कासी जी मध्ये संवत १६४३ आषाढ़ शुक्ल ४ शुक्रे इति ।'

इन दोनों पुस्तकों की परीक्षा अनेक बार हो चुकी है और इतना तो प्रायः सभी ने स्वीकार कर लिया है कि ये पुस्तकें वि० सं सत्रहवीं शताब्दी से है। तात्पर्य यह है कि नंददास और तुलसीदास के भाई होने के इतने प्रमाण मिलते हैं कि उन पर विश्वास करना ही पड़ता है।

निष्कर्ष यह निकलता है कि रामपुर ग्राम निवासी नन्ददास तुलसीदास के भाई थे, जिनके एक पुत्र कृष्णदास के हेतु उक्त पुस्तकें स्वयं तुलसी दास जी ने लिखवा दी थी ।

गोसाई चरित तथा मूल गोसाई चरित्र आदि में इस भ्रातृ संबंध का निर्वाह करने के हेतु उन्हे गुरु भाई कहा है, पर यह अप्रमाणिक है, विचारधारा और उपासना पद्धति आदि भेद से यह स्पष्ट है ।

तुलसी के जीवन चरित के शोध निष्कर्ष

जन्म संवत्

तुलसीदास के जन्मकाल के विषय में यद्यपि अद्यावधि निर्भ्रांत रूप से कुछ भी निर्णय नहीं हो पाया है पर यह सर्वसम्मत और निर्विवाद है कि उनका जन्म विक्रम की 16 मी शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ था।

अधिकांश विद्वानों और अन्वेषकों के मत से

इनका जन्म सम्वत 1589 विक्रमाब्द मैं हुआ था। मिर्जापुर के सुप्रसिद्ध रामायणी पंडित राम गुलाम द्विवेदी ने संपादित रामचरित मानस की भूमिका में सम्वत 1589 विक्रमी ही तुलसीदास जी का जन्म सम्वत माना है। यही मत प्रायः सभी प्राचीन टीकाकारों ने अंगीकृत किया है। इसी का आधार लेकर प्रसिद्ध आंग्ल अन्वेषक स्वर्गीय सर जार्ज ग्रियर्सन ने अपने तुलसी विषयक निबंध में गोस्वामी जी का जन्मकाल संवत् 1589 विक्रमी मानते हुए लिखा है कि सबसे विश्वस्त विवरणों में यह बात प्रकट होती है कि कवि तुलसीदास का जन्म संवत् 1589 विक्रमी में हुआ था।

इनके पीछे तो फिर प्रायः संपूर्ण इतिहासकारों और तुलसीदास का जीवन चरित्र लिखने वालों ने इसी मत को ठीक मान कर ग्रहण किया जिसमे उल्लेखनीय पंडित रामेश्वर भट्ट, पीयूषधारा टीका पृष्ठ 3, मिश्रबंधु हिंदी नव रत्न द्वितीय पृष्ठ 2, श्री रामदास गौड़ एम ए, तुलसी चरित चंद्रिका पृष्ठ 7, पंडित रामचन्द्र शुक्ल हिंदी साहित्य का इतिहास पृष्ठ 153, पंडित सूर्यकांत त्रिपाठी एम ए, हिंदी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास पृष्ठ 224, श्री रामकुमार वर्मा एम ए. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृष्ठ 378, पंडित गौरी शंकर द्विवेदी सुकवि सरोज भाग दो पृष्ठ एक और श्री माता प्रसाद गुप्ता एम ए तुलसीदास पृष्ठ 111 आदि है। नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा सुसंपादित और प्रकाशित तुलसी ग्रंथावली 3 पृष्ठ 18 में भी यही 1589 विक्रम संवत् तुलसीदास जी का जन्म सम्वत माना गया है जो ईसवी वर्ष सन 1893 होता है ।

डॉ. ग्रियर्सन साहब के आधार पर इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इंडिया ओर एन्साइकलोपीडिया ब्रिटानिका खंड 22 पृष्ठ 541 तथा डॉ एफ ई की ये हिस्ट्री ऑफ हिंदी लिटरेचर पृष्ठ 51 आदि में भी उक्त मत ग्रहण किया गया है।

इसका सर्वप्रथम उल्लेख हाथरस वाले संत तुलसी साहब सम्वत 1820 बिक्रमी में अपने ग्रंथ घट रामायण में किया है। घट रामायण में अपने आत्मचरित का वर्णन करते हुए वे अपने आप को पूर्वांचल में गोस्वामी तुलसीदास के रूप में राजापुर में संबत 1589 विक्रमी भद्रपद शुक्ला 11 मंगलवार को उत्पन्न हुआ लिखते हैं ।

इधर सम्वत 1982 विक्रमी में पंडित राम किशोर शुक्ल ने रामचरित मानस का एक संस्करण लखनऊ के नवल किशोर प्रेस से प्रकाशित कराया जिसके साथ बाबा वेणी माधव दास कृत मूल गोसाईं चरित प्रकाशित कराया गया जो अब गोरखपुर के गीताप्रेस से पुस्तक रूप में प्रकाशित हो गया है। इसमें गोस्वामी तुलसीदास जी का जीवन चरित्र पद्यात्मक है। इसमें उक्त शुल्क जी ने आरंभ ही में इस बात का निर्देश कर दिया है कि यह उस वृहद जीवन चरित्र का अंतिम अध्याय है जिसका उल्लेख ठाकुर शिव सिंह सेंगर ने अपने शिवसिंह सरोज में किया है। शुक्लजी का यह कथन है कि उक्त ग्रंथ की प्रति उन्हें कनक भवन से अयोध्या के महंत श्री बालक राम विनायक जी की कृपा से प्राप्त हुई है। इसकी रचना तिथि संवत् 1687 कार्तिक शुक्ल नवमी दी है और अंत में प्रतिलिपि के विषय में लिखा है–

त्रिपाठी रामरक्षामणि रामदासेन,
तदात्मजातेन लिखितम् मिति।
विजया दशमी संवत 1848 भृगुवासरे

मूल गोसाईं चरित में तुलसीदास के जन्मकाल

के विषय में लिखा है–

जब कर्क मैं हिमांसु चरे
कुज सप्तम अष्टम भानु तने,
अभिहित सुठि सुन्दर साझो समै
पंद्रहसौ चौवन विषै, कालिंदी के तीर
सावन शुक्ला सप्तमी,
तुलसी धर्यो शरीर

– मूल गोसाईं चरित पृष्ठ 2

इसके अनुसार विक्रमीय सम्वत 1554 की श्रावण शुक्ला सप्तमी की संध्या समय तुलसी दास जी ने जन्म लिया। उस समय कर्क के बृहस्पति और चंद्रमा थे तथा सप्तम मंगल और अष्टम शनि थे। संवत 1554 विक्रमी में दो श्रावण पड़े थे । अधिक मास का स्पष्ट उल्लेख न होने से शुद्ध श्रावण मास लेना ठीक है।

काशीवासी पंडित शिव लाल पाठक ने जो अपने को गोस्वामी तुलसीदास की शिष्य परंपरा में बतलाते थे, रामचरित मानस पर मानस मयंक नामक तिलक की रचना की है। गोस्वामी तुलसीदास जी के जन्मकाल के विषय में उन्होंने लिखा है–

मन ऊपर शर जानिए शर पर दीन्हे एक
तुलसी प्रगटे रामवत रामजन्म की टेक।

– मानस मयंक 91

इसके अनुसार भी जन्म संपत 1554 विक्रमी ठहरता है। स्व. बाबू श्याम सुन्दर दास और डॉ. पीताम्बर दत्ता बड़वाल ने मूल गोसाईं चरित को प्रमाण मानकर अपने गोस्वामी तुलसीदास नामक ग्रंथ में सम्वत 1554 विक्रमी को ही तुलसीदास का जन्मकाल माना है। गोरखपुर से प्रकाशित कल्याण मासिक के मानसांक में भी यही मत अंगीकार किया गया है। पर अभी तक मूल गोसाईं चरित की प्रमाणिकता संदिग्ध है फिर भी इसका प्रचार अब हो रहा है।

ठाकुर शिव सिंह सेंगर ने अपने सरोज में वैणीमाधव के गुस्साई चरित्र का उल्लेख करते हुए भी तुलसीदास जी के जन्मकाल के विषय में लिखा है – महाराज तुलसीदास सरयूपारीय ब्राह्मण राजापुर जिले प्रयाग के रहने वाले थे और संवत 1583 के लगभग उत्पन्न हुए थे।

यह मत किसी ने भी मान्य नहीं समझा। हाँ सरीला की श्रीमती रानी कमल कुमारी देवी जू सम्वत 1952 ने अपने पद्यात्मक गोस्वामी तुलसी दास के जीवन चरित्र में अवश्य लिखा है–

पंद्रह सै तेरासी जन्म भयो सुभ जान
सोरा सै अस्सी बरस, हो गए अंतर्ध्यान

पर अन्य किसी ने भी इस मत का समर्थन नहीं किया। श्री युत् एच. एच. विल्सन साहब ने एशियाटिक रिसर्चिज़ जिल्द 16 में ए स्केच ऑफ दी रीलिजस सेक्टस ऑफ दी हिंदुज नामक निबंध में गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा रामचरित मानस के निर्माण की संवत 1631 विक्रमी की दी हुई तिथि के अनुसार तुलसीदास का जन्म संवत् 1600 लिखा है। (A sketch of the Religious sects of the Hindoos Sects page 41) इन्हीं के आधार पर फ्रेंच विद्वान तासी ने भी अपने इंदुए हिन्दुस्तानी जिल्द तीन पृष्ठ 276 में तुलसीदास का जन्म काल सम्वत 1600 विक्रमी लिख दिया है। इस अनुमान का कोई आधार न होने से यह जन्मकाल किसी को भी मान्य नहीं हुआ।

अब तक बहुमत संवत 1589 विक्रमी के पक्ष में ही है जिसे अशुद्ध ठहराने का कोई सबल कारण प्राप्त नहीं होता। इसी से मैं इस ग्रंथ में सम्वत

1589 को ही तुलसीदास का जन्मकाल स्वीकार करता हूँ।

तुलसीदास जी का जन्म स्थान

विश्व वन्द्य महाकवि महात्मा तुलसीदास जी के जन्म स्थान के विषय में वैसे तो हस्तिनापुर तारी और हाजीपुर आदि के विषय में कहा गया, परंतु न तो इन स्थानों के विषय में कोई प्रामाणिक सामग्री ही मिल सकी ओर न दो चार महाशयों को छोड़ अन्य विद्वानों तथा अन्य अन्वेशकों ने इनकी ओर ध्यान ही दिया। अब तक राजापुर को ही बहुसंख्यक विद्वानों ने तुलसीदास जी का जन्म स्थान माना है ।

इसका सब से पहला उल्लेख हमें तुलसी साहब (हाथरस वालों) की घट रामायण में मिलता है जिन्होंने राजापुर में निवास के कारण प्रसिद्ध होने से तुलसी दास जी के जन्मस्थान को राजापुर लिखा है। इसके अतिरिक्त मूल गोसाईं चरित और तुलसी चरित मैं राजापुर को तुलसीदास जी का जन्मस्थान लिखा है परंतु इनकी प्राचीनता और प्रामाणिकता संदिग्ध होने से इनके लिखे मत पर विश्वास नहीं किया जा सकता। इनमें जनश्रुतियों के आधार पर ही राजापुर के तुलसीदास के जन्मस्थान होने का उल्लेख किया गया है । इन्हीं के आधार पर डॉ सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने राजापुर को तुलसीदास जी का जन्म भूमि स्वीकार किया है । उसके बाद तो फिर हिंदी साहित्य के सभी इतिहासकारों ने जिनमे ठाकुर शिव सिंह सेंगर, श्री युत् मिश्रबंधु, पंडित रामचन्द्र शुक्ल, बाबू श्यामसुंदर दास और डॉ राम कुमार वर्मा आदि उल्लेखनीय हैं जिन्होंने अपने लिखे ग्रंथों में ग्रियर्सन साहब के उक्त मत को ही स्वीकार कर राजापुर को तुलसीदास जी का जन्मस्थान लिखा। रामायण के प्रसिद्ध टीकाकार पंडित राम गुलाम त्रिवेदी से लेकर पं रामेश्वर भट्ट आदि तक सभी टीकाकारों ने राजापुर ही को तुलसीदासजी का जन्म स्थान लिखा है।

परन्तु हम उक्त लेखकों तथा टीकाकारों द्वारा किए गए जन्म स्थान संबंधी पुख्ता उल्लेखों की उपस्थिति में भी उन्हें प्रमाण नहीं मान सकते। इन लेखकों और टीकाकारों में कोई गोसाईं तुलसीदास जी का समकालीन नहीं जिसका कथन प्रमाण में लिया जा सके। गोसाईं जी के समकालीन श्री नाभा दास जी तथा श्री गोकुल नाथ जी आदि ने उनके जन्म स्थान का कोई उल्लेख नहीं किया। इसके अतिरिक्त उक्त लेखकों और टीकाकारों ने न तो अपने कथन का आधार ही उपस्थित किया है और ना ऐसे प्रमाण ही प्रस्तुत किए हैं जिनसे निर्णय हो सके कि तुलसीदास जी का जन्म् राजापुर में ही हुआ था। राजापुर में खोज करने से केवल इस बात का पता चलता है कि तुलसीदास जी वैराग्य लेकर वहाँ कुछ काल तक रहे थे और उस स्थान में यहाँ जहां भी रहे थे उनकी एक कुटी थी जो अब तक विद्यमान है। वही संकट मोचन महावीर का एक मंदिर भी है जो अब गोसाई जी के एक शिष्य गणपति उपाध्याय के वंशधर पंडित मुन्नी लाल उपाध्याय के अधिकार में है। इसके व्यय के हेतु कुछ जमीन मुआफी में भी लगी है। यहाँ तुलसी दासजी की एक मूर्ति भी है जो यमुनाजी में मिली कही जाती है। भारत सरकार की ओर से उक्त कुटी के स्थान पर संगमरमर की एक तख्ती भी लगा दी गई है परंतु इससे केवल बैराग्यवान

तुलसीदास जी का त्यागी बनकर राजापुर में कुछ वर्ष निवास करना मात्र सूचित होता है। इस निवास से लोग उन्हें राजापुर वाले तुलसी दास कहने लगे हो सकते हैं और इसी के आधार पर उक्त लेखकों और टीका कारों ने उनका जन्म स्थान राजापुर लिख दिया है।

अपने कुल और जन्मस्थान के विषय में संकेत करते हुए स्वयं गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं

दियो सुकुल जन्म शरीर सुन्दर
हेतु जो फल चारि को
जो पाइ पंडित परमपद
पावत पुरारि मुरारि को
यह भरत खंड समीप सुरसरि
थल भलो संगति भली

— विनय पत्रिका 135

इससे विदित होता है कि तुलसीदासजी का जन्म भारतवर्ष में सुरसरि अर्थात गंगा जी के भले थल, पवित्र स्थान में, जहाँ अच्छी संगति भी थी, में हुआ था। राजापुर बांदा जिले की मऊ तहसील का बड़ा गांव है जो जमुना के किनारे है। इस प्रकार स्वयं तुलसीदास जी के कथनानुसार राजापुर उनका जन्मस्थान नहीं हो सकता क्योंकि वह गंगा के समीप न होकर यमुना के समीप है। इसके सिवाय राजापुर की परंपरागत जनश्रुति यही है कि वे वैराग्य लेकर राजापुर में भजन करते थे और वहाँ सौरों जिला एटा से आए थे। श्रीयुत डी एल ड्रेक ब्लॉक मेन आई सी एस कृत बाँदा गजेटियर में राजापुर और तुलसी दास जी के संबंध में निम्न लिखित उल्लेख है—

कहा जाता है कि अकबर के शासनकाल में संवत (1613 से 1662 तक) में एक महात्मा साधु जिसका नाम तुलसी दास था और जो सोरों, तहसील कासगंज, जिला एटा का निवासी था, यमुना तट के उस जंगल में आया जहाँ अब राजापुर बसा हुआ है और परमात्मा के भजन और ध्यान में मग्न रहने लगा। उसके पवित्र आचरण से प्रभावित हो बहुत से लोग उसके चेले बन गए और उसी के पास रहने लगे और जब उनकी संख्या में वृद्धि हो गई तब वे धर्माचरण के साथ साथ व्यापार में भी लग गए। उक्त साधु यथार्थ में रामायण के लिखने वाले तुलसीदास थे और उनका गृह कस्बे में अब भी दिखलाया जाता है। वह एक कच्चा घर था परन्तु अब कुछ समय पूर्व फिर से बना दिया गया है। इसमें एक मूर्ति और रामायण की हस्तलिखित एक किंचित खंडित प्रति भी है। मूर्ति के लिए थोड़ी सी माफी भी लगी है परंतु इस समय के मुआफीदार अनपढ़ और झगड़ालू है और समादरणीय कवि द्वारा उपदिष्ट धार्मिक पवित्रता और उच्च आदर्शों की भावनाओं के प्रचार हेतु कुछ नहीं करते। इस स्मारक में एक प्रस्तर मूर्ति भी है जो कवि की प्रतिमूर्ति कही जाती है ओर जिसकी उत्पत्ति दिव्य बतलाई जाती है एवं यह कहा जाता है कि वह राजापुर के पास रेत में पड़ी मिली थी। स्थानीय जनश्रुति के अनुसार तुलसीदास का राजापुर से परिचय उस महेवा गांव के एक ब्राह्मण वंश में विवाह होने के कारण हुआ जो तहसील सिराधू जिला इलाहाबाद में है। राजापुर में तुलसीदास के उपदेशों से उद्भूत कुछ विचित्र प्रथाएँ हैं। कोई व्यक्ति पत्थर या ईंट का मकान नहीं बनाता। धनी से धनी व्यक्ति भी कच्चे मकानों में रहते है। केवल मंदिर ही ईंट के बनाए जाते हैं। कस्बे में नाई आवाद नहीं हो पाते और वेड़ियों के सिवाय अन्य किसी भी जाति की नर्तकियां उस मैं नहीं रह पाती।

कुम्हारों को भी घर बनाकर वहाँ रहने में प्रतिबंध हैं और तमाम घड़े और मिट्टी के बर्तन राजापुर में बाहर से आते हैं। ये नियम अब अवश्य इतने ढीले हो गए हैं कि वे केवल तुलसी दास की कुटी के आसपास तक ही सीमित माने जाते हैं।

इससे यह विदित होता है कि तुलसीदासजी का जन्म सोरों में हुआ था और वैराग्य लेने के बाद वे किसी समय तापस बनकर राजापुर के उस घने जंगल में तपस्या करते थे। धीरे धीरे वहाँ उनके बहुतेरे चेले आ पहुँचे । तुलसीदास की तपस्या के परिणाम स्वरूप उनकी ख्याति बढ़ती गई और वे रामचरित मानस का पारायण और संशोधन भी करते गए। राजापुर देखते देखते व्यापार की बड़ी मंडी बन गयी और यमुना के द्वारा आगमन बढ़ने पर जनसंख्या बढ़ती गई। यहाँ तुलसीदासजी ने संकट मोचन मारुति की मूर्ति की स्थापना भी की थी। जान पड़ता है कि काशी में विरोध के बढ़ने पर राजापुर आकर उन्होंने मानस का पाठ संशोधन किया और फिर वे काशी वापिस चले गए । राजापुर में भी अनेक वर्षों तक ठहरे और इसी से वे राजापुर वाले तुलसीदास कहलाने लगे । इसी से पीछे के लोगों ने उनका जन्म स्थान राजापुर लिख दिया। तुलसी द्वारा स्थापित मारुति मंदिर को एक माफी लगी थी जो तुलसी के गणपति उपाध्याय के वंशधरों के नाम आज भी है। इस पर कुछ लोग उनका जन्म राजापुर में सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं पर शिष्य के वंश में किसी माफी के चलने से उसे गुरु का जन्म स्थान मानना आवश्यक नहीं हो जाता साथ ही उस माफीनामे, जिसकी नकल पेश की गई है में इस बात का कहीं भी उल्लेख नहीं कि तुलसी दास जी का जन्म स्थान वहाँ का है और न ही उसका कोई नाम भी दिया गया है ।

गनपती लाल के वंशधर मदारीलाल के पास एक सनद जिसका कागज जीर्ण हो गया है वह उर्दू में है । इसका दर्शन दुर्लभ है क्योंकि गणपति के वंशधर मुन्नी लाल उपाध्याय उसे किसी को दिखलाते नहीं है । पंडित रामबहोरी शुक्ल एम ए ने सम्वत 1995 विक्रमी की वीणा के बैसाख के अंत में राजापुर को तुलसीदास का जन्म स्थान लिखते हुए इसका उद्धरण दिया था जो निम्नलिखित है –

'एक बहुत ही जीर्ण कागज पर उर्दू में उर्दू लिपि में लिखी हुई सनद जिसके बाएँ हाशिए पर नीचे लिखी इबारत लिखी हुई है । बीच बीच में कागज़ कई जगह फट गया है इससे जो कुछ पढ़ा जा सका है। उसकी प्रतिलिपि नीचे दी जाती है–

'आमिलान हाल इस्तकबाल परगने गहोरा खिरिक कालिंजर सूबे इलाहाबाद के... आगे पंडित मदारीलाल... गोसाई तुलसीदास के समय का महसूल साहर वा तिहवा तिहाव... जी वा कलारी वा गुजर श्री जमुना जी राजापुर अमलै परवामूजब सनद बादशाही व सूबेदारान व राजा बुंदेलखंड...है सो सिरकार मैं हाल है सो हस व मुवान के अमल सों मुजाहिम ना हूजै हर साल नई सन मा गयी तारीख 21 सावन सन 12 सन् 1779 वामुकाम बांदा ।

इस सनद पर एक कोने में डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट के हस्ताक्षर हैं जो बहुत धूमिल होने से पढे नहीं जाते और ऊपर उर्दू में लिखा है हुकुम हुआ 27 दिसंबर सन 1841'

इसमें कोष्ठकों मैं दिये अक्षरों को उक्त शुक्लजी ने पंडित मुन्नी लाल उपाध्याय के कहने

से बढ़ा दिया है। सनत की उक्त इमारत में तुलसी दास का राजापुर में उत्पन्न होना कहीं भी नहीं है। हाँ राजापुर में उनके निवास का पूर्ण पता अवश्य चल जाता है।

अयोध्या कांड के तापस प्रसंग को लेकर कुछ विद्वान तुलसीदास की जन्मभूमि राजापुर सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। जब वनवासी श्रीराम प्रयाग से चलकर यमुना पार कर आगे बढ़े उस समय वे राजापुर से होते हुए दंडकारण्य की ओर गए। इस समय ग्रामवासी लोगों ने श्रीराम को सीता और लक्ष्मण सहित पैदल वनवासी के रूप में जाते देख दुःख माना और वे बहुत पछताए। ग्रामवासियों के इस समय के बीच एकाएक तापस का आना और प्रेम विह्वल हो अश्रु पात करते हुए उस त्रिमूर्ति के दर्शन करके यकाएक चले जाना यह बतलाता है कि स्वयं तुलसीदास ही अपने जन्म स्थान में अपने प्रभु का स्वागत कर रहे हैं। सुसंगत अंश निम्नलिखित हैं–

सुनत तीर वासी नर नारी,
धाये निज निज काज बिसारी
सुनि सविसाद सकल पछताही,
रानी राय कीन भल नाहीं
तेहि अवसर तापस इक आवा,
तेज पुंज लघु वयस सुहावा
कवि अलिखित गति वेश बिरागी,
मन क्रम वचन राम अनुरागी।
सजल नयन तन पुलक निज इस्ट देव पहचान
परेयु दंड जिमि धरणि तल दसा न जाए बखान।
राम सप्रेम पुलकि उर लावा,
परम रंक जनु पारस पावा।
मनहु प्रेम परमारथ दोऊ,
मिलत धरे तनु कह सब कोऊ।
बहुरि लखन पायन्ह सोइ लागा,
लीन्ह उठाए उमगि अनुरागा।
पुनि सिय चरन धूरि धरि सीसा,
जननि जानि सिय दीन्ह असीसा ।
कीन्ह निषाद दंडवत तेही,
मिलेउ मुदित लखि राम सनेही ।
पियत नयन पुट रूप पियूषा,
मुदित सु असनु पाइ जिमि भूखा
ते पितु मातु कहहु सखि कैसे,
जिन पठये वन बालक ऐसे ।

(रामचारित मानस आयोध्याकांड)

इस अंश पर से राजापुर को तुलसीदास जी का जन्मस्थान सिद्ध करते हुए राजापुर निवासी श्री रामबिहारी शुक्ल एम ए लिखते हैं –

'यहाँ पर तापस का अकस्मात आ जाना और फिर वहाँ से विदा होना किंतु भगवान के दर्शन में ध्यानमग्न हो जाना और इसी दशा में उसको छोड़ कर कवि का अपने इस प्रौढ़तम् अयोध्या कांड में एक गंभीर प्रसंग को अस्पष्ट ही रहने देना साधारण बात नहीं। यह अंश अब तक उपलब्ध सभी प्राचीन प्रतियों में है। इससे इसे क्षेपक कहने से भी काम नहीं चल सकता। इसके समाधान में टीकाकारों ने कई अनुमान किये है। परंतु इसका सबसे संतोषजनक यही तात्पर्य है कि उक्त तापस लक्ष्य में स्वयं कवि तुलसीदास ही थे । विनय पत्रिका में भी 'तुलसी तो सों राम सों कछु नहीं न जान पहचान है' (पद 193) के अनुसार तुलसीदास अपने को जन्म जन्मांतर से श्री राम का भक्त समझने के कारण यह विश्वास करते थे कि उनके जन्म प्रदेश में

होकर जब उनके इष्टदेव गए होंगे तब वे भी अवश्य उनके अभिनंदनार्थ वहाँ रहे होंगे होंगे। अथवा श्रीराम की कथा तो गोस्वामी जी के लिए सजीव थी। वे लिखते– लिखते तन्मय हो गए और अपने जन्म जन्मांतर के अपने प्रभु के पधारने का अवसर उपस्थित रहने के लिए ग्राम वासियों के बीच भावना रूप में स्वयं भी पहुँच गए तथा भगवान के मिलने की अनुभूति का सुख प्राप्त करने में तन्मय हो गए– (वीणा, वैशाख सम्वत 1995 पृष्ठ 546)

प्रथम तो इस तापस प्रसंग की प्रमाणिकता का प्रश्न सामने आता है। यह सभी प्रतियों में नहीं है। प्राचीन प्रतियों में से श्री राम चरन दास महंत की टीका वाली प्रति में ये तापस प्रसंग नहीं है। साथ ही तुलसी साहित्य के प्रसिद्ध अन्वेषक श्री रामदास गौड़ एम. ए. ने भी स्वसंपादित मानस में इस प्रसंग को नहीं रखा है। उक्त वक्तव्य के संबंध में इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि कवि यदि जन्मभूमि में स्वागत करता दिखता है वह उसके स्वयं के तापस लिखने और विरागी वेश में होने से स्पष्ट है। फिर तपोभूमि से जन्म भूमि होना सिद्ध नहीं होता। इस प्रसंग से तो राजापुर तपोभूमि ही सिद्ध होता है।

यहाँ प्रसंगवश सोरों को जन्मभूमि बतलाने वाले एक और प्रमाण को उद्धृत करना आवश्यक जान पड़ता है। नाभादास जी की भक्तमाल पर प्रिया दास रचित भक्ति रस बोधिनी टीका की संवत 1894 विक्रमी में सेवादास ने जो टीका रची है उसमें तुलसी दास के विषय का निम्नलिखित कवित्त है जो पत्नी त्याग के प्रसंग का है और जिसमें उन्हें स्पष्ट ही सोरों निवासी कहा गया है–

सूनी लखि गेह उमड़्यो तिया सनेह जिय
रत्नावली दर्श हेत नयन अकुलाए हैं
भादों की अरध राति चंचला चमकि जाति
मंद मंद बिंदु परे घोर घन छाएं हें
ऐसे में तुलसी खेत सूकर सॉं मोद भरे
चपल चाल जात गंगधार धाए हैं
शव पै सवार हुये के गंग धार पार करी
बदरी ससुरारि जाय पोरिया जगाए हैं ।

(सेवादास भक्तमाल पृष्ठ 163)

इसमें गंगा तट के सूकरखेत (सौरों) को तुलसीजी के गृहस्थ आश्रम का निवास स्थान कहा गया है जहाँ से वे गंगा पार करके अपनी पत्नि रत्नावली से मिलने अंधेरी रात में वर्षा के समय गये थे । इससे विदित होता है कि यथार्थ में तुलसीदास जी का जन्म गंगा तट के सौरॉ (सूकरखेत) में हुआ था और उनकी ससुराल बदरिया ग्राम में गंगा के उस पार थी।

यह बदरिया ग्राम सोरों से एक फर्लांग की दूरी पर है। सौरों और बदरियाँ के बीच तुलसीदास के समय में गंगाजी की धारा बहती थी। आजकल सरकार द्वारा गंगा जी की मुख्यधारा का बांध बनवाए जाने से सौरों आने वाली धारा का मुख बंद हो गया है। पर इस समय भी कई फर्लांग लम्बा नदी के आकार का एक तालाब मौजूद है जो वर्षा में दोनों गंगा जी से जुड़ जाता है। उसमें अब भी पानी भरा रहता है। आज कल उक्त तालाब पर पुल बन गया है पर पहले नाव से ही सौरों और बदरियाँ के बीच आवागमन होता था। इसको देखने से यह बात ध्यान में तुरंत ही आ जाती है कि तुलसीदास जी गंगा की इसी धारा को पार कर इसको देखने से यह बात ध्यान में तुरंत या जाती है कि तुलसीदास जी गंगा की

इसी धारा को पार कर अपनी पत्नी रत्नावली से मिलने गये थे ।

यद्यपि इस समय अनेक व्यक्तियों ने गोंडा जिले के पसका ग्राम को सूकरखेत लिखा है जो गोंडा जिले में सरयू और घाघरा के संगम पर है और जो अब पसका ग्राम कहलाने लगा है। इनमें पंडित रामचन्द्र शुक्ल और श्री भगवती प्रसाद सिंह बी. ए. आदि प्रमुख हैं पर यथार्थ में सौरॉ ही सूकरखेत है जो गंगा किनारे है और प्राचीन काल से ही तीर्थ माना जाता है। गोंडा जिले का बसका ग्राम सूकरखेत या वाराह क्षेत्र तीर्थ नहीं माना जा सकता क्योंकि वे गंगा तट पर नहीं है।

श्री वाराह पुराण में स्पष्ट ही लिखा है–

यत्र भागीरथी गंगा मम् सीकर वेस्थिता
तत्र संस्था च मे देवी ह्युद्भूतासि रसातलात्।

–वाराह पुराण अ.137 श्लोक 7

जहाँ भागीरथी गंगा मेरे सूकर क्षेत्र में स्थित है, वहाँ हे पृथ्वी देवि, मैंने तुमको रसातल से निकाला था। वह ही मेरी विशेष रूप से स्थिति है।

सम्वतसरस्य मध्ये तु तीर्थे सीकरवे मम
कृतोपवासः स्नाने गंगायाम शुद्धिमाप्नुयात् ।

–वाराहपुराण 179/22

संवत्सर पर्व के मध्य मेरे सूकरक्षेत्र मैं उपवास करता हुआ मनुष्य गंगा जी मैं स्नान करके शुद्धि को प्राप्त होता है।

ज्येष्ठशुक्लस्य नवभ्यां स्नात्वा गंगोदके तथा
सूकरेतु त्रिरात्रेन मानवी दीपदः सकृत् ।
दत्त्वा दानं यथा शत्त्क्या सर्व पापैः प्रमुच्यते

– वाराह पुराण 176 श्लोक 74

ज्येष्ठ शुक्ला नवमी को मनुष्य सूकर क्षेत्र मैं गंगा स्नान कर तीन रात्रि दीप प्रदान तथा अन्न दान यथा शक्ति यदि दे तो संपूर्ण पापों से छूट जाता है।

आम्बेराधिपति महाराजा मान सिंह सेनापति भीम देव बघेला ने स्व रचित चालुक्य वंश प्रदीप मैं लिखा है –

प्रभु वराह पद पावनी संत जनन सुख कारिनी
घरनी सूकर खेत सुइ सोरम भव भय हारिनी
प्रथमहुं तिनहिं वराह देव निज शक्ति कृत्य बल
सृष्टि सजन जल मगन धरनि प्रगटाई ता थल
परम पुन्य मय धरनि धन्य सोरम जग सोहै
दोऊ गंगा निज अंग धरे मुनि जन मन मोहें
भुवन नाह वाराह निज श्री मुख बरन जासु जस
सोरम सूकर खेत धनि जग न धाम अभिराम अस।

(चालुक्य वंश प्रदीप पृष्ठ 1)

इन प्रमाणों से यह स्पष्ट है कि उक्त सोरों ही प्राचीन सूकर क्षेत्र है जहाँ भागीरथी गंगा ओर वृद्ध गंगा है। इसके अतिरिक्त वाराह पुराण में जिनका सूकर क्षेत्र में उल्लेख मिलता है वे चक्रतीर्थ, सोमतीर्थ, गृद्ध बट तीर्थ, सूर्य तीर्थ और योग मार्ग तीर्थ आदि सौरों में मोहल्लों के रूप में आज भी स्थित होने से यही सूकर खेत सिद्ध होता है। यहाँ प्रतिवर्ष मार्ग शीर्ष शुक्ला एकादशी और द्वादशी को बड़ा भारी मेला लगता है जिसमें राजपूताना, पंजाब ओर गुजरात आदि से लाखों यात्री आते हैं और वाराह कुंड में स्नान कर सूकर खेत की परिक्रमा करते हैं। वैसे भी उक्त प्रांत के लोग सोरों में मृतकों की अस्थियां विसर्जन करने के हेतु सदा ही आते रहते है। इस स्थान में प्राचीनता के सूचक बहुतेरे स्थान स्मारक भी हैं जिनमे राजा महाराजाओं ओर धनियों की छतरियों हैं तथा मंदिरों के अतिरिक्त नवमी शताब्दी के सोलंकी

नरेश महाराज सोमदत्त के विशाल दुर्ग का ध्वंसावशेष दर्शनीय हैं। इसके अतिरिक्त वहाँ तेरहवीं शताब्दी विक्रमी के कुछ शिलालेख भी हें जिनमें सोरों को सूकर खेत लिखा गया है और उनकी यात्रा का उल्लेख है । इतना तो निश्चित ही है कि सूकरखेत जिसका उल्लेख गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने महाकाव्य रामचरित मानस मैं किया हैं, वर्तमान सोरों ही है और यही उनकी उत्पत्ति हुई थी जो उनके 'दियो जनम .... भरत खण्ड समीप सुरसरि, थल भलो संगति भली' कथन के अनुसार गंगा तट पर स्थित तीर्थ है जहाँ विद्वानों और महात्माओं का उस समय निवास था ।

जन्मस्थान की परीक्षा का एक साधन उस विशेष स्थान में प्रचलित भाषा के बोल चाल के शब्द, मुहावरे तथा वहाँ के कुछ व्यवहार, व्यापार आदि और रचना प्रयोग के परीक्षण करने का भी औचित्य माना जाता है। उक्त संपूर्ण सामग्री से ये भली भाँति सिद्ध हो जाता है कि गोस्वामी तुलसीदास जी गंगा तट के सौरों –सूकर क्षेत्र ही में उत्पन्न हुए थे तथा अतिरिक्त भाषा प्रयोग की परीक्षा की आवश्यकता शेष नहीं रह जाती ।

तुलसीदास जी के गुरु नरहरिदास

गोस्वामी तुलसीदास जी के गुरु कौन थे, इस पर मी मतभेद है। नाभादास जी ने भक्तमाल में इसका कोई उल्लेख नहीं किया और प्रियादास ने 'भक्त रस बोधिनी टीका में इतनी सब बातें लिखते हुए एकाध छन्दों में कहीं भी उनके गुरु के नाम तथा सम्प्रदाय के विषय में कुछ संकेत नहीं दिया है। इधर व्यवस्थित रूप से तुलसीदास जी की जीविनी पर प्रकाश डालने का सर्वं प्रथम प्रयत्न श्रीयुत एच.एच. विल्सन ने किया है। इन्होंने सं. 1888 तुलसीदास जी की जो संक्षिप्त जीवनी लिखी है, उसमें इन्होंने तुलसीदास जी के गुरु का नाम जगन्नाथदास लिखा है, जो भक्त माल के रचयिता नाभादास जी के शिष्य थे। (**A sketch of the Religious Sects of Hindoos page 41**) इसमें विचारणीय यह है कि यदि तुलसीदास जी नाभादास जी के शिष्य जगन्नाथ जी के शिष्य होते तो फिर नाभादास जी स्वयं अपने शिष्य के भी शिष्य की भक्तमाल में इतने सम्मान पूर्ण शब्दों में इतनी प्रशंसा कभी न लिखते और फिर नाभा दास जी के शिष्य प्रिया–दास जी तुलसीदास जी को अपने गुरु–भाई का शिष्य लिखने के गौरव से कभी अपने आपको वंचित भी न रखते। तात्पर्य यह है कि विल्सन साहब ने कहीं से सुन कर बिना विचार फिर जिन जगन्नाथदास को तुलसीदास जी का गुरु लिखा है, वह तुलसी–दास जी के जीवन काल से भी १०० वर्ष पीछे की घटना सम्भव होने से उक्त मत सर्वधा उपेक्षणीय ही है। प्रियादास जी का ही समय सं० १७६६ वि० सिद्ध है, जो उन्होंने स्वयं टीका रचना में दिया है और तुलसीदास जी की मृत्यु सं० १६८० वि० मे हो चुकी थी।

इसके पश्चात तुलसी–साहित्य के सुप्रसिद्ध यशस्वी अन्वेषक डाक्टर ग्रियर्सन साहब ने तुलसीदास जी के 'बन्दों गुरु पद कंज कृपा सिन्धु नर रूप हरि " (रामचरित मानस बा० का०) वाक्य को लेकर तुलसीदास जी के गुरु के विषय में अनुसन्धान किया और उनको रामानन्द स्वामी की परम्परा में मान कर उनकी गुरु–परम्परा की दो सूचियां दी है। (**Indian**

Antiquity 1893 page 266) इन दोनों में तुलसीदास जी श्री रामानंद जी की परम्परा में आठवें ठहरते हैं। अन्तर केवल इतना है कि दूसरी सूची में श्री रामानंद की परम्परा में छठवें गुरु का नाम श्री गरीबानंद जी के स्थान मै श्री गरीबदास जी दिया है। उक्त परम्परा का क्रम यह है १. श्री रामानंद जी, 2. सुरसुरानंद जी, 3.माधवानन्द, 4. गरीबदास, 5. लक्ष्मीदास ६. गोपालदास ७. नरहरिदास और ८. तुलसीदास,

इस सूची को प्रमाण मानने में सबसे बड़ी आपत्ति तो यह है कि नाभादास की भक्त माल ही इसका कहीं समर्थन नहीं करती, जो रामानंद जी की शिष्य परम्परा में स्वयमेव ही विद्यमान थे। वे रामानंद जी की परम्परा में सुरसुरानंद जी का उल्लेख करते है पर अन्य शेष महात्माओं के विषय में उनकी परम्परा का कोई संबंध नहीं बतलाते। जब वे सुरसुरानंद की परम्परा के अप्रसिद्ध शिष्य केशव लटेरा तक का उल्लेख करते हैं, तब भक्तमाल के सुमेरु तुलसीदास जी का उस परंपरा में उल्लेख न करते, यह नहीं माना जा सकता।

नाभादास के भक्तमाल से लेकर प्रियादास की टीका और श्री गोकुलनाथ की दो सौ वैष्णवों की वार्ता आदि तक किसी ने भी उनके रामानंद सम्प्रदाय में दीक्षित होने और उनके रामानंदी बनने का उल्लेख नहीं किया। तुलसीदास के किसी शिष्य के उत्तराधिकारी के रामानंदी होने अथवा किसी रामानंदी के उनके किसी शिष्य की परम्परा मे उत्तराधिकारी महन्त बन जाने से भी तुलसीदास जी उक्त सम्प्रदाय के सिद्ध नहीं किए जा सकते ।

हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने डॉ० ग्रियर्सन की खोज के आधार पर नरहरिदास जी को तुलसीदास जी का गुरु लिखा है। हिन्दी नवरत्न में श्री मिश्र बन्धु लिखते हैं :-

गोस्वामी जी घर से निकल श्री स्वामी रामानंद जी महाराज के शिष्य सम्प्रदाय वाले महात्मा नरहरिदास जी के पास गये और उनके मन्त्र-शिष्य हो गये। जान पड़ता है, वैराग्य गृहण करने से पूर्व गोस्वामी जी नरहरिदास जी से विद्या भी पढ़ते थे और उसी समय आपने उनसे कथा भी सुनी थी। पीछे से वैरागी होने पर गोस्वामी जी ने उन्हीं को अपना दीक्षा गुरु भी कर लिया। (हिंदी- नव-रत्न; गोस्वामी तुलसीदास पृ० ४)

'बाबू श्यामसुन्दरदास और डा०पीताम्बर बडथ्वाल ने नरहरिदास जी के स्थान पर नरहरयानंद जी को तुलसीदास जी का गुरु, माना है। वे लिखते है :

प्रसिद्ध पुरातत्वज्ञ डा० भंडारकर के अनुसार रामानंद जी का समय से० १३५६ से १४६७ तक है। अगस्त्य संहिता में जो रामानंदियों का बहुत मान्य ग्रन्थ है, यही समय दिया हुआ है। अनुमान से १४५० के लगभग उनके द्वादश शिष्यों का होना मान्य है। तुलसीदास आठ वर्ष की अवस्था में, सं० १४६१ मे, व्रत वंधन और राम नाम में दीक्षित हुए थे। १४५० और १५६१ के बीच न तो दो पीढ़ियां ठीक ठहरती है और न आठ। हाँ, इन लगभग सवा सौ वर्षों में चार पीढ़ियों का समय खप जाता है। अतएव नर रूप हरि में गुरु के नाम का जो संकेत है, उस से अनंतानंद के शिष्य नरहरयानंद को समझना चाहिए।

(गोस्वामी तुलसीदास पृष्ठ ३८,३६)

इन विद्वानों ने बाबा वेनी माधवदास के कथन को मान कर उक्त विचार किया है। पहले तो

रामानंद जी के समय में ही १३५६ और १४६७ के दो विभिन्न काल दिए गए है। इससे उन्होंने जो समय दिया है और उसे लगभग विशेषण लगा कर ठीक ठहरता है, निर्णय दिया है, वह निश्चित नहीं, अनुमान–मात्र है। अतएव प्रमाण–कोटि में नहीं लिया जा सकता। उन्होंने रामानंदी सिद्ध करने हेतु उन्हें सुररसुरानंद जी की परम्परा के विरुद्ध उन्हें अनंतानंद जी की परम्परा के नरहरयानंद का शिष्य मान लिया है ।

काशी–नागरी–प्रचारिणी सभा के तत्वावधान में बनी कार्ययोजना से 'लिखे गए तुलसी ग्रन्थावली के तीसरे खंड की प्रस्तावना मे श्री रामचन्द्र शुक्ल लिखते है : "नर रूप हरि" से लोगों ने निकाला है कि नरहरिदास उनके गुरु थे। नरहरिदास रामानंद जी के बारह शिष्यों में से थे। स्वामी रामानंद जी का समय संवत् १४५० के लगभग माना जाता है। इस विधान से नरहरिदास की जो ग्रियर्सन साहब की सूची में है, का सोलहवीं शताब्दी मे होना सम्भव है। पर यह सब अनुमान केवल 'नरहरि' शब्द पर है, जो रामायण के आदि में आया है। तुलसी चरित में इसके सम्वन्ध में लिखा है कि गोस्वामी जी के गुरु रामदास जी थे, अनुमान ही अनुमान की अपेक्षा इस स्पष्ट कथन को मानना उचित जान पड़ता है।

(तुलसी ग्रन्थावली पृ० २६ ३०)

यह वही तुलसी–चरित है जिसे अलवर से बा० इन्द्रदेव नारायण ने प्राप्त किया था और जो एक मुंशी जी को भूटान के एक ब्राह्मण के घर उसके बच्चे को पढ़ाने की वृत्ति के काल में प्राप्त हुआ था। वहां गोसाई तुलसीदास के प्रिय शिष्य रघुवर दास का उक्त तुलसी चरित्र जो एक प्रेत की सौंपा गया था, उन मुंशी जी को मिल गया। इन्द्र देव जी के हाथों से फिर एक बार कुछ अंश निकलने के बाद पुनः वह उसी प्रेत के पास पहुंच गया कहा जाता है। इस ग्रन्थ के स्पष्ट कथन को मानने का आग्रह करते हुए शुक्ल जी ने जो आग्रह किया है और किन्हीं रामदास की तुलसी दास का गुरु लिखा है, वह सर्वथा अविश्वनीय मत होने से त्याज्य है।

इन्होंने पुनः हिन्दी साहित्य के इतिहास में बा० श्याम सुन्दर दास और डॉ. पीताम्बर दत्त बड़वाल के माननीय वैनीमाधव दास के नरहरयानंद के विषय में कटाक्ष करते हुए (हिन्दी साहित्य का इतिहास) में लिखा है :–

'रामानंद जी की शिष्य परम्परा के अनुसार देखें तो भी तुलसीदास के गुरु का नाम नरहरयानंद और नरहरयानंद के गुरु का नाम अनंतानंद (प्रिय शिष्य अनंतानंद हते, नरहरयानंद सु नाम छते. मूल गो.चरित) असंगत ठहरता है। अनंतानंद और नरहरयानंद दोनों रामानंद जी के बारह शिष्यों में थे। नरहरिदास को अलबत्ता कुछ लोग अनंतानंद का शिष्य कहते हैं, पर भक्तमाल के अनुसार वे अनंतानंद के शिष्य श्री रंग के शिष्य थे. (हि० सा० ८० पृ० १५१)

पंडित रामचन्द्र शुक्ल न तो दूसरे मत स्थापन में निश्चित निर्णय पर आते हैं और न प्रथम मत को त्यागने के बारे में कारण देते हैं। हां, रामानंद –परम्परा के झमेले में किसी प्रामाणिक निर्णय पर न पहुंच सकने के कारण आप पुनः जहां सूरदास तुलसीदास मिलन के प्रसंग पर विचार करते हैं, लिखते है : 'एक बात की ओर और ध्यान जाता है। तुलसीदास जी रामानंद सम्प्रदाय की वैरागी परम्परा में नहीं जान पड़ते। उक्त सम्प्रदाय के अन्तर्गत जितनी शिष्य परंपराएँ मानी जाती है,

उनमें तुलसीदास जी का नाम कहीं नहीं है। रामानंद परंपरा में समिलित करने के लिए उन्हें नरहरिदास का शिष्य बताया जाकर परंपरा मिलाई गई है। वे रामोपासक अवश्य थे, पर स्मार्त वैष्णव थे ।' (हिन्दी सा. इ. पृष्ठ 159)

इस प्रकार शुक्ल जी तीन मत स्थापित करते हैं जो जिसे मानना हो मान ले। इधर नामादास जी ने राम जी से तुलसीदास जी के समय तक नरहरि नाम के अनेक साधु भी का उल्लेख आपने भक्तमाल में (छप्पय सं. ३७) रामानंद के शिष्य नरहरि दास (छप्पय सं. ३८) अनन्तानंद की परम्परा में श्री रंग के शिष्य श्री नरहरिदास, (छप्पय ६७) नरहर्यानंद, (छप्पय १००) नारहयनंद, (छप्पय १५२) अग्रदास के शिष्य नरसिंह, (छंद १८१, छप्पय १८१) नरसिंहारण्य किया है, जिनमें तीन को नाभादास जी ने रामानंद की परंपरा में स्पष्ट ही लिख दिया है।

रामानंदी सम्प्रदाय की परम्परा में तुलसीदास के रामचरित मानस का विशेष महत्व माना जाता है, जिसमे केवल रामोपासना प्रधान है और अन्य देव 'केहि लेखे' की भावना रखी जाती है। परन्तु गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने किसी भी ग्रन्थ में कहीं कोई शब्द स्वामी रामानंद जी अथवा रामानुजाचार्य की की स्तुति में कहीं नहीं कहा। इसमें सम्प्रदायानुयायी जैसी कट्टर्ता का सर्वधा अभाव ही है और उनकी रचनाओं में साम्प्रदायिक दृष्टिकोण की प्रधानता कहीं भी नहीं होने से उन्हें किसी सम्प्रदाय विशेष में दीक्षित और उसी के संकुचित दायरे में चलने वाले सिद्ध करने की चेष्टा में नरहरि को ढूढ़ने रामानंद की परम्परा को खोजने तथा उसे नवीन रूप देकर किसी प्रकार तुलसीदास को रामानंदी सिद्ध करना व्यर्थ ही है। तुलसीदास यथार्थ मैं **वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकर रूपणम्** कह कर दास्य भक्ति के विमल आदर्श और आचार्य श्री मारुति के शिष्य होने की घोषणा करते हैं और यही उनकी रचनाओं में ओत प्रोत है। अध्यात्म के हेतु तो वे दास्य–भक्ति के आदर्श आचार्य मारुति जो रुद्रावतार है, को गुरु मान कर चले है, और उन्हीं के दुबारा राम तक पहुंचे है जिनको स्वयं परमात्मा श्री राम ने भक्ति –पंथ बतलाया था और जिसके विषय में स्वयं तुलसीदास जी लिखते हैं:–

सो अनन्य जाकै मति अस न टरे हनुमन्त ।
मैं सेवक सचराचर रूप रासि भगवन्त।।

(राम च. मा०)

जड़ चेतन मय नाम रूपात्मक सम्पूर्ण संसार को अपने सर्व व्यापी श्री राम का सगुण रूप समझ चराचर की सेवा करके जो राम की अर्चना करता है, वही परमात्मा राम का अनन्य सेवक है। इसमें जड़–चेतन मय सम्पूर्ण संसार की सेवा में ही राम की यथार्थ अनन्य भक्ति का सर्वव्यापी निराकार परमात्मदेव भाव से प्रेय मौर श्रेय के भावयोग में विश्व–सेवा में विश्व–पत्ति की उपासना का जो भाव है, वह स्पष्ट करता है, कि गोस्वामी जी वेदानुयायी थे और गीतोक्त कर्म योग में अद्वैत परमात्म भाव की प्राप्ति के हेतु लोक–कल्याण के लिए सत्कार्य सेवा–भाव से करना उनका संदेश है। इसमें उन्हें रामानंदी सम्प्रदाय का मानना कठिन हो जाता है। राम चरित मानस तो गीता के समान सभी वैदिक संप्रदायों का उद्गम और समन्वय का आगार है।उसमें अद्वैत, विशिष्ट अद्वैत, द्वैत आदि सभी के अनुकूल सामान्य सिद्धांत भरे पड़े हैं परन्तु तुलसीदास जी का अपना व्यापक दृष्टिकोण था। वे वेदों के व्याख्याता

ब्राह्मण और उपनिषदों के साथ स्मृति और पुराण आदि सभी को समान भाव से आदर देते हैं। उनकी रचना में गणेश, देवी, सूर्य, महेश और विष्णु की स्तुतियाँ, मंगलाचरण ही में धार्मिक विश्वास या स्व मत के अनुकूल वंदना लिखी जाती है पाई जाती है। इन पर से यह स्पष्ट है कि तुलसीदास किसी ग्रहस्थ स्मार्त ब्राह्मण नरहरिदास के शिष्य हुए थे जिसने बालकपन में ही उनका सूकर खेत में पालन किया था और विद्याध्ययन करा कर उन्हें राम चरित्र का मर्म समझाया था। गुरु के यहाँ शिक्षा के बाद ही उनका विवाह हुआ था। यह हम उनके आत्म–चरित में देख ही चुके हैं।

रेवरेंड एडविन ग्रीव्ज ने तुलसी ग्रन्थावली खंड ३ में तुलसीदास जी पर जो गवेषणापूर्ण निबंध लिखा है, उसमें उन्होंने उनके गुरु के संबंध में लिखा है –

'लड़कपन में तुलसीदास अपने गुरु के पास सूकर खेत में (आज कल सोरों कहा जाता है) रहते थे और रामायण की कथा सुनते थे । वह आप ही कहते हैः–

मैं पुनि निज गुरु सन सुनी
सुनी कथा सु सूकर खेत।
समुझी नहि तसि बालपन
तब अति रहेऊ अचेत ।।
श्रोता वक्ता ज्ञान निधि
कथा राम की गूढ़।
किम समुझै यह जीव जड़
कलि मल ग्रसित विमूह ।।
तदपि कही गुरु बारहि बारा
समुझि परी कछु मति अनुसारा।

धन्य गुरु जी, आपने 'बारहि बार' कहते हुए अच्छी रीति से पढ़ाया और धन्य चेला आपने अच्छी रीति से पढा ! कहा जाता है कि गुरु का नाम नरहरिदास था ।

(तुलसी ग्रंथ तीसरा खंड पृष्ठ ४५–४६)'

गोस्वामी तुलसीदास जी ने सूकर खेत वाले नरसिंह जी को अपना गुरु स्वीकार किया है जिनसे उन्होंने बालपन में अति अचेत रहते हुए भी राम–कथा सुनी थी और वे बार बार रामकथा कहते थे। इससे स्पष्ट है कि उक्त नरहरिदास सोरों वाले पौराणिक थे और प्रायः वाल्मीकि रामायण सुना कर अपनी जीविका चलाते थे। उनके यहाँ कुछ छात्र विद्याध्यन करते थे और वे सेवा से सुखद थे। उनकी सेवा करते हुए कुछ छात्र उनसे विद्याध्यन भी करते थे और वे कुछ गरीब छात्रों को अन्न वस्त्र देकर भी पढाते रहते थे जो बदले में उनकी सेवा करते रहते थे। सोरों में इस समय भी चौधरियों के मुहल्ले में नरसिंह जी महाराज का एक मंदिर है। इन नरसिंह चौधरी के मंदिर की यह इमारत प्राचीन है। इसकी बाहरी दीवाल की अपेक्षा भीतर का काली मंदिर निस्सन्देह बहुत पुराना है, जिसमें हनुमान जी की मूर्ति थी जो आज तक बाहर के एक ताक में जड़ दी गई है। मंदिर के सामने वाली सड़क के एक कोने पर एक पुराना कुआं है, जो नरसिंह जी का कुआं आज भी कहलाता है।

सम्पूर्ण बातों पर विचार करने पर हमें निष्कर्ष पूर्वक कहना पड़ता है कि जिन नरसिंह नामक गुरु के पास सूकर क्षेत्र में रह कर उनकी सेवा करते हुए बालक तुलसीदास जी ने विद्याध्ययन किया था और बारम्बार रामायण सुनी थी, वे सूकर क्षेत्र निवासी नरसिंह चौधरी ही थे, जिनका

मंदिर और कुआं आज भी उनकी स्मृति दिलाते है। इसके लिए रामानंदी परम्परा के किसी साधु नरहरियानंद या नरहरिदास से सम्बन्ध मिलाने का प्रयत्न व्यर्थ है, क्योंकि पिता माता द्वारा परित्यक्त अति अचेत बालक का सूकर खेत के गुरु से विद्याध्ययन करना सिद्ध होता है और बाद में विवाहित जीवनयापन करने का पता चलता है। इनके विवाह के दो स्थान बतलाये जाते है– पहला महेवा और दूसरा वदरिक। ये दोनों भी इसी सूकर खेत (सोरों) के निकट ही हैं।

तुलसीदास जी की धर्मपत्नी रत्नावली

श्री नाभादास जी के भक्तमाल के प्रामाणिक टीकाकार श्री प्रियादास जी ने भक्ति रस बोधिनी में गोस्वामी तुलसीदास जी का जिस गुणवती धर्मपत्नी के एक ही वाक्य से उनके अमर रामभक्त बन जाने की घटना का उल्लेख किया है, उसका नाम प्रबल जन श्रुति के आधार पर रत्नावलि पाया जाता है जो परंपरा से दीनबन्धु पाठक की पुत्री की जाती है।

तुलसी–साहित्य के ख्याति–प्राप्त अन्वेषक स्व. जार्ज ग्रियर्सन (तुलसी ग्रंथावली खंड तीन पृ. २७), श्री अवधवासी लाला सीताराम बी.ए. (अयोध्याकांड प्रस्तावना पृ० ४),पंडित राम चन्द्र शुक्ल० ग्र० ० ३ पृष्ठ २६), श्री मिश्र बन्धु (हिन्दी नव रत्न पृष्ठ ३), श्री रेवेरेंड एफ. ई. की (ए हिस्ट्री ऑफ हिन्दी लिटरेचर पृष्ठ ५१), १० सूर्यकान्त त्रिपाठी एम.ए. (हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक एतिहास पृष्ठ २२४), और पंडित राम नरेश त्रिपाठी (तुलसी दास पौर उनकी कविता पृ० ६६ और १३५, १३०) आदि साहित्य के इतिहासकारों के अतिरिक्त श्री सेवादास आदि की भक्तमाल एवं पंडित रामेश्वर मटू आदि टीकाकारों ने तुलसी दास जी की पत्नी रत्नावली और उनके स्वसुर दीनबन्धु पाठक के नामों का उल्लेख किया है। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका तथा वर्तमान पाठ्य ग्रन्थों में जहां तुलसीदास जी का जीवन वृत्त दिया है उनकी पत्नी रत्नावली का उल्लेख किया गया है।

रत्नावली–विषयक सामग्री की खोज के हेतु प्रयत्न करने पर सोरों में निम्न– लिखित ग्रन्थ प्राप्त होते है–

१. श्री सूकर क्षेत्र महात्म्य २. रत्नावली लघु दोहा संग्रह और ३. रत्नावली (जीवनी) तथा ४. दोहा रत्नावली

१. श्री सूकर–क्षेत्र–माहात्म्य के रचयिता कृष्ण दास, नंददास अष्टछाप वालों के पुत्र थे और गोस्वामी तुलसीदास जी के चचेरे भतीजे थे। इसकी रचना संवत १६७० वि० मे हुई थी। स्वयं कृष्णदास ने उसके विषय मे कहा है :

सोरह सौ सत्तर प्रमित संवत सित दल माह।
कृष्ण दास पूरन करयो क्षेत्र महात्म बराह।।

इसके प्रारम्भ में ही मंगलाचरण के अनंतर अपने पूज्य गुरु जनों की भी बंदना की गई है। यहाँ तुलसीदास और रत्नावलि के सम्बन्ध के चार दोहे उद्धृत किए जाते है : –

बन्दहुँ तुलसीदास पितु बड़-भ्राता- पद-जलज।
जिन निज बुद्धि विलास रामचरित मानस रच्यो।।
सानुज श्री नंददास पितु की बन्दउँ चरन रज।
कीनो सुजस प्रकास रास पंच अध्यायि भनि ।।
बन्दउँ कृपा निकेत पितु-गुरु श्री नरसिंह पद।
वन्दउँ शिष्य समेत वल्लभ आचारज सु पद !
बन्दऊँ कमला मात वन्दहुँ पद रत्नावली।

जासु चरन जलजात सुमिरि लहहिं तिय सुर थली।।
सुकुल वंश दुज मूल पितरन पद सरसिज नमहुँ।
रहहि सदा अनुकूल कृष्णदास नित वंस गनि ।।

(सूकर क्षेत्र माहात्म्य)

२. रत्नावली (जीवनी) सोरों निवासी कवि मुरलीधर चतुर्वेदी कृत संवत् १८२१ वि० की रचना है। सोरों में पंडित गोविन्द बल्लभ मट्ट औदीच्य के पास इसकी एक प्रति है, जिसे मुरलीधर के शिष्य रामवल्लभ मिश्र ने सोरों में संवत १८६४ में लिखा था। इसकी पुष्पिका इस प्रकार है :–

'इति श्री रत्नावलि संपूर्णम् लिखितम श्री मुरलीधर चतुर्वेदि शिष्येन रामवल्लभ मिश्रेन सोरों मध्ये संवत १८६४ मार्गसिर मासे शुक्ल पक्षे ६ शनिवासरे कृष्णाय नमः शुभम्।'

इसमें गोस्वामी तुलसीदास की पत्नी रत्नावलि का जीवन–चरित्र परंपरागत जन श्रुति के आधार पर किया गया है। स्वयं मुरलीधर लिखते हैं :

नव कर वसु भ्रू विक्रमीय,
सूकर तीरथ वन्दनीय ।
साध्वी रत्नावलि कहानि
विरचन मुख जस परी जान ।
दुज मुरलीधर चतुर वेद
लिखि प्रगटी जग हित सभेद।

इसमें तुलसीदास और रत्नावलि के जन्म, उनके विधाध्ययन, विवाह, वैवाहिक जीवन, तुलसी के वैराग्य और रत्नावलि के वियोग के प्रसंग है। संक्षेप में इसका वर्ण्य विषय निम्न लिखित है ।

गंगा भागीरथी के किनारे सोरों जिला एटा के निवासी पंडित आत्माराम शुक्ल सनाढ्य के पुत्र गोस्वामी तुलसीदास अपने काका जीवाराम के पुत्र नंददास के साथ सोरों में स्मार्त वैष्णव पंडित नृसिंह जी के यहां पढ़ते थे। तुलसी की माता का नाम हुलसी था। आत्माराम और हुलसी का परलोकवास तुलसीदास जी के बचपन ही में ही हो गया था। तुलसी की दादी उस समय जीवित थीं। उन्होंने भिक्षावृत्ति से उनका पालन किया। पहले नंददास और चन्द्रहास गाँव रामपुर में रहते थे।

रत्नावलि सौरों के निकट बहने वाली गंगा की धारा के पश्चिम की ओर के वदरिया नामक ग्राम के दीनबन्धु पाठक की पुत्री थी। दीनबन्धु ने रत्नावलि को पढ़ा लिखा कर विदुषी बनाया था। नृसिंह जी की पाठशाला के स्वस्थ सुन्दर होनहार सजातीय विद्यार्थी तुलसीदास की प्रतिभा और रूप आदि पर रीझ कर दीनबन्धु ने रत्नावलि का विवाह तुलसीदास जी के साथ कर दिया। दादी पौत्र वधू के रूप और गुणों पर प्रसन्न हुई पर थोड़े दिन पीछे सुरलोक सिधारी। दम्पत्ति आनंद में रहते थे। तुलसीदास पौराणिक वृत्ति से व्यवहार चलाते थे। इनके तारा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ पर अल्पायु ही में काल कवलित हो गया।

तुलसीदास जी रत्नावलि पर अत्यन्त आशक्त थे। उसे नेहर पिता मातादि से मिलने भी नहीं जाने देते थे। एक बार तुलसीदास जी बाहर कथा बांचने दस दिन को गए थे। इस समय श्रावण के रक्षा बंधन को रत्नावली नैहर गईं थीं। लौटने पट तुलसीदास ने जब रत्नावली को घर न पाया तो बेचैन हो उठे। भादों की घनी अंधेरी रात में बरसते पानी में वे गंगा की धार को शव सहारे पार कर पत्नी के पास जा पहुंचे और रत्नावलि को जा जगाया। उसने उस विकट भयंकर काली रजनी में गंगा की धार पार कर नारी पर आसक्त तुलसीदास के दु:साहस पर और उनकी कामुकता

पर कटाक्ष किया और विषयानंद की अपेक्षा ब्रह्मानंद में लीन होने का व्यंग किया। प्रेमी तुलसी दास को आघात लगा और उनका अथाह प्रेम परमात्मा की ओर झुक पड़ा। वे शीघ्र ही सर्वस्व त्याग वैराग्यवान हो, उसे सोता छोड़ काशी चले गए। रत्नावलि उनके वियोग में दुखी हो अपना समय स्त्रियों को उपदेश आदि करने और परोपकार करने में व्यतीत करने लगीं। सं० १६५१ वि० क्षेत्र कृष्ण अमावास्या के दिन रत्नावली स्वर्ग सिधारी ।

३. रत्नावलिलघु दोहा संग्रह तुलसीदास की पत्नी रत्नावलि चरित १११ दोहों का संग्रह है। इसकी प्रति सोरों जिला एटा निवासी पंडित प्यारेलाल जी के यहाँ से पं. गोविन्दवल्लभ मटू को प्राप्त हुई है, जो ईसुरनाथ पंडित सोरों निवासी ने सं० १८७५ वि० मे लिखी थी। इसकी पुष्पिका उस प्रकार है :—

'इति श्री रत्नावती लघु दोहा संग्रह संपूरनम, लिखितं इंसुरनाथ पंडित सोरों जी मिती माघ सुदी तेरसि १३ सोमवार संवत १८७५ मे।'

इसमें रत्नावलि ने तुलसीदास जी के वैराग्य लेने पर वियोग सम्बन्धी दोहों के साथ साथ कुछ उपदेशात्मक दोहे भी कहे हैं। तुलसी दास जी को सम्बोधन कर रत्नावलि लिखती हैं :—

हो न नाथ अपराधिनी तऊ छिमा करि देउ।
चरनन दासी जानि निज वेगि मोरि सुधि लेउ।।
दीनबन्धु कर घर पली, दीनबन्धु कर छांह।
तोउ भई हों दीन अति पति त्यागी भी बाँह।।

निम्नलिखित दोहीं मैं सोरों में रह कर ही राम—भक्ति करने का तुलसीदास जी से आग्रह किया गया है—

तीरथ आदि वराह जै, तीरथ सुरसरि धार।
याही तीरथ आय पिय भजहु जगत करतार।।
प्रभु बराह-पद पूत महि जनम मही पुन एहि।
सुरसरि-तट महि त्यागि अस गए धाम पिय केहि।।
सवनि तीरथन रमि रह्यो राम अनेकन रूप।
यहीं नाथ आओ चले ध्यावो त्रिभुवन भूप।।

अपने को तुलसीदास की पत्नी होते हुए भी शोकमग्ना उन्होंने लिखा है :—

जासु दलहि लहि हरखि हिय
हरत भगत भव रोग।
तासु दास पद दासि ह्वै
रतन लहति कत लोग।।

यह प्रति प्रामाणिक जान पड़ती है। सौरों की सामग्री की जाँच कड़ी तौर से करने और उसके विरुद्ध निर्णय देने में उतावले डाक्टर माताप्रसाद गुप्त एम. ए. लिखते है :

'रत्नावली लघु दोहा संग्रह के सम्बन्ध में अवश्य हमें कोई सन्देह जनक बात नहीं ज्ञात होती पर सोरों में प्राप्त हुई प्रत्येक अन्य सामग्री के सन्देहातीत न होने के कारण इस लघु दोहा संग्रह के सम्बन्ध में भी यदि किसी को पर्याप्त विश्वास न हो तो आश्चर्य नहीं' (तुलसीदास पृष्ठ ८७)

कम से कम इस सामग्री पर से हमें सोरों में रत्नावलि का होना तो विदित हो जाता है। इधर अन्त में अवध वासी लाला सीताराम बी.ए. का इस विषय पर राजापुर की जन—श्रुति के आधार पर निम्न लिखित मत, जिसका उल्लेख बांदा गजेटियर में मी है, विचारणीय है :—

'उनका (तुलसीदास जी का) विवाह राजापुर के ठीक सामने जमुना के उत्तर तट पर महेवा गाँव में हुआ। यह दीनबन्धु पाठक की कन्या

रत्नावली के साथ हुआ था पर जब उनकी ससुराल के कुल में कोई नहीं बचा, यह पता चलता है कि पहले इस गाँव में मथुरिया ब्राह्मण रहते थे और दीनबन्धु पाठक भी उसी कुल के थे। उससे भी उनके सनाढ्य होने की पुष्टि होती है.'

(अयोध्याकांड तु० का जी० चरित)

परन्तु गजेटियर के अनुसार जनश्रुति राजापुर को गोस्वामी तुलसीदास द्वारा वैराग्य ले लेने के बाद बसाया हुआ मानती है। फिर इनके मत का आधार कुछ भी नहीं है, जब कि वदरिया के विषय में अनेक लिखित प्रमाणों के अतिरिक्त जन–श्रुति भी और राजापुर की जनश्रुति भी वैराग्य के पूर्व तुलसी दास जी का सोरों–निवास तथा पीछे सोरों से राजापुर जाना स्वीकार करती है।

तुलसीदास जी का कुल और वंश

इतना तो गोस्वामी जी के आत्मोल्लेख से स्पष्ट ही है कि उनका जन्म गंगा किनारे के शुभ स्थान में रहने वाले ब्राह्मण वंश में हुआ था जिसकी वृत्ति पुरोहिती थी। इनका कुल पंडित माना जाता था, यह भी उनके आत्मोल्लेख से स्पष्ट है। ब्राह्मण जाति मै उनका वंश किस शाखा का था, इस पर मतभेद है ।

स्व० सर जार्ज ग्रियर्सन ने महा महोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी जी के कथनानुसार इन्हें सरयूपारीय ब्राह्मण मानते हुए लिखा है कि तुलसीदास सरयूपारीय थे, कान्यकुब्ज नहीं, क्योंकि वे अपने आप को 'जायो कुल मंगन' लिखते हैं और कान्य कुब्ज दान और भिक्षा को निन्दनीय मानते हैं।

श्रीयुत शैरिंग महाशय भी सरयूपारीय कान्यकुब्जों से पृथक मानने का कारण बतलाते हुए लिखते हैं ; एक परम्परा से यह कहा जाता है कि सरयूपारीय द्वारा दान लेना स्वीकार करने के कारण वे कान्य कुब्जों की पंक्ति से पृथक पर दिए गए। (Hinidu tribes of castes as represented at Benares P-29)

काष्ठ–जिह्वा स्वामी के मतानुसार यह परम्परा से प्रसिद्ध है कि तुलसी परासर गोत के दुबे थे। इसी का समर्थन पंडित रामगुलाम द्विवेदी मिरजापुर वालों ने किया है और इन्हीं के आधार पर तुलसीदास जी की जीवनी के अधिकांश लेखकों और टीकाकारों ने तुलसीदास जी को सरयूपारीय ही माना है।

गोस्वामी तुलसीदास जी के शिष्य बेनी माधवदास के नाम से प्रसिद्ध मूल गुसाई चरित में भी लिखा है:–

सरवार सुदेस के विप्र बड़े
सुचि गोत परासर टैक कड़े।
सुभ थान पतौजि रहे पुरते
तेहि ते कुल नाम बड़े परखे ।।

(मू० गो० च० पृ० २)

इसके अनुसार तुलसीदास पराशर गोत्र के सरवरिया द्विवेदी थे और पहले उनके पूर्वज पत्र्योजा में निवास करते थे, परन्तु इस फूल गोसाई चरित में उन्हे पंच द्रविड़ान्तर्गत भार्गव ब्राह्मण शाखा के द्विवेदी मी कह दिया है। तुलसीदास के जन्म के समय ही वे पंचवर्षीय बालक से दिखते थे और उनकी बत्तीस दांतों की दिखते थे। उस समय दासी ने इस विलक्षण बालक की उत्पत्ति का समाचार दिया तक उनके पिता की दशा के वर्णन मै लिखा :–

उठे तुरत भृगु वंश-मुनि, सुनत चेरि के बैन।

ठाढ़ प्रसूती द्वार में, पूरित जल सौं नैन।।

(मू. गो० च० पृ० ३)

उक्त मूल गोसाई चरित्र को प्रमाण मानकर गोस्वामी तुलसीदास नामक ग्रंथ की रचना करने वाले डाक्टर पीताम्बर बड़थ्वाल और बाबू श्यामसुंदर दास ने अपने ग्रंथ की उक्त स्वीकारोक्ति को न जाने क्यों भुला दिया?

इसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदास जी के तथाकथित शिष्य बाबा रघुवरदास के नाम से प्रसिद्ध तुलसी–चरित में लिखा है कि सरवार में मझौली से २३ कोस पर कसया ग्राम के जहाँ गोस्वामी तुलसीदास के प्रपितामह परसुराम जी रहते थे, वे गाना के मिश्र थे। वे तीर्थाटन करते चित्रकूट पहुँचे और राजापुर में बस गए। उनके पुत्र शंकर के रुद्रनाथ हुए और रुद्रनाथ के पुत्र मुरारि मिश्र हुए। तुलसीदास जी इन्ही मुरारि मिश्र के पुत्र थे ।

इसके अनुसार पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने तुलसीदास को सरवरिया कुल का मिश्र माना है परन्तु उसी तुलसी–चरित में लिखा हुआ है कि स्वयं तुलसीदास ने अपना वृत्त बताते हुए निवेदन किया:

अति उत्तम कुल भगनि सब व्याही अति कुसलात।
हस्तप्रास पंडितन ग्रह व्याहे सब मम भ्रात।।
मोर व्याह द्वै प्रथम भयउ हस्तप्रास भार्गव गृह ठयऊ।

(तुलसी चरित)

इसमे स्वयं रघुबरदास ने तुलसीदास के भ्राताओं के और स्वयं उनके दो विवाह हस्तप्रास भार्गव ब्राह्मण वंश में होने का स्पष्ट उल्लेख किया है। भार्गव ब्राह्मण वंश में विवाह होने के इस प्रसंग के वर्णन से लेखक के सरवरिया कुल लिखने का खंडन स्वयं हो जाता है। जान पड़ता है कि गोस्वामी तुलसीदास जी की परम्परा से सरवरिया और जनश्रुत्ति से भार्गव ब्राह्मण सुन कर उन्होंने भी दोनों का सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टा की है। परन्तु पंच दृविड़ शाखा के प्रवर भार्गव ब्राह्मण का विवाह सरयूपारीय में नहीं होता, अतएव उक्त कथन निराधार झूठी कल्पना है। इसी नकली ग्रंथ को अन्यतम प्रमाण मान कर पंडित रामचन्द्र शुक्ल जी लिखते हैः–

तुलसी–चरित में ये सरवरिया कहे गए है अतः इनका सरयूपारीय होना सिद्ध है। (तुलसी ग्रंथ भाग ३ पृष्ठ २०)

इन्हें कान्य कुब्ज कुलोत्पन्न मानने वालों में सबसे प्रथम उल्लेखनीय हाथरस वाले तुलसी साहब हैं जिन्होंने अपने आत्म चरित में अपने आप को पूर्व जन्म में कान्य कुब्ज कुलोत्पन्न गोस्वामी तुलसीदास घोषित किया है (घट रामायण ५० ४१५, ४१८)। उसकी प्रामाणिकता संदिग्ध है ही। इसके पीछे राजा प्रतापसिंह ने अपने भक्त कल्पद्रुम में गोस्वामी तुलसीदास जी का वृत देते हुए लिखा है–गोसाई तुलसीदास जी कान्यकुब्ज ब्राह्मण रहे। अपनी स्त्री से विशेष स्नेह रखते थे। (भक्त कल्पद्रुम पृ० ११०) तद्नंतर श्रीयुत मिश्र बन्धुओं ने अपने गोस्वामी तुलसीदास नामक 'विवेचनात्मक निवन्ध में लिखा –

'गोस्वामी जी के कुल के विषय में पंडितों में मतभेद है। राजा प्रतापसिंह ने भक्त कल्पद्रुम में कान्हकुब्ज ब्राह्मण लिखा है। उनको सरयू पारीण मानने में दो आपत्तिया हैं– एक यह कि पूरा बांदा जिला और राजापुर के इर्द गिर्द का स्थान कान्ह कुब्ज द्विवेदियों की बस्ती है, न कि सरवरिया ब्राह्मणों की। यदि गोस्वामी जी द्विवेदी थे, तो उनका कान्यकुब्ज होना विशेष माननीय है। दूसरे

पाठकों के यहां उनका विवाह हुआ था। पाठकों का कुल सरवरिया ब्राह्मणों में बहुत ऊंचा है और द्विवेदियों का नीचा। अतः पाठकों की कन्या द्वेदियों के यहां नहीं विवाही जा सकती। कोई भी उच्च वंश वाला मनुष्य अपनी कन्या नीच कुल में नहीं व्याहता। किन्तु कनौजियों में पाठकों का घराना द्विवेदियों से नीचा है। अतः पाठकों की लड़कियां द्विवेदियों के यहां व्याही जाना उचित है।' (हि. न. र. पृष्ठ 9)

इसके उत्तर में पंडित रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं – ये दोनों आपत्तियाँ निराधार हैं। चित्रकूट के आस पास से लेकर बघेल खंड और जबलपुर के आगे तक सरयूपारियों की वस्ती है। चित्रकूट और राजापुर के आसपास जहां देखिए वहाँ गाव के गांव सरवरिया ही के मिलेंगे। अब रही दूसरी आपत्ति तो सरयूपारीण का बच्चा बच्चा जानता है कि पाठक, चौबे और उपाध्याय सरवरियों की नीची श्रेणी में है। कुलीन सरवरिया उनके यहां बेटे का व्याह भी नहीं करते। द्विवेदियों का कुल पाठकों के कुल से बहुत ऊंचा समझा जाता है।' (तुलसी ग्रंथावली संख्या 3 पृष्ठ 20)

उक्त सरवरिया अथवा कान्य कुब्ज मानने वालों ने अपना कोई आधार नहीं दिया है और न अब तक ऐसी सामग्री उपस्थित की है जिसका आधार प्रमाण माना जा सके। मूल गोसाई चरित्र भी अत्यन्त आधुनिक है और तुलसी चरित जिसे रामचन्द्र जी शुक्ल प्रमाण मानते है, सरासर जाली है जैसा कि परीक्षण से सिद्ध है। उसके आधार पर सरवरिया सिद्ध करने का दुर्बल प्रयत्न हास्यास्पद ही है। यह सब प्रयत्न गोस्वामी जी के कुल का सम्बन्ध सरयूपार और रामानन्द संप्रदाय से जोड़ने के उद्देश्य से किया गया है।

इधर हम देख चुके है कि गोस्वामी तुलसीदास जी का जन्म गंगा–किनारे सोरों में हुआ था, जो उनके स्वयं कथन से सिद्ध है। इसके अतिरिक उनके भ्राता नंद दास जी और उनकी पत्नी रत्नावली के सनाड्य कुल में होने के अनेकानेक प्रमाण उपस्थित हैं, जिनकी उपस्थिति में निराधार कल्पना और जनश्रुति को विशेष महत्व नहीं दिया जा सकता। हम नन्ददास, नृसिंह जी और रत्नावली के विषय में विचार करते हुए संवत १६४२ की लिखी रामचरित–मानस की दो प्रतियों, रत्नावली लघु दोहा संग्रह और कृष्णदास रचित सूकर क्षेत्र–महात्मा का उल्लेख कर चुके हैं। उनसे यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि गोस्वामी जी का जन्म सनाढ्य कुल में हुआ था। गोस्वामी जी के चचेरे भाई और सहपाठी नंददास जी के पुत्र कृष्णदास ने अपने सूकर–क्षेत्र माहात्म्य ग्रन्थ के अन्त में अपनी वंसावलि इस प्रकार दी हैः–

खेत वराह समीप सुचि, ग्राम रामपुर एक।
तंह पंडित पंडित वसत सुकुल वंस सविवेक।।
पंडित नारायण सुकुल ताषु पुरुष परधान।
धार्यो सत्य सनाढ्य पद ह्वे तप वेद निधान ।।
तेहि सुत गुरु ज्ञानी भये भक्त पिता अनुहारि ।
पंडित श्रीधर शेष धर सनक सनातन चारि ।।
भये सनातन देव सुत पंडित परमानन्द ।
व्यास सरिस वक्ता तनय तासु सच्चितानंद ।।
तेहि सुत आत्माराम बुध निगमागम परबीन।
लघु सुत जीवाराम ते पंडित धरम-धुरीन।।
पुत्र आत्माराम के पंडित तुलसीदास ।
तिमि सुत जीवाराम के नंददास चन्द्रहास ।
मथि मथि वेद पुरान सब काव्य शास्त्र इतिहास।।
रामचरित मानस रच्यो पंडित तुलसीदास।

वल्लभ कुल वल्लभ भए तासु अनुज नन्ददास।।
धरि वल्लभ पावार जिन रच्यो भागवत रास ।
नन्ददास सुत हों भयो कृष्णदास मति मंद।।
चन्द्रदास बुध सुत अहै चिरजीवी ब्रज चंद ।

इसके अनुसार पंडित नारायण शुक्ल सनाढ्य के वश में सनातन देव के परमानंद और उनके सच्चितानंद हुए। सच्चिदानंद के दो पुत्र थे–
१ आत्माराम २. जीवाराम। आत्माराम के पुत्र तुलसीदास और जीवाराम के नंदादास थे। नन्ददास के पुत्र कृष्णदास हुए। वंश–वृत निम्न लिखित है :–

वंश वृत

सनातन देव परमानंद सच्चिदानन्द
|
आत्माराम – जीवाराम
| |
तुलसीदास नन्ददास, चंद्रदास
|
कृष्णदास

तुलसीदास जी की यात्राएं

गोसाईं तुलसी दास जी ने भारतवर्ष के विभिन्न तीर्थ स्थानों की यात्राए की थीं । यद्यपि इसका तिथिवार पूरा ब्योरा नहीं दिया जा सकता, परंतु जन–श्रुति तथा अंतःसाक्षियों और बहिर्साक्षियों के आधार पर उसका एक व्यवस्थित वर्णन उपस्थित किया जा सकता है, जो निम्न है–

गोस्वामी तुलसीदास जी वैराग्यवान गृह त्यागी बन कर सोरों से पहले प्रयाग पहुंचे जहां मानसरोवर और कैलाशादि की विस्तृत यात्रा कर सत्संग का लाभ उठाते हुए अनेक वर्षों के बाद वे काशी में स्थायी रूप से रहने लगे। यहीं निवास करते हुए उन्हें एक प्रेत के द्वारा रामकथा के श्रोता के रूप में श्री मारुति जी का दर्शन हुआ जिन्होंने दयार्द्र होकर उन्हे चित्रकूट जाकर श्रीराम के दर्शन करने का आदेश दिया था। चित्रकूट में भी राम के दर्शनों के पीछे वे कुछ वर्ष राजापुर में निवास कर तपस्या करते रहे। उसके बाद वे पुनः काशी जी चले गए और फिर वहीं स्थायी रूप से रहने लगे। वे काशी जी से बहुधा अयोध्या और चित्रकूट की यात्राएं किया करते थे। अयोध्या ही में उन्होंने कुछ काल तक निवास कर अपने विश्व–विख्यात महाकाव्य धर्म ग्रन्थ राम चरित मानस की रचना का प्रारम्भ किया था। वहां भी जब साम्प्रदायिक वैष्णवों से उनका गहरा मतभेद हो गया, तब वे पुनः काशी चले आये और काशी में रहकर ही उन्होंने राम–चरित मानस का शेषांश पूर्ण किया था जिसका पता किष्किन्धा कांड के मंगला– चरण से भी भली भांति चल जाता है। उनकी तीन प्रमुख यात्राओं का पता चलता है जो उन्होंने काशी वासी होने और ख्याति प्राप्त कर लेने के पीछे की थीं।

जन–श्रुति के अनुसार एक बार गोस्वामी तुलसीदास जी भृगु आश्रम जिता बलिया की यात्रा पर गये थे। उसी समय वे हंस नगर और परसिया होते हुए गाय घाट पहुंचे। उन दिनों गायघाट हैहह वंशी नरेश राजा गम्भीरदेव की राज–धानी थी जिनके वंशधर अब तक हल्दी जिला बलिया में रहते हैं। राजा गम्मीर देव ने उनका बड़ा सत्कार किया। वहां से वे ब्रह्मेश्वरनाथ महादेव के दर्शनार्थ ब्रह्मपुर गए थे, जहां शिवरात्रि को एक बड़ा मेला प्रति वर्ष लगता है। यहां से फिर कान्त (ब्रह्मसर) नामक ग्राम में

पहुँचे, जो अहीरों का बड़ा गाँव था। गोस्वामी तुलसीदास ने उस गांव में भोजन का कोई पदार्थ न पाया और वहां के लोगों को राक्षसी भाव में लिप्त देख कर आगे बढ़े। उन्हें मार्ग में उसी गाँव का रहने वाला सावरू अहीर का लड़का मिला। उसने वहाँ एक गोशाला बना रखी थी। वहाँ यह साधु महात्माओं का आतिथ्य सत्कार करता था। वह गोस्वामी जी को बड़े आदर से से ले गया और श्रद्धा पूर्वक ताजा दूध दुहा कर उन्हैं अर्पण किया जिसे उन्होंने खोया बना कर खाया। मगरू के सद्भाव से प्रसन्न हो कर तुलसीदास जी ने उससे वर मांगने को कहा, जिस पर मगरू ने विनम्र भाव से प्रभु के चरणों में दृढ़ विश्वास और वंश–वृद्धि का आशीर्वाद मांगा। तुलसीदास ने उत्तर में कहा यदि तुम और तुम्हारे वंश वाले चोरी आदि दुष्कर्म न करेंगे और किसी को दुःख न देंगे तो तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी। गोस्वामी जी के आदेश का मगरू ने पूरी तरह पालन किया और आशीर्वाद सफल हुआ। मगरू के वंशधर आज भी वर्तमान हैं और बलिया तथा शाहावाद जिले में मगरू के आतिथ्य सत्कार की कहानी प्रसिद्ध है। वहाँ से फिर तुलसीदास जी वेलापतीत गये, जहां के साधु धनीदास के मठ में ठहरे। वहां के राजा रघुनाथदास साधु धनीदास की धूर्तता पर रुष्ट थे। जब तुलसीदास जी के दर्शनों को उक्त राजा रघुनाथदास आये, तब तुलसीदास जी ने उनको धनीदास को क्षमा करने का आग्रह किया, जिसे तुलसीदास जी की खातिर से उन्होंने यह स्वीकार कर लिया । इस घटना के सम्बन्ध में तुलसीदास जी का निम्नलिखित

दोहा प्रसिद्ध हैः–

तुलसी झूठे भगत की पत राखत भगवान।
ज्यों मूरख उपरोहितहिं देत दान जजमान।।

इसी समय तुलसीदास जी के कहने से बेलापतीत का नाम रघुनाथपुर रख दिया गया जो अब तक प्रसिद्ध है। इस स्थान में गोस्वामी जी का चौराहा भी वर्तमान है। वहां से फिर वे कैथी नामक ग्राम में पहुंचे जहाँ के प्रधान जोरावर सिंह ने उनका भक्ति–भाव से आतिथ्य सत्कार किया और उनका शिष्यत्व गृहण किया। तदनंतर तुलसी दास जी हरिहर क्षेत्र पर संगम में स्नान कर षट्पदी होते हुए जनक पुर पहुंच गये। यहाँ हाला के ब्राह्मणों की १२ गांवों की वृत्ति, की किम्बदन्ती के अनुसार उनके पूर्वजों को श्री सीता जी के विवाह काल में प्राप्त हुई थी और जिसे तिरहुत सूबा के हठी और कलह–प्रिय मुस्लिम शासक ने छीन ली थी, तुलसीदास जी ने वह उन्हें वापिस दिला दी। वहां से वे पुनः काशी लौट आये।

इसके पश्चात् उन्होंने नेमिषारण्य तीर्थ की यात्रा की। नेमिषारण्य प्राचीन तीर्थ था। वह अत्यंत प्राचीन काल से ऋषि–मुनियों और साधु –सन्तों के आश्रमों तथा देवालयों के लिए प्रसिद्ध था। मुस्लिम काल में उसकी बड़ी अवनति हो गई थी। वह दुर्दशा ग्रस्त दशा में था और वहां के प्रायः सभी देव–स्थान लुप्त हो गए थे। वहां के वनखंडी नामक एक साधु ब्राह्मण से उक्त तीर्थ स्थान की दुर्दशा न देखी गई और उसने गोस्वामी तुलसीदास जी से वहाँ के देव–स्थानों का पुनरुद्धार कराने को बुलाया। कहते है कि उक्त बनखंडी को किसी प्रेत ने वहां धरती में गड़ा एक बड़ा खाजाना बताया था, जिसके द्रव्य से बनखंडी ने नेमषारण्य को पुनः प्राचीन गौरव पर प्रतिष्ठित करने का प्रशंसनीय प्रयत्न किथा था। तुलसीदास जी ने अपने हाथों प्राचीन देव स्थानों

की पुनर्प्रतिष्ठा की। इसी यात्रा में अयोध्या और पसका (घाघरा और सरयू के संगम पर स्थित जिसे कुछ लोग विशेष कर रामानंदी सूकर खेत कहते हैं) होते हुए लखनऊ पहुंचे। इस समय वे सियरवार गाँव से होते हुए गए थे, जहाँ उन्होंने एक कूप का नाम सीता कूप रखा था।

यहां से वे मडयाऊ गांव पहुंचे जहाँ भीष्म सिंह सिंह नामक एक कानूनगो भक्त जन ने उनका आतिथ्य सत्कार किया। फिर वहां से वे मलीहावाद पहुँचे, जहां वे ब्रजबल्लभ भाट के अतिथि हुए। कहा जाता है कि उसकी सेवा–भक्ति से प्रसन्न होकर उन्होंने उसे रामचरित–मानस की एक प्रति प्रदान की जो अद्यावधि मलीहावाद में वर्तमान है। वहाँ से फिर वे प्रभाती में स्नान कर वाल्मीकि आश्रम होते हुए रसूलाबाद के निकट कोठरा गांव पहुंचे जहाँ धनाड्य माधव दास ने उनका स्वागत किया। वहीं से वे विठूर (ब्रह्मावर्त) गये। वहां से वे संडीले पहुंचे और गौरीशंकर नामक व्यकि के अतिथि हुए, जिसको उन्होंने वंशीधर नामक पुत्र की उत्पत्ति का भविष्य बतलाया था। वंशीधर के वंशज संडीले में आज तक विद्यमान हैं और वंशीधर के अनेक चमत्कारों का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन सुनाते हैं ।

उन्होंने भारत वर्ष के तत्कालीन सम्राट के बुलाने पर दिल्ली की यात्रा की थी जिसका उल्लेख प्रियादास जी ने भी किया है। दिल्ली–यात्रा के समय गोस्वामी जी मार्ग में चरवारी के ठाकुर के अतिथि हुए थे। चरवारी के ठाकुर की एक रूपवती कन्या थी, जिसकी माता ने मारे जाने के डर से पुत्र जैसी रखी थी। यहां तक कि उसका विवाह मी एक दूसरी कन्या से हो गया। जब विवाह होने पर भेद खुला ती बड़ी संकटापन्न अवस्था हो गई। इसी समय गोस्वामी की का वहां पधारना हुआ । ठाकुर और अन्य परिजन पुरजन ने तुलसीदास जी से करुण प्रार्थना की। उन्होंने व्यास हो कर नरवारी मे ६ दिन ठहर कर रामचरित–मानस का नवान्हिक पाठ किया, जिससे ठाकुर की लडकी का नारी पति पुरुष हो गया। उसी दिन से रामचरित मानस के नवान्हिक पाठ की महिमा स्थापित की गई। आज कल राम चरित मानस के अनेक संस्करणों मे नवान्हिक के स्थल प्रदर्शित किये हुए प्राप्त होते हैं। इस घटना के सम्बन्ध में तुलसीदास जी के निम्न–लिखित दो दोहे प्रसिद्ध है, जो वोहावली में है –

कबहुँक दर्शन सन्त के पारस मनी धतीत ।
नारी पलट सु नर भयो लेत प्रसादी सीत ।।
तुलसी रघुवर सेवतहिं मिटि गो कालो काल ।
नारी पलट सुनर भयो ऐसो दीन दयाल ।।

इसके बाद तुलसीदास जी दिल्ली पहुंचे और चमत्कार प्रदर्शन की शाही मांग को पूरा न करने पर वन्दी बनाए गए पर पीछे हनुमान जी की प्रार्थना पर छुड़ाये गये, जिसका बर्णन प्रियादास के उल्लेख में हो चुका है। यहाँ से वे फिर काशी चले आये और तदनन्तर नाभा जी से मिलने मथुरा गये। वहीं उन्होंने कृष्ण मूर्ति के राम–मूर्ति में दर्शन किए और कराये तथा ब्रज क्षेत्र में कोशल्यानंदन की मूर्ति की स्थापना की जो आद्यावधि है।

गोस्वामी तुलसीदास के ग्रंथ विषयक शोध

विश्व वंद्य महाकवि गोस्वामी तुलसीदास जी की रचनार्थी की संख्या के विषय में मत भेद है। यद्यपि उनके मानस और विनय पत्रिका आदि द्वादश ग्रंथ, जिनका उल्लेख आगे कर दिया जायगा, सर्वसम्मति से उन्हीं के रचित माने गये है और अन्तरंग परीक्षण तथा रचना शैली से भी उन्हीं के सिद्ध होते हैं, परन्तु ऐसे अन्य अनेक प्रबन्ध भी तुलसीदास रचित कहे जाते है, जिनके तुलसीदास कृत होने में सन्देह है ।

तुलसीदास जी की रचनाओं की संख्या और उनकी नामावली का सर्व प्रथम उल्लेत ठा० शिवसिंह सैंगर के शिवसिंह सरोज में मिलता है। वे लिखते हैं :

'इनके बनाये ग्रन्थों की ठीक ठीक संख्या हमको मालूम नहीं हुई। केवल जो ग्रन्थ हमने देखे तथा हमारे पुस्तकालय में हैं, उनका जिक्र किया जाता है। प्रथम ४६ कांड रामायण बनाया है, इस तफसील से १ चौपाई रामायण ७ कांड, २ कवितावली ७ कांड, ३ गीतावली ७ कांड, ४ छंदावली ७ कँाड, ५ बरवे ७ कांड, ६ दोहावली ७ कांड, ७ कुंडलिया ७ कांड। सिवा इन ४६ कांडों के १ सतसई, २ राम शलाका, ३ संकट मोचन, ४ हनुमत् बाहुक, ५ कृष्ण गीतावली, ६ जानकी मंगल, ७ पार्वती मंगल, बरखा छंद, ६ रोला छंद, १० झूलना छंद इत्यादि और भी ग्रन्थ बनाए है। अन्त में विनय पत्रिका का महा विचित्र मुक्ति रूप प्रज्ञानंद सागर ग्रन्थ बनाया है। चौपाई गोस्वामी महाराज की ऐसी किसी कवि ने नहीं बना पाई और न विनय पत्रिका के समान अद्भुत ग्रन्थ आज तक किसी कवि महात्मा ने रचा। इस काल में जो रामायण न होती तो हम सरीखे मूर्खों का वेडा पार न लगता।' (शिवसिंह सरोज पृ० ४२७ से ४२८)

इसमें ७ रामायण ग्रन्थों और ११ अन्य ग्रन्थों का उल्लेख है। इस प्रकार शिवसिंह ठाकुर के उल्लेखानुसार तुलसीदास जी कृत रचनाओं की संख्या १८ है।

मिरजापुर के प्रसिद्ध रामायणी पंडित रामगुलाम दिववेदी ने जो तुलसी साहित्य के मर्मज्ञ और अन्वेषक विवेचक विद्वान थे, तुलसी दास जी के दूवादश ग्रन्थ माने है। इसके विषय में उनका निम्नलिखित कवित्त प्रसिद्ध है —

राम लला नहछू त्यौं विराग सैदीपिनी हु
बरवै बनाई निरमाई मति सोई की
पारवती जानकी के मंगल ललित गाई
रम्य राम आज्ञा रची कामधेनु नाई की
दोहा और कवित्त गीत वंध कृष्ण रामकथा
रामायन विनै मांहि बात सब ठाई की
जा में सुहानी जगदीस हू के मन मानी
संत सुखदानी वानी तुलसी गुसाई की ।

इसके मतानुसार तुलसीदास जी की वाणी में १, रामलला नहछू, २ वैराग्य संदीपिनी, ३ बरवै रामायण, ४ पार्वती मंगल, ५ जानकी मंगल, ६ रामाज्ञा प्रश्न, ७ दोहावली, ८ कवितावली, ६ कृष्ण गीतावली, १० राम गीतावती, ११ राम चरित मानस, (रामायण) और १२ विनयपत्रिका की

गणना की जाती है।

तुलसी साहित्य के प्राचीन प्रसिद्ध टीकाकार पंडित वन्दन पाठक ने भी तुलसी दास जी रचित उक्त द्वादश ग्रन्ध ही माने हैं। उन्होंने रामलला नहछू की टीका के प्रारम्भ में लिखा है—

और बडे खट ग्रन्थ के, टीका रचे सुजान।
अल्प ग्रन्थ खट अल्प मति विरचत वंदन ज्ञान ।।

इनके मतानुसार १ दोहावली २ कवितावली ३ गीतावली ४ रामचरित मानस ५ रामाज्ञा प्रश्न और ६ विनयपत्रिका बडे ग्रंथ तथा १ रामलला नहछू २ पार्वती मंगल ३ जानकी मंगल ४ बरवै रामायण ५ वैराग्य संदीपिनी और ६ कृष्ण गीतावलि छोटे ग्रंथ है। प्रसिद्ध रामायणी और तुलसी साहित्य के अन्वेषक और विचारक श्री कोदो राम जी ने तुलसीदास जी के रचे १३ ग्रन्थ माने है, जिनके नाम उन्होंने अपने निम्नलिखित कवित्त में दिए है—

मानस गीतावली कवितावली बनाई कृष्ण
गीतावलि गाई सतसई निरमाई है
पारवती मंगल कही मंगल कही जानकी की
रामाज्ञा नहछू अनुराग युक्त गाई है
बरवै वैराग्य सैदीपिनी बनाई
विनै पत्रिका, बनाई जामे प्रेम परा छाई है
नाम कला कोश मणि तुलसी कृत तेरा काव्य
नहि कलि ऐसी काऊ कवि कविताई है।

इनके मतानुसार १ रामचरित मानस, २ गीतावली, ३ कवितावली, ४ कृष्ण गीतावली, ५ तुलसी सतसई, ६ पार्वती मंगल, ७. जानकी मंगल ८ रामाज्ञा प्रश्न, ६ रामलला नहछू, १० बरवै रामायण, ११ वैराग्य संदीपिनी, १२. विनय पत्रिका और १३ नाम कला कोश मणि — ये तेरह ग्रन्थ तुलसीदास द्वारा रचे गये है।

इसमें दोहावली के स्थान में सतसई का उल्लेख है और नाम कला कोष मणि नामक एक अन्य प्रवन्ध का उल्लेख है ।

तुलसी साहित्य के प्रसिद्ध अन्वेषक सर जार्ज ए. ग्रियर्सन ने अपनी खोज में तुलसीदास जी के २१ ग्रन्थों का उल्लेख किया है, जिनमें १ रामचरितमानस २ गीतावली ३ कवितावली ४ दोहावली ५ छप्पय रामायण ६ राम सतसई ७ जानकी मंगल ८ पार्वती मंगल ६ वैराग्य संदीपिनी १० रामलला नहछू ११ बरवै रामायण १२ रामाजा प्रश्न १३ संकट मोचन १४ विनय पत्रिका १५ बाहुक १६ राम शलाका १७ कुंडलिया रामायण १८ कड़खा रामायण १६ रोला रामायण २० झूलना रामायण और २१ श्री कृष्ण गीतावली है।

उक्त २१ प्रबंधों का उल्लेख करने के बाद जांच करके गिर्यर्सन साहब ने तुलसीदास रचित केवल १२ ग्रंथ ही माने है।

इसके पीछे संवत् १६६० वि० में हिन्दी के बंगवासी के मैनेजर श्री शिवविहारी लाल वाजपेयी ने वंगवासी के ग्राहकों को जो तुलसी ग्रन्थावली उपहार में दी थी, उसमें तुलसीदास जी के १७ ग्रन्थों का संग्रह था। बाद में तीन ग्रन्थ और भी सम्मिलित कर दिए गए थे। उक्त ग्रन्थावली के विषय में शिव विहारीलाल जी ने लिखा था —'हम इस वर्ष महाकवि गोस्वामी तुलसीदास जी के १७ ग्रन्थ हिन्दी बंगवासी के ग्राहकों को उपहार देंगे। इनमें मानस रामायण अति प्रकांड तथा भारत प्रसिद्ध ग्रन्थ है। भारत के नरनारी उसके लिए लालायित है।.... इस मानस रामायण के अतिरिक्त गोस्वामी जी की १६ और रामायण हम अपने पाठकों की उपहार देते हैं। इन रामायणों में सुन्दर काव्य तत्व तथा स्वतन्त्र कथाएं पृथक पृथक रूप

से वर्णित है। किन्तु दुःख इतना ही है कि इन १६ रामायणों का प्रचार इस देश में बहुत कम है। इनका प्रचार बढ़ाने के लिए ही हम इन्हें उपहार स्वरूप देने को उद्यत हुए है।

इस बार के उपहार का सूची पत्र देखिए–

१. मानस रामायण	२. श्री राम ललानहच्छू
३. वैराग्य संदीपिनी	४. बरवै रामायण
५. पार्वती मंगल	१०. श्री रामाज्ञा प्रश्न
११. कवित्त रामायण	१२. कलि धर्माधर्म निरूपण
१३ विनय पत्रिका	१४. छप्पय रामायण
१५ जानकी मंगल	१६ श्रीराम गीतावली
१७. श्रीकृष्ण गीतावती	१८. दोहावली
१६. हनुमान बाहुक	२०. हनुमान चालीसा
२१. संकट मोचन	

17 ग्रन्थों के साथ की इस ग्रन्थावली में पीछे ३ ग्रंथ १ कुंडलिया रामायण २ रामायण छंदावली ३ तुलसी सतसई नामक तीन ग्रंथ और जोड दिए गए। इस प्रकार इन ग्रन्थों की कुल संख्या २० हो गई।

इनके अतिरिक्त अन्य और भी कुछ ऐसी कृतियां है, जिनका उल्लेख नागरी प्रणारिणी सभा काशी की खोज रिपोर्ट में प्राप्त होता है, परन्तु नागरी प्रचारिणी सभा काशी के तत्वावधान में तैयार हुई गो० गुलसीदास जी की त्रिशत जयन्ती के अवसर पर जो संवत १६८० वि० में प्रकाशित हुई, तुलसी ग्रन्थावली में तुलसीदास जी के कुल द्वादश ग्रंथ संग्रहीत किए गए है। प्रस्तावना में लिखा है–

'गोस्वामी जी के रचित १२ ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं, जिनमें ६ बडे पोर ६ छोटे हैं

बड़े ग्रंथ	छोटे ग्रंथ
१. दोहावली	१. रामलला नहछू
२. कवित्त रामायण	२. पार्वती मंगल
३. गीतावली	३. जानकी मंगल
४. रामचरितमानस	४. बरवै रामायण
५. रामाज्ञा	५. वैराग्य संदीपिनी
६. विनय पत्रिका	६. कृष्ण गीतावली..

(तुलसी ग्रन्थावली तृतीय खंड पृष्ठ ६५)

इसके विषय में ग्रन्थारम्भ में वकतव्य में लिखा है –

'राम चरित मानस के अतिरिक्त इस ग्रन्थावाली में तुलसीदास जी के शेष ग्रंथों के सन्निवेश छक्कनलाल जी के प्रमाणपर किया गया है क्योंकि रामगुलाम द्विवेदी बड़े प्रसिद्ध भगवद् भक्त और रामायणी थे, जिन्होंने गोस्वामी जी के ग्रन्थों की खोज,पूरी जांच के साथ भक्त परम्परा के बीच की थी। उन्हींने अपने संग्रह में रामायण के अतिरिक्त ११ ग्रन्थ और रखे है अतः दूसरे भाग में वे ही ११ ग्रन्थ लिख लिए गए हैं।'

(तुलसी ग्रन्थावली वक्तव्य पृ०३)

पंडित महावीरप्रसाद मालवीय के द्वारा प्रस्तुत और वेलवेडियर प्रेस प्रयाग से प्रकाशित तुलसी ग्रन्थावली में उक्त दूवादश ग्रन्थ ही संग्रहीत हैं। इसमें हनुमान बाहुक कवितावली ही में संयुक्त किया गया है। यदि उसे हम प्रथक प्रबन्ध में गिने, तो फिर तुलसीदास जी के १२ ग्रन्थ ठहरते है।

इधर पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने तुलसीदास और उनकी कविता नामक ग्रन्थ में तुलसीदास रचित कही जाने वाली रचनाओं की एक लम्बी सूची तुलसीदास की स्व कथित जीवनी शीर्षक से प्रारम्भ ही में दी है, जिनमे ३६ रचनाओं के नाम दिए है जो निम्न लिखित है –

१. रामचरित मानस	२. कवितावली रामायण
३. गीतावली रामायण	४. बरवे रामायण
५ दोहावली रामायण	६. छन्दावली रामायण

७. पदावली रामायण	८. कुंडलिया रामायण
६. छप्पै रामायण	१०. कड़खा रामायण
११. रोला रामायण	१२. झूलना रामायण
१३.मंगल रामायण	१४. वैराग्य संदीपनी
१५.रामलला नहछू	१६. पारवती मंगल
१७. जानकी मंगल	१८. रामाज्ञा प्रश्न
१६. श्रीकृष्ण गीतावली	२०. विनय पत्रिका
२१. हनुमान बाहुक	२२. संकट मोचन
२३. हनुमान चालीसा	२४. राम शालाका
२५. तुलसी सतसई या राम सतसई	
२६. कलि धर्माधर्म निर्णय	
२७. बारहमासी	२८. अंकावली
२६ ध्रुव प्रश्नावली	३०. तुलसीदास की बानी
३१. ज्ञान को परिकरण	३२. गीता भाषा
३३. सूर्य पुराण	३४. ग्यान दीपिका
३५. स्वयंवर	३६.रामगीता
३७. कृष्ण चरित्र	३८.सगुनावली
३६. हनुमान शिक्षामुक्तावली	

इनमें कितने ग्रन्थ वास्तव में तुलसीदास के रचे हुए है, इस विषय पर हम स्वतन्त्र रूप से आगे विचार करेंगे।(तुलसी और उनकी कविता पृ० ३) फिर त्रिपाठी जी तुलसीदास की रचनाएं शीर्षक में लिखते हैं – 'उक्त सूची के सभी ग्रंथ तुलसीदास के रचे कहना बडी जिम्मेदारी की बात है। उनमें से कौन कौन से ग्रन्थ उनके रचे हुए नही है, यह बतलाना भी कठिन ही नहीं असम्भव है।'

(तुलसी और उनकी कविता पृ० १७१)

फिर उन पर बिना किसी प्रकार का विचार किए आप लिखते है –'यहाँ हम उन रचनाओं पर अलग अलग विचार कर लेना चाहते है, जो विशेषज्ञों की सम्मति से उन्हीं की स्वीकार कर ली गई है। वे रचनाएं ये है – १, वैराग्य संदीपिनी २. रामाज्ञा प्रश्न और रामशलाका ३. गीतावली ४. दोहावली ५, तुलसी सतसई ६. कवितावली ७. रामचरितमानस ८. पार्वती मंगल ६.रामलला नहछू १०. जानकी मंगल ११.श्री कृष्ण गीतावली १२. वरवै रामायण और १३, विनय पत्रिका। (तुलसी और उनकी कविता पृष्ठ १७१– ७२)'

अन्य रचनाओं पर आपने कुछ भी विचार करने की आवश्यकता नहीं समझी। केवल इस संग्रह में सतसई की और जोड़ दिया है क्योंकि काशी नागरी प्रचारिणी सभा के सभापति बा० श्याम सुन्दर दास ने सत्तसई गोस्वामी जी की रचना स्पष्ट प्रमाणित कर दी थी। इन के सिवाय डॉ. माता प्रसाद गुप्त एम.ए. ने भी अपने तुलसी दास नामक ग्रंथ में उनकी रचनाओं की संख्या और नामों के विषय में लिखा है –

'प्रस्तुत प्रसंग में विचार की सुविधा के लिए कवि की कृतियों को हम दो श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं –

अ. वह रचनाएं भी साधारणतः कविकृत मानी जाती है

ब. अन्य रचनाएं

प्रथम श्रेणी की रचनाएं निम्न लिखित है –

1. रामलला नहछू २. वैराग्य संदीपिनी ३. रामाज्ञा प्रश्न ४. जानकी मंगल ५. रामचरितमानस ६. सतसई ७. पार्वती मंगल ८. गीतावली ६. श्री कृष्ण गीतावली १०, बरवै रामायण ११. विनय पत्रिका १२, दोहावली १३. कवितावली तथा हनुमान बाहुक

द्वितीय श्रेणी में निम्न लिखित रचनाएं आती है–

१. अंकावली २. बजरंग वाण ३. बजरंग साठिका ४. भरत मिलाप ५. विजय दोहावली ६. वृहस्पति कोड ७. छंदावली रामायण ८. छप्पय रामायण

६. धर्मराय की गीता १०, ध्रुव प्रश्नावली ११. गीता भाषा १२. हनुमान स्तोत्र १३. हनुमान चालीसा १४. हनुमान पंचक १५. ज्ञान दीपिका १६. पद बंध रामायण १७. राम मुक्तावली १८. साखी तुलसी दास की १६. संकट मोचन २०. सत भक्त उपदेश २१. तुलसीदास की वानी २२. सूर्य पुराण २३. उपदेश दोहा, (तुलसीदास पृ० ६७.६८रू)

हम दोनों श्रेणियों के ग्रन्थों की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में हम निम्नलिखित तीन बातों के आधार पर विचार कर सकते है–

क. ग्रन्थों की प्राप्त प्रतियों के भाधार पर .

ख. उनकी शैली के आधार परः

ग. अन्य बातों के आधार पर.

फलतः प्रथम श्रेणी के १३ ग्रन्थों में से वैज्ञाग्य संदीपिनी तथा सतसई को छोड कर शेष ११ ग्रन्थ प्रामाणिक जान पडते है। (तुलसीदास पृ०.१०१)

कवि की कृतियों की जो सूची प्राप्त है, वह अधिकतर ऐसी रचनाओं की है जो हमारे कवि की कृतियाँ नहीं जान पड़ती, किंतु ११ ग्रंथ उसमे निस्सन्देह ऐसे हैं, जो हमारे कवि तुलसीदास की रचनाएं है और उन्हीं से हमको सबसे अधिक प्रामाणिक सामग्री हमारे अध्ययन के लिए प्राप्त हो सकती है।'

(तुलसीदास पृ० १०४)

वैराग्य संदीपिनी की अन्तरंग परीक्षा से विषय और शैली से वह निस्सन्देह तुलसीदास जी की रचना है। सतसई के विषय में इतना ही कहना पर्याप्त है कि यदि दोहावली तुलसीदास जी की रचना है, तो सतसई भी . उसी सामग्री और शैली के कारण निस्सन्देह उन्हीं की रचना है। हां, इतना अवश्य स्वीकार करना पडता है कि सतसई के अनेक दोहे प्रक्षिप्त हैं और तुलसीदास कृत नहीं हैं ।

इन सूचियों में उल्लिखित पुस्तकों की नामावली के सिवाय और भी कुछ काव्य कृतियां है, जिन्हे प्रकाशकों ने तुलसीदास रचित प्रसिद्ध की है. इनमे से १. बारहमासा २, जानकी विजय और ३. राम जानकी कंकन नामक तीन प्रबंधों के विषय में यहाँ चर्चा की जाती है। बारहमासा वेलवेडियर प्रेस से विजावर निवासी पंडित पुरुषोत्तम मटू ने प्रकाशित कराया है। आप इसकी भूमिका मैं लिखते हैं – 'लोक प्रसिद्ध श्री गोस्वामी तुलसीदास जी कृत सरस वाणी पौर अद्भक्ति रस को कौन नहीं जानता! आज उन्हीं गोस्वामी जी की एक अद्भुद वैराग्य ज्ञानमय बारहमासी सर्व सज्जनों के कृतार्थ हेतु उपस्थिति करता हूँ।' इसी के साथ इसके प्रकाशक की विज्ञप्ति में लिखा है– हम को इस बारहमासी की भाषा से संदेह होता है कि यह रामायन के ग्रंथकर्ता श्री गोस्वामी तुलसीदास जी की वानी नहीं है। अवश्य उसी नाम के किसी अन्य महात्मा की बनाई हुई है।'

इसकी भाषा के उदाहरण में निम्न पंक्तियाँ देखें –

नीर कुल्ला जस कुसुम रंग एस ही संसार रे
सार केवल नाम हरि को ताहि नाहि विसार रे।

यह भाषा गोस्वामी तुलसीदास जी की स्वप्न में भी नहीं है। जिनका भाषा पर एकाधिपत्य हो वह ऐसी लचर टूटी फूटी प्रवाहहीन भाषा स्वप्न में भी नहीं लिखते। भाव को व्यक्त करने की शैली और विषय से भी यह स्पष्ट है कि उक्त रचना तुलसीदास जी की नहीं है। निम्नलिखित पंक्तियां इसका प्रमाण हैं –

कर्म कीच बढी जहाँ तहं, मलिन मन चित्त देहि रे
अमल नीर विवेक सों तू विमल मन कर लेहि रे

कर्म त्याग की ऐसी बात किसी निर्गुणवादी सन्यासी के द्वारा लिखी जाती है। तुलसीदास जी को भक्ति के आचार्य मारुति जी सतत कर्म लीन रखते हैं। पर उनके सम्पूर्ण कर्म फलाशा से रहित और प्रभु की प्रीति के हेतु उन्हीं को समर्पित करने के उद्देश्य से किए जाते हैं। फिर भी इस रचना को तुलसीदास के नाम पर चलाने वाले महाशयों के महात्माओं ने अंधेर फैलाने में कोर कसर नहीं छोड़ी !

शेष दो पुस्तकें जानकी विजय और राम जानकी कंकन अयोध्या के सेठ छोटेलाल लक्ष्मीचंद ने प्रकाशित की है। जानकी विजय में लंकेश वध के पीछे सिंहासनासीन श्री सीताराम के सन्मुख सप्त ऋषियों के जाने और श्री राम की ब्रह्म रूप में स्तुति गाने से सीता जी के व्यंग सहित मुस्कराने का वर्णन है। राम जी के कारण पूछने पर सीता जी ने कहा –

अवहि न प्रभु कछु कारण कीन्हा,
वधि दश शीस कौन यश लीना.
सहस सीस कर दूसर रावण,
प्रवल महा भट भूरि भयावन
सुनि सिय वचन कहा जगदीसा,
सुना न रावण दस सत सीसा
कहिये ताहि कौन दिसि रहई,
कहं तुम सुना कौन जो कहई।

सीता जी ने श्वेत द्वीप वासी सहस सिर वाले रावण का पता बतलाया। राम जी सेना सहित उससे पराजित हुए और उनका गर्व चूर चूर हो गया। तब सीता जी से प्रार्थना करते हुए विनीत भाव से बोले –

परम शक्ति अतुलित बल माया,
तुव प्रभाव निगमागम गाया:
यहि विधि अब यह खल बल मारा,
कीजे अब या को संहारा.
सुनि प्रभु वचन विदेह कुमारी,
करि कौतुक लीला विस्तारी.
विकट वेष तब मातु जानकी,
सैन्य हनी अति यातुधान की.

(पृ० २० और २३)

इसकी भाषा अत्यन्त शिथिल और प्रमावहीन है, जैसे

विविध यतन करि वान प्रहारा
अस्त्र सस्त्र बहु भांति प्रहारा

(पृष्ट १६)

तात्पर्य यह कि उक्त रचना तुलसीदास जी की स्वप्न में भी नहीं हो सकती। यही दशा राम जानकी कंकन की है।

छप्पय रामयण और कुंडलिया रामायण आदि की परीक्षा से वे भी तुलसीदास जी की रचनाएं नहीं मानी जा सकतीं। यहां छप्पय रामायण के, जो नवल किशोर प्रेस से प्रकाशित और प्रसिद्ध टीकाकार बैजनाथ की टीका से शुद्ध सटीक संस्करण से दो छन्द उद्धृत किए जाते है, जिनसे यह स्पष्ट हो जायेगा कि वर्णन, शैली व सूर्य विषय की व्यंजना और भाषा तथा छन्द आदि की दृष्टि से उक्त रचना किसी अन्य महात्मा ने लिख कर तुलसीदास के नाम से प्रचलित कर दी है।

टूटत धनु भयो सोर परशु धर तबहीं आयो
कंपित नृप सब भये सहित पितु नाम सुनायो
परशुराम मन गुनेउ राम अवतार लियो अब
दियो शरासन बाण गवन कीन्हेउ वन ही तब
सिया विवाहि निवसे अवध हर्ष सों करे सराहना

कृपा करिय श्री रामचंद्र मम हरहु शोक संतापना
(पृ० २० छ. ११)

रामचरित अवगाह सिंधु कोउ पार न पावे
शेष शारदा निगम नेति कहि निज मुख गावै
काकभुशुंडि सों गरुड़ सुनी तुलसी मानस गुनि
शंभु उमा सों कही भरद्वाज सों याज्ञवल्क्य मुनि
कहत सुनत रति राम पद होत सदा उर आपना
कृपा करिय श्री रामचंद मम हरहु शोक संतापना

इन भ्रष्ट छन्दों भौर गतिहीन भाषा और हीन प्रवन्ध योजना की रचना को तुलसीदास कृत मान लेने वालों पर सचमुच महान आश्चर्य है। इसी प्रकार कुंडलिया रामायण आदि की परीक्षा से वे तुलसी कृत नहीं मानी जा सकतीं। यहां १ राम मुक्तावली और २ ग्यान दीपिका इन दो कृतियों पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है, जिन्हें अनेक लोग तुलसी कृत मानने का विशेष आग्रह करते हुए देखे जाते हैं। इनमें राम मुक्तावली तो काशीराज के पुस्तकालय में है, जिसकी प्रतिलिपि संवत् १६८६ वि० की अर्थात् गोस्वामी जी के अवसान के ठीक ६ वर्ष पीछे की है। इसके पूर्व में निर्गुण ब्रह्म का और उत्तरार्ध में सगुण ब्रह्म का निरूपण है। इसमें राम मंत्र की जप विधि सर्वथा विलक्षण रूप में दी है। वर्णय विषय, सिद्धांत, शैली और भाषा की दृष्टि से यह रचना गोस्वामी तुलसीदास जी की नहीं जान पड़ती, जिसका परिचय निम्नलिखित उद्धरण से प्राप्त होता है–

मंत्र विधि पहले नर कही है –

आसन भेद मन चारु चित धरी है
यहि ते आसन कहेउ जे भेदा
तब नीगुर के साथ विभेदा
तीनि मोटि सो गृह उतारी है
नी मूठ हाथ ले पाव पखारी है
सत्रह कुलाफे की धो डारी है
विष्णु विष्णु के सुमिरन करी है
बैठत तीनि आचमन पच्छिम दिसा करंत
रामहि कहि वेदी पर आखर तीनि ।

(राम मुक्तावली, काशिराज की हस्तलिखित प्राचीन प्रति से) तुलसीदास जी की रचना से थोडा भी परिचित व्यक्ति यह निश्चित रूप से कह सकेगा कि उक्त कृति स्वप्न में भी तुलसीदास जी की रचना नहीं हो सकती।

ज्ञान दीपिका की अनेक हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त होती हैं। इसमें रचना काल दिया गया है जिससे विदित होता है कि इसकी रचना संवत् १६३१ आषाढ शुक्ला २ गुरुवार के दिन हुई थी। ज्योतिष की गणना के अनुसार यह अशुद्ध है क्योंकि संवत् १६३१ में आषाढ शुक्ला २ के दिन किसी भी प्रकार गुरुवार नहीं पड़ता।

वर्णय विषय, सिद्धांत और भाषा आदि की दृष्टि से मी रामचरित मानस के महाकवि गोस्वामी तुलसी दास जी की यह कृति नहीं मानी जा सकती। इसके प्रमाण में इसका निम्न उदाहरण ही पर्याप्त है –

संवत सोरा से गये, इकतिस अधिक विचार
शुक्ल पक्ष आषाढु की दोज पुष्य गुरुवार
ता दिन उपजी दीपिका पांच जीत परवान
धर्म ज्ञान यह ब्रह्म पुनि परम सुरूप वखान ।
मीत बंधु कुल देस जप तप किया वेद विध
रहे न इनको लेस नारि जो मुखहिं लगाइए
प्रीति किए दृढ़ जान विधिना ताके कर गहे
जीतहिं टिकावत आन तितहि को मन कामना ।

इस प्रकार सम्पूर्ण उपलब्ध कृतियों की परीक्षा

करने पर तुलसीदास जी रचित केवल १.रामलला नहच्छू २. वैराग्य संदीपिनी ३. रामाज्ञा प्रश्न ४. दोहावली ५, कवितावती और बाहुक ६ सतसई ७. पार्वती मंगल ८. जानकी मंगल ६, गीतावली १०, वरवै रामायण ११. कृष्ण गीतावली १२, रामचरित मानस और १३ विनय पत्रिका १३ ग्रंथ ठहरते हैं। इनकी प्रामाणिकता के विषय में निम्नलिखित आधारों पर परीक्षा की जाने पश्चात् इस ग्रन्थ में इनको तुलसीदास जी कृत मानकर विवेचना की गई है–

१. वर्णय विषय २, सिद्धान्त २, अभिव्यंजना शैली ४, प्रवाह और गति ५. भाषा प्रयोग और 6. प्राचीन प्रतियों की परम्परा का आधार।

महाकवि तुलसीदास जी की सम्पूर्ण काव्य कृतियों का विभाजन चार प्रमुख भागों में होता है, जो निम्नलिखित है –

1. महा काव्य – रामचरित मानस
2. खंड काव्य –
   1 जानकी मंगल   2 पार्वती मंगल
   3 रामाज्ञा प्रश्न
3. मुक्तक काव्य रस प्रधान –
   1कवितावली और बाहुक   2 बरवै रामायण
4. सूक्ति प्रधान –
   1 दोहावली   2 सतसई
   3 वैराग्य संदीपनी   4 गीतिकाव्य
5 काव्यात्मक –
   1 रामगीतावली   2 कृष्ण गीतावली
   3 रामलला नहछू
6. भावात्मक –
   1 विनय पत्रिका

पाठक लिखते हैं

मानस भारती का नवंबर 24 का अंक आपकी विशेष कृपा से प्राप्त हो गया। मानस भारती के इस अंक में सर्वाधिक महत्वपूर्ण लेख सिलहकारी जी का है। मानस भवन ने उनकी पुरानी शोधपूर्ण अप्रकाशित सामग्री को मानस भारती में प्रकाशित कर सिलहकारी जी और वीरसिंह जूदेव के प्रति साहित्य ऋण भार दूर किया है। यह सामग्री बड़े परिश्रम ओर अध्ययन से एकत्र कर यह ग्रंथ तैयार किया गया है। दुर्योग से यह तब प्रकाशित नहीं हो सका। अब लगभग 100 वर्ष बाद मानस भवन ने इसे प्रकाशित करने का संकल्प लिया है। यह साहित्य और समाज के लिए बहुत कल्याणकर है। प्रस्तुत अंक में तुलसी दास जीके गुरु नरहरि जी की चर्चा है। मानस भारती के प्रधान संपादक मिश्र जी को यह ग्रंथ वीरेंद्र केशव साहित्य परिषद के अध्यक्ष स्वर्गीय श्री हरि विष्णु अवस्थी टीकमगढ़ ने उपलब्ध कराया था। इस प्रकार यह उनके प्रति भी श्रद्धांजलि है। दूसरा महत्वपूर्ण लेख मेरा तुलसी दासजी की कृष्ण गीतावली से संबंधित है। इस पर कम सामग्री मिलती है। अंक में डॉक्टर विश्वास पाटिल का आलेख भी पठनीय है।

इस अंक में विक्रम विलगइयां की 400 साल पुरानी अज्ञात और अप्रकाशित कृति सुदामा चरित्र की समीक्षा भी उल्लेखनीय है। यह हिंदी का प्रथम सुदामा चरित है। इसकी भाषा बुन्देली है ।

डा गंगा प्रसाद बरसैयां, भोपाल

परिशिष्ट

विराट संयोजन की रूपरेखा

तुलसीदास आठ खंडों में पूर्ण

क्रम भाग

विषय – अनुमानित पृष्ठ संख्या

भूमिका खंड – परिचय, दर्शन, रामकथा, काव्य गरिमा, भाषा, टीकाकार और समीक्षक तथा प्रभाव (700 पृष्ठ)

मानस खंड – बालकाण्ड और अयोध्याकाण्ड टीका (600 पृष्ठ)

अरण्य और किष्किन्धा तथा सुंदरकांड टीका– (600 पृष्ठ)

लंका और उत्तर काण्ड – (पृष्ठ 600)

गोस्वामी जी के एकादश ग्रंथ व गीतावली, कवितावली आदि टीका – (700 पृष्ठ)

सिद्धांत खंड – दार्शनिक, धार्मिक और सामाजिक, नैतिक तथा राजनैतिक सिद्धांत –(500 पृष्ठ)

तुलनात्मक समालोचना – भारत तथा विश्व की अमर रचनाओं से गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन– (600 पृष्ठ)

तुलसी कोश – (600 पृष्ठ)

भूमिका भाग

संक्षिप्त विषय सूची

परिचय–365, तुलसी दर्शन 80 पृष्ठ, रामकथा और तुलसीदास–150 पृष्ठ, तुलसी की काव्य गरिमा– 60 पृष्ठ, भाषा (50 पृष्ठ), तुलसी साहित्य की समीक्षा और उनकी कृतियाँ (700 पृष्ठ)

विषय प्रवेश –

अंतःसाक्षियों के आधार पर तुलसी का जीवन और आत्मचरित

बाह्य साक्षियों के आधार पर तुलसी की विभिन्न लेखेकों द्वारा प्रस्तुत जीवनी और उनका खोज पूर्ण निर्णय

तुलसी परिचय

विषय प्रवेश

तुलसी रचना परिचय

विषय प्रवेश

मुक्तक काव्य – रस प्रधान, सूक्ति काव्य

गीतिकाव्य, कथात्मक, भावात्मक, खंड काव्य, महाकाव्य

संरक्षक के दो शब्द– वक्तव्य

ओरछा राज्य और हिंदी साहित्य – संरक्षक श्रीमान ओरछेश का व्यक्तित्व ओर साहित्य प्रेम

हिंदी साहित्य को उनकी साहित्यिक सेवाएं उनकी प्रमुख साहित्यिक संस्थाएं । उनके राज्य कवि

श्रीमान द्वारा स्वर्गीय राजमाता की पावन स्मृति में उनके प्रिय महाकवि तुलसीदास और रामचरित मानस पर विशाल ग्रंथ की रचना का संकल्प। अनेक वर्षों के विचार के पीछे उसके निर्माण की योजना। नई खोज विषय क्रम, ग्रंथ विषयक अन्य आवश्यक निवेदन

समर्पण

भूमिका खंड

तुलसी परिचय

श्रीमान के जन्म से पूर्व उत्तर भारत की राजनीतिक अवस्था। सामाजिक अवस्था धार्मिक अवस्था आर्थिक अवस्था

तुलसीदास जी के जन्म के पूर्व की भाषा और साहित्यक गतिविधि

सिद्ध साहित्य, नाथ सम्प्रदाय और हठयोग। हिंदू मुस्लिम मेल कराने वाला साहित्य, जैन साहित्य, बौद्ध साहित्य, सूफी साहित्य, संत साहित्य

(मूल पांडुलिपि छायांश)

हिन्दी-साहित्य का एक विराट् आयोजन

विश्व कवि तुलसीदास

राष्ट्र-भाषा हिन्दी के सुप्रसिद्ध संरक्षक ओरछेन्द्र श्रीमान महाराजा श्री वीरसिंह जू देव बहादुर ने विश्व-कवि "गोस्वामी तुलसीदास" नामक विशाल ग्रन्थ के निर्माण का शुभ-संकल्प और आयोजन किया है। इसमें प्रथम भूमिका-खण्ड पश्चात् संसार साहित्य के मुकुटमणि महाकाव्य रामचरित-मानस पर श्री वीरसिंहावलोकन भाष्य की रचना का निश्चय किया गया है, जो आकार-प्रकार और विषय-विवेचन आदि की दृष्टि से अभूतपूर्व ही होगा। इसे सर्वांग-सुन्दर और विश्व-साहित्य की मूल्यवती कृति बनाने में कोई प्रयत्न उठा न रखा जायगा। यह कार्य हिन्दी-साहित्य की सेवा-भाव से प्रेरित होकर किया जा रहा है, अतएव इसमें समस्त हिन्दी-प्रेमियों और विद्वान् साहित्यिकों के साथ ही भारतीय-संस्कृति और भारतीयधर्म तथा भारतीय राष्ट्र के सम्पूर्ण सज्जनों के सहयोग की पूर्ण आशा है। तुलसीदास विषयक प्रामाणिक सामग्री, चित्र तथा लेख आदि से जो इस महान् साहित्यिक यज्ञ में सहायक होंगे, उनके हम आभारी रहेंगे; और जो चाहेंगे, उनकी पत्र-पुष्प-अर्पण द्वारा सेवा की जावेगी। प्रस्तावित भूमिका-खण्ड की विषय-सूची नीचे दी जाती है। इसमें जो विद्वान् महानुभाव अपने सुझाव उपस्थित करेंगे, उनसे सधन्यवाद लाभ उठाया जायगा।

विश्व कवि तुलसीदास

प्रथम-खण्ड

भूमिका

पहला अध्याय

परिचय

तत्कालीन भारत की राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक अवस्थायें। तत्कालीन वातावरण में साहित्यिक गतिविधि।

तुलसी का जीवन काल, वंश-परिचय, शैशव और बाल अवस्थाएँ। तरुणाई और शिक्षा-दीक्षा; यौवन, विवाह, गार्हस्थ्य-जीवन, वैराग्य, रामभक्ति और साधुजीवन; वैष्णव तुलसीदास और उनका संदेश।

तुलसीदास की रचनाओं की संख्या और उनके नाम तथा उनके विषय; तुलसी साहित्य के आधार-ग्रन्थ और मूल-स्रोत; तुलसी का विश्व-प्रेमी कवि हृदय और रामभक्ति; भारतीय-राष्ट्र के प्रतिनिधि तुलसीदास।

दूसरा अध्याय

तुलसी-दर्शन

विश्व और परमात्मा; वेदोक्त धर्म। कर्मयोग प्रधान भागवत-धर्म या वैष्णव धर्म और उसकी परम्परा; महाभारतकाल से गुप्त साम्राज्य तक वैष्णव धर्म का प्रचार व प्रसार; गुप्त साम्राज्य और वैष्णव धर्म राष्ट्र-धर्म के रूप में। तुलसी के पूर्व वैष्णव आचार्य और उनकी दार्शनिक विचार धाराओं में वैष्णव धर्म का विकास; वैष्णव धर्म की व्यापकता। तुलसी के पूर्व वैष्णव धर्म की उदारता और व्यापकता; मुस्लिम शासन में उदार वैष्णव धर्म; कबीर, नानक और दादू आदि द्वारा वैष्णवों का अनुगमन। कबीर आदि के निराशावाद और वैराग्य के विपक्ष लोक-सेवा और लोक-रक्षा के सिद्धान्त में कर्मयोग की व्यवस्था करनेवाला राष्ट्रीय तेजयुक्त वैष्णव धर्म का तुलसी द्वारा प्रचार और समर्थन। विभिन्न धाराओं में प्रवाहित हिन्दू धर्म को एक महान् समुद्र में ला धार्मिक समन्वय का गीताकार के समान महत्कार्य। तुलसीदास द्वारा अंगीकृत वैष्णव धर्म और एकेश्वरवाद।

तीसरा अध्याय

राम-कथा और तुलसीदास

हिन्दू-जाति और उसमें रमनेवाले राम का नित्य संबंध; रामकथा का उद्भव; पूर्वरूप; रामकथा के विभिन्न कालों और विभिन्न व्यक्तियों के कारण परिवर्तित रूप; तुलसी के पूर्व रामकथा का व्यापक साहित्य; तुलसी द्वारा अंगीकृत रामकथा का रूप (विभिन्न रूपों की टिप्पणियों सहित)।

चौथा अध्याय

तुलसीदास की काव्य-गरिमा

काव्य-स्वरूप, विविध अंग, अन्य भेद-प्रभेद; इनके विशद उदाहरणों द्वारा तुलसी के महाकवित्व का निरूपण, गीतिकाव्य, खंडकाव्य, महाकाव्य एवं मुक्तकों के रूप में तुलसी-काव्य का परिचय; प्रकृति-वर्णन, चरित्र-चित्रण, रस-परिपाक एवं अभिव्यंजना, विश्व के अन्यान्य महाकवियों से तुलना।

पाँचवाँ अध्याय

तुलसी-साहित्य की भाषा

हिन्दी-भाषा की उत्पत्ति और उसका पूर्वरूप, विभिन्न शाखाएँ, तुलसी साहित्य के महान् ग्रन्थ रामचरितमानस की भाषा और उसका व्याकरण।

मानस की भाषा में उच्च कोटि की व्यंजनात्मक काव्य-भाषा का स्वरूप; गुणों की विपुलता। देशकालपात्रानुकूल अर्थगाम्भीर्ययुक्त भावानुगामिनी भाषा का मानस में उत्कृष्ट रूप।

तुलसी-साहित्य के अन्य प्रबन्धों की भाषा और उसका परिमार्जित काव्योचित रूप।

छठवाँ अध्याय

तुलसी साहित्य के प्रमुख टीकाकार और समालोचक (पक्ष और विपक्ष में); उनके मतों की समीक्षा और ग्रन्थ निर्माण कारण।

संयोजक :—

लोकनाथ द्विवेदी 'सिलाकारी'

"साहित्याचार्य"

टीकमगढ़ (मध्यभारत)

महत्तर तुलसी शोध ग्रन्थ की पांडुलिपि प्रधान संपादक श्री प्रभुदयाल मिश्र कार्याध्यक्ष सहित पदाधिकारियों को भेंट करते हुए

श्री लोकनाथ द्विवेदी द्वारा तत्कालीन ओरछेश श्री वीर सिंह जू देव को प्रेषित पत्र

लोकनाथ द्विवेदी "सिलहकारी"
साहित्याचार्य.

टीकमगढ़ (सी० आई०)
ता० १०.२.४५

सेवा में —

महेन्द्र श्री जू देव
ओरछेन्द्र,
फोर्ट टीकमगढ़!

श्रीमन्,

मङ्गलमय भगवान् मुरली-मनोहर श्रीमान् को सदा सर्व सुख सम्पन्न और स्वस्थ रखें!

श्रीमान् के दर्शनों की अत्यन्त तीव्र उत्कण्ठा होने से विवश होकर कुछ समय प्रदान करने की विनम्र प्रार्थना कर रहा हूँ! अनेक बार चाहने पर भी दर्शनों के सौभाग्य से वञ्चित रहना पड़ा है! प्रार्थना पत्र के उत्तर भी प्राप्त न होने से चिन्तित रहा!

वैसे तो श्रीमान् की शरण में सब भांति सुविधा और आनंद है तथा तुलसीदास-विषयक कार्य के हेतु तन मन से अध्ययन और मनन में संलग्न हूँ, पर लेखन-कार्य श्रीमान् के आदेश और आशीर्वाद की प्राप्ति के पूर्व प्रारम्भ नहीं कर सकता। अब विलम्ब होने से मुझे भी लज्जा सी लगती है। आशा है, थोड़ा समय प्रदान करने की अविलम्ब कृपा करेंगे। कुछ अनूठे और अछूते साहित्यिक निबन्ध श्रीमान् की प्रसन्नता के हेतु सुनाने की भी आकांक्षा है। विशेष विनय!

श्रीमान् का स्नेह भाजन
अकिंचन आज्ञाकारी.
लोकनाथ सिलहकारी.

काव्य

डॉ. गंगाप्रसाद बरसैया

तुमको प्रणाम्! शत शत प्रणाम।।

शत-शत प्रणाम तुमको वाणी के सदय सुभग भरते पराग।
जीवन-गीता के उद्‌बोधक, हुलसित तुलसी के महाभाग।
उद्धारक मानवता महान! तुमको प्रणाम् शत शतप्रणाम।।

मानस मानस-सर के सरसिज, अमृत-रस-दाता धेनु धार।
करुणाकर धवलित विहान, आदर्शों के मणिबंधद्वार।
तुम संत श्रेष्ठ! सृष्टा महान! तुमको प्रणाम! शत शतप्रणाम।।

हे बाल्मीकि के अनुकर्त्ता, धर्मी-धर्ता हे धीमताम्।
तुम वेद उपनिषद गीता के रसवक्ता वेत्ता महामान।
हे अद्वितीय! हे दिव्यदेव! तुमको प्रणाम! शत शत प्रणाम।।

तुम जन-गण-मन के सतपोषक, तुम धर्म-भक्ति के वेद साम।
फिर छेड़ो अपने स्वर-सायक, क्षय हो पातक पातकी-धाम
हे परमभक्त! हे ज्योतिमान! तुमको प्रणाम! शत शत प्रणाम।।

ए–7,फारचून पार्क, जी–3, गुलमोहर भोपाल–462039
मो. 9425376415

आलेख

रघुनंदन शर्मा

जननी-जन्मभूमि स्वर्ग से बढ़कर

आकाश में उड़ते हुए विमान में ही अपनी तर्जनी से संकेत करते प्रभु श्रीराम सभी वानरों को, योद्धाओं को कह रहे हैं कि देखो। वह रही अयोध्या नगरी जो अत्यन्त मनोहर है। हे अंगद, हे सुग्रीव!, हे विभीषण यह पवित्र नगरी है जो अत्यन्त सुन्दर देश में स्थित है। वे अयोध्या की स्वर्ग का जैसा वर्णन करते हैं वह गोस्वामीजी अपने शब्दों में लिखते हैं–

जद्यपि सब वैकुण्ठ बखाना। बेद पुरान बिदित जगु जाना।।
अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ। यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ।।

उत्तरकाण्ड–3ग–2

प्रभु सबको सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि यद्यपि सब लोग स्वर्ग की प्रशंसा करते हैं। वेद, पुराण सहित सारा संसार भी यही जानता है कि बैकुण्ठ अत्यन्त सुखदायक है, सुंदर है किंतु यह बात कोई नहीं जानता कि अयोध्या के आगे वह भी इतना प्यारा नहीं है जितनी प्यारी अयोध्या नगरी है। गोस्वामीजी आगे लिखते हैं –

जन्म भूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिसि बह सरजू पावनि ।।
जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा। मम समीप नर पावहिं बासा।।

उत्तराकाण्ड–3–ग–3

यह अत्यन्त शोभित नगरी मेरी जन्म भूमि है, जिसके उत्तर दिशा में सरयू नदी बहती है। इस पवित्र नदी में स्नान करने वाले मेरे निकट वास करने योग्य हो जाते हैं, आशय है कि वे मेरे धाम को प्राप्त कर लेते हैं अर्थात् मुझे प्राप्त हो जाते है। अपनी जन्म भूमि के प्रति गौरवान्वित होना यह मातृभूमि के प्रति प्रबल निष्ठा और भक्ति का भाव है। यही वह देशभक्ति है जिसकी श्रीराम प्रेरणा देते हैं। वे यहाँ हमारे अन्तकरण में जन्मभूमि के प्रति भक्ति भावना जगाते हैं।

श्रीराम इसके पूर्व भी लंका से प्रस्थान करते समय अपने छोटे भाई लक्ष्मण को

कहते हैं। इसे वाल्मीकि जी ने इस तरह से उल्लेखित किया है–

अपि स्वर्णमयि लंका न मे लक्ष्मण रोचते।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।।

लक्ष्मण ने लंका विजय के बाद कहा कि लंका नगरी कितनी सुन्दर है, सोने से बने सुन्दर भवन है। हम अयोध्या की धूल–मिटटी, कीचड़ में रहने के बजाय इसे ही राजधानी बना लें। माताओं और गुरु तथा अन्य परिजनों को यहीं बुला लें। इस पर लक्ष्मण को श्रीराम ज्ञान देते हैं। वे कहते हैं कि हे लक्ष्मण! यद्यपि यह लंका सोने से भरपूर है किन्तु इस स्वर्ण से भरी लंका में मेरी जन्मदात्री माता और जहाँ मेरा जन्म हुआ है, उस मातृभूमि की तुलना में कहाँ ठहरती है। वह तो जन्मभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है। मातृभूमि के प्रति श्री रामजी की ऐसी गहन निष्ठा और भक्ति भावना भारत की सन्तानों के लिये प्रेरणादायी है। आज देशभक्ति की भावना को दकियानूसी बनाने के प्रयास हो रहे हैं। मातृभूमि की सेवा और उसके प्रति निष्ठा को प्रश्नांकित करने की परम्परा पैदा की जा रही है, उसे संकीर्णता के विचार बनाने के कुत्सित प्रयास हो रहे हैं। ऐसे में प्रभु श्रीराम का आदर्श आचरण एवं देश एवं मातृभूमि के प्रति समर्पण की पराकाष्ठा से युक्त विचारों की प्रेरणा हमारे सामने है। संभवतः श्रीराम, ऋषि वाल्मीकि तथा गोस्वामीजी को मन में यह संभावना लगी होगी कि कलियुग में वामपंथी विचारधारा के लोग मातृभूमि के प्रति भक्तिभाव को समाप्त करने का वैचारिक देशघाती वितण्डावाद प्रचारित करने का प्रयास करेगें। हजारों वर्ष पूर्व जलाई देशभक्ति की ज्योति को बुझाने का यत्न किया जायेगा। यह आभास संभवतः इन महापुरुषों को था, इसीलिये अपने आचार आचार विचार के लिए वो हमें शिक्षित कर गये।

कार्याध्यक्ष, तुलसी मानस प्रतिष्ठान, भोपाल

श्रद्धांजलि

श्री सुरेन्द्र कुलश्रेष्ठ

तुलसी मानस प्रतिष्ठान के संस्थापक सदस्य और पदाधिकारियों में प्रमुख तथा वर्तमान में प्रबंधकारिणी के सदस्य श्री सुरेन्द्र कुलश्रेष्ठ का दिनांक 28 नवम्बर, 2025 को स्वर्गवास हो गया है।

वे तुलसी मानस प्रतिष्ठान की लोकव्याप्ति, विशेषकर अनुसूचित जनजाति क्षेत्र में राम और रामायण की शोध में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका थी जो भारत सरकार और प्रदेश सरकार की रीति एवं नीति के अनुरूप रही है। वे प्रबंध समिति की बैठकों में सक्रिय रूप से अपनी भागीदारी देते रहे तथा उनके परामर्श रचनात्मक और विचारणीय हुआ करते थे। प्रतिष्ठान उन्हें भगवान राम से अपनी सन्निधि में लेने की प्रार्थना करता है।

रघुनंदन शर्मा,
कार्याध्यक्ष एवं तुलसी मानस प्रतिष्ठान परिवार

आलेख

देवेन्द्र कुमार रावत

तुलसी की दृष्टि में काव्य

महाकवि तुलसीदास श्रीरामचरितमानस के बालकाण्ड में कविता की महिमा के अन्तर्गत कहते है कि कविता नाना प्रकार के अलंकार अर्थ और अलंकार, अनेकों प्रकार की छन्द रचना भावों से युक्त होती है। कविता के गुणों के अलावा दोषों के बारे में कहते है कि –

भाव भेद, रस भेद अपारा, कवित दोष गुन विविध प्रकारा।

अर्थात् रसों के अलावा कविता में भांति–भांति के गुण–दोष भी होते है। तो कविता के गुण दोष क्या है। भाषा की दृष्टि से विचार करें अर्थ अलंकार और छन्द रचना की दृष्टि से कविता का व्याकरण सम्मत न होना। परन्तु कवि के काव्य में मानवता, काव्यात्मक एकता, सामजस्य और समन्वय की भावना का अभाव हो तो ये सबसे बड़े दोष कहे जाते है। इससे तो वर्ग भेद उत्पन्न होता है। जबकि कविता तो **जग मंगल करनि** होनी चाहिए। तुलसी तो कहते है कि इसमें भले ही **भनिति मोर सब गुण रहित विश्व विदित गुण एक** अर्थात् भले ही मेरी रचना सब गुणों से रहित है, पर इसमें जग प्रसिद्ध एक गुण है। उसे विचार कर अच्छी बुद्धि वाले पुरूष जिनमें निर्मल ज्ञान है इसे सुनेंगे समझेंगे। मानस रचनाकार यहां भाषागत गुणों की अपेक्षा जिनके चरित्र सुनकर गयी वस्तु फिर से प्राप्त हो सकती है, जो दीनबंधु है सरल स्वभाव है। उनके चरित्र का वर्णन कर मानस रचनाकार का काव्य, विवेक, कविधर्म की श्रेष्ठता सिद्ध करता है। इसे श्रीराम कथा के ही संदर्भ में देखे तो उनके समकालीन और उनके बाद के कवियों की कृतियां साहित्य में तो स्थान रखती है। लेकिन जन मानस में हर घर–घर में तुलसीकृत श्रीरामचरितमानस का पाया जाना सिद्ध करता है कि उन्होंने श्रीराम जैसे गूढ़, अनंत ईश्वर के चरित्र को भी जनसामान्य हेतु रच कर संसार का सबसे बड़ा कल्याण किया है। वे स्वयं लिखते हैं

सरल कवित कीरति विमल सोई आदरहिं सुजान।
सहज बयर विसराई रिपु जो सुनि करहि बखान।।

अर्थात् चतुर पुरुष उसी कविता का आदर करते हैं, जो सरल हो, जिसमें चरित्र का वर्णन हो तथा सुनकर शत्रु की स्वाभाविक बैर को भूलकर सराहना करने लगे। इसलिए उन्होंने

राम जन्म की अपेक्षा रामजन्म के हेतु अनेका, कहकर स्पष्ट किया है कि मैं रामजन्म के उन हेतुओं की व्याख्या करना चाहूंगा जिनके कारण रामजन्म हुआ। इस दृष्टि से वे अपने आराध्य श्रीराम के चरित्र को संसार के समक्ष रखते हैं, वे कहते हैं, कि मेरी यह कविता पर मुझे विश्वास है कि यह संसार में आदर का पात्र होगी। मेरा श्रम व्यर्थ नहीं जायेगा। इसी आधार पर वे कवि की कविता को इस कसौटी पर कसते हुए कहते हैं जो प्रबंध बुध नहि आदरहीं, सो श्रम बादि बाल कवि करहीं अर्थात् बुद्धिमान लोग जिस कविता का आदर नहीं करते है ये कवि मूर्ख ही है तथा अपनी काव्य रचना में समय गंवाते हैं।

इसलिए उन्होंने संकेत दिया है कि वे अपनी कविताओं में 'हरि चरित' अर्थात् पुरुषों में उत्तम चरित्र में आये सद्गुणों को केन्द्र में रखकर रचना करें वे लिखते हैं–

जे प्राकृत कवि परम सयाने।
भाषा जिन्ह हरि चरित बखाने।।
भये जे अहहि जो होइहहि आगे।
प्रनवउ सबहि कपट छल त्यागे।।

अर्थात वे बड़े बुद्धिमान प्राकृत कवि है। जिन्होंने भाषा में हरि चरित्रों का वर्णन किया है. जो ऐसे कवि पहले हो चुके है. जो इस वर्तमान समय में है और आगे जो होगें उन सबको मैं सारा कपट त्याग कर प्रणाम करता हूँ।

यहां मानस रचनाकार का आशय है कि कवि की दृष्टि और सृष्टि दोनों में नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा होनी ही चाहिए। अन्यथा विकार तो इतने प्रबल होते है कि सौन्दर्य वर्णन करते समय यदि कवि स्वयं देह तक ही सीमित रहा तो काव्य की आत्मा मरे बिना नहीं रहेगी। इसलिए तुलसी के सौन्दर्य बोध में निर्मलता दिखाई देती है। वे सीता स्वयंवर में सीताजी के सौन्दर्य का जब वर्णन करते हैं तो उनकी दृष्टि में जहाँ श्रीराम उनके प्रति आकर्षित हैं तो यह आभास पाठक को करा देते है कि कवि का अपना भाव क्या है। यहाँ स्वयं के लिये उनके प्रति पूज्य भाव का सबसे बड़ा उदाहरण है –

सोह नवल तनु सुन्दर सारी।
जगत जननि अतुलित छवि भारी।।

अर्थात् सीताजी के नवल शरीर पर सुन्दर साड़ी सुशोभित है। जगजननी की महान छवि अतुलनीय है। सीताजी के साथ जो सुन्दर सखिया उन्हें स्वंयवर की रंगभूमि की ओर लेकर आ रही हैं उनके संबंध में भी मानस रचनाकार ने बड़ी सावधानी रखते हुए लिखा है

चली संग ले सखी सयानी।
गावत गीत मनोहर बानी।।

अर्थात् सयानी सखियों सीताजी को साथ लेकर मनोहर बानी से गीत गाती हुई चली। यहीं महाकवि ने सखियों को सयानी शब्द से सम्बोधित किया है। युवावस्था के साथ सयानापन अर्थात समझदारी आ जाने की स्थिति को सयानी कहा जाता है। इसलिए तुलसी की रामचरित मानस में घर, परिवार, समाज में विवाह सन्तानोत्पत्ति जैसे विषयों में भी संयम की रेखा खींचकर इसे सृष्टि का आधार कहा है वहीं विषयों के विष से भी सावधान किया है। अतः कहा जा सकता है कि काव्य में सौन्दर्य बोध तो हो पर इससे काम का विकृत रूप न जगे। इसलिए वे कविता, कीर्ति और सम्पत्ति के बारे में कहते है–

कीरति भनति, भूति, भलि सोई।
सुरसरि सम सब कह हित होई।।

अर्थात् कीर्ति, कविता और सम्पत्ति वहीं उत्तम है जो गंगाजी की तरह सबका हित करने वाली हो।

संपादक, तुलसी मानस भारती मो. 9893119507

शोध आलेख

विष्णुदास की रामायणी कथा : पृष्ठभूमि

डॉ. हरप्रसाद शर्मा

माघ सुदी पूर्णिमा सं. 1499 रेवती नक्षत्र में लिखित विष्णुदास कृत रामायण कथा कहती है :

चौदह सन निन्यानव लियो। पूनै पतित रमायन कियौ।।
गुरुवासर रेवती नछत। माघमा कवि कियो कविन।।

इसकी हस्तलिखित प्रति सागर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में सुरक्षित है। उसी के आधार पर विभाग द्वारा इसका प्रकाशन भी कर दिया गया है।

राम को विष्णु का पूर्ण अवतार मानकर इस कृति का निर्माण हुआ है। मंगलाचरण में ही कवि कहता है कि :–

स्वामी मुक्तिमुक्तिदातार। प्रनऊँ रामदेव अवतार।।
सहज नाम उत्तिम गोविंद। पाप पहारनि करतु निकंद।।
रामचन्द्र प्रभु त्रिभुवन धनी। तासु कथा रिषि नारद भनी।।

इसी प्रकार बलि रावण को समझाते हुए कहते हैं

यह सुपुरुष मोहिं राखहि बारू। सो बंधन मुकुलवनिहारु।
संख चक्र गद सारंग पानी। वह नारैन वहै हरि जानी।।
वह वाबन प्रभु तारन तरन। वह नौषंड सिरज संहरन।
एही तीनलोक बस किए। वैही पुरिष बाँधि मोहिं लए।।
दैयत कुल कीन्हों संहारु। वह सुपुरुष मोहिं राखनिहारु।।

भगवती सीता को भी अवतार (देवी का) बताया गया है। इसलिए उनके श्रृंगार वर्णन से भी विरज रहने की बात कही गई है।

उर कंचुकी सिया तन हई। जनु यह देवि देव निरमई।
अंग भाउ नहिं बरनौ ताही। विश्नुदास मन संका आही।
कवि जन हँसे पाप बहु होई। ताते वरननु करै न कोई।।

अन्य कथा प्रसंग भी प्रायः रामचरितमानस में वर्णित कथा प्रसंगों से भाव साम्य रखते हैं। जैसे–जब श्रीभरत श्रीराम को मनाने के लिये चित्रकूट (वन) जाते हैं तब श्रीभरत का आगमन जानकर उनके प्रति श्री लक्ष्मण जी की प्रतिक्रिया है कि :–

सजि सैन जोधा अतिबरी।
आके भरथ पाप मतिधरी।।

उस पर श्रीराम की प्रतिक्रिया है :–

लछिमन बचन सुनत हँसि राम।
यह न होउ रघुकुल को काम।।
मो जीवन करि सकत न राजू।
आयो मोहिं लिवावन काजू।।

रामचरितमानस में भी इस संदर्भ में श्रीलक्ष्मण जी की प्रतिक्रिया है कि :–

कुटिल कुबंधु कुअवसरु ताकी।
जानि राम बनबास एकाकी।
करि कुमंत्रु मन साजि समाजू।
आये करै अकंटक राजू।।
कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई।
आए दल बटोरि दोउ भाई।
जौं जिय होति न कपट कुचाली।
केहिं सोहात रथ बाजि गजाली।

इस पर श्रीराम की प्रतिक्रिया हैं कि-

कही तात तुम्ह नीति सुहाई।
सबते कठिन राजमदु भाई।
भरतहिं होउ न राजमदु
विधि हरिहर पद पाई।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि,
छीर सिंधु विनसाइ।।
लखन तुम्हार सपथ पितु आना।
सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना।।
कहत भरत गुन सीलु सुभाऊ।
प्रेम पयोधि मगन रघुराऊ।।

इसीप्रकार शूपर्णखा प्रसंग में कवि कहता है कि :

श्री रघुनाथ सुनावैं ताहिं।
लछिमन क्वारौ व्याहौ ताहि।।

श्रीरामचरितमानस में भी इस प्रसंग में कहा गया है कि :–

सीतहि चितइ कही प्रभु बाता।
अहुइ कुआर मोर लघु भ्राता।।

विष्णुदास की रामायण कथा में वर्णित तत्व निरूपण के निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि आदि पुरुष नारायण की सृष्टि प्रलय के कारण हैं। वे ही विविध अवतार लेते हैं, राक्षसों का संहार करते हैं,भक्ति–मुक्ति सब कुछ देते हैं तथा भक्तों की सब प्रकार से रक्षा करते हैं। वही आदि नारायण राम रूप में अवतरित हुए है।

श्री विष्णुदास जी ने यह कथा सं. 1499 में लिखी थी जबकि गोस्वामी तुलसीदासजी ने संवत 1631 में अर्थात् 132 वर्ष बाद रामचरितमान की रचना की थी। जैसा कि कतिपय प्रसंगों का उल्लेख कर यह देखने का प्रयास किया गया है कि दोनों में भाव साम्य है। रामकथा का जो स्वरूप रामचरितमानस के रूप में जन–समाज में प्रचलित है,वही स्वरूप विष्णुदासजी एवं गोस्वामी तुलसीदासजी ने जनसमाज में तत्समय प्रचलित रामकथा के आधार पर ही अपने ग्रंथों का निर्माण किया है। अतः रामकथा के इस स्वरूप की पृष्ठभूमि विचारणीय है।

यह पृष्ठभूमि दो रूपों में विचारणीय है। (1) रामकथा एवं रामभक्ति का क्रमिक विकास एवं राम की ब्रह्मत्व परिणति और (2) युगीन संदर्भ

में भक्ति विशेषकर सगुण भक्ति–रामभक्ति की आवश्यकता एवं महत्ता।

भारतीय संस्कृति के समष्टि रुप का दर्शन यदि हमें कहीं होता है तो मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के ही चरित में। इनका चरित्र युगों से जातीय जीवन का प्रधान प्रेरणाकेन्द्र रहा है और यह उनकी लोकप्रियता का ही परिणाम है कि भारत की विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं तथा बृहत्तर भारत एवं पडोसी देशों की जनभाषाओं में भी, रामकथा को लेकर विशाल साहित्य का निर्माण हो सकता है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने तो **'रामायन सत कोटि अपारा'** लिखकर उसके रचियताओं की संख्या ही अपरिमित मान ली है। अस्तुकाल प्रवाह के साथ कवियों की व्यक्तिगत रूचि एवं सांस्कृतिक आदर्शों के अनुसार रामकथा भी उत्तरोत्तर नये साँचों में ढलती और परिष्कृत होती रही है। देखते ही देखते यह स्थिति आ गई जब दाशरथि राम की लोकयात्रा ने अवतारी राम की लीला का रूप धारण कर लिया। हिन्दुओं ने उन्हें विष्णु के दशावतारों में प्रतिष्ठित स्थान दिया तो बौद्धों ने बोधिसत्व और जैनों ने त्रिपिटक महापुरुषों में आठवें बलदेव के रूप में उनकी पूजा की। यही नहीं सगुण एवं निर्गुण दोनों पंथों के प्रवर्तकों ने उनकी महिमा के गीत गाये। कबीर ने यदि निर्गुण निरंजन के राम नाम के भक्तों का सर्वस्व माना तो तुलसी के मानस में रामनाम के साथ ही उनके रूप, लीला और धाम की भी आरती उतारी गई। राम तत्त्व के ये दोनों पद हिन्दी साहित्य में दो समृद्ध किन्तु परस्पर विरोधी परंपराओं के प्रतीक बने। एक ने यदि आध्यात्मिक निःश्रेय की प्राप्ति की भावना जगाई तो दूसरे ने लोक धर्म की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया। उभय स्वरूप में राम की यह सर्वमान्यता ही उनके चरित में लोकनियंता और लोक नायकत्व के उन अलौकिक गुणों की कल्पना का कारण बनी जिसका विकास विष्णु के अवतार माने जाने वाले किसी अन्य महापुरुष के चरित्र में उस सीमा तक नहीं पाया जाता। इसलिए राम के उस स्वरूप प्राप्ति के क्रमिक विकास के समझ लेना आवश्यक है।

राम साहित्य के सम्यक अध्ययन से उनके स्वरूप विकास की तीन अवस्थाएँ स्पष्टतया लक्षित होती हैं– ऐतिहासिक, साहित्यिक और साधना संप्रदाय मूलक। यह भी ज्ञात होता है कि रामचरित को प्रारंभ से ही अद्वितीय लोकप्रियता प्राप्त हुई। जन–मानस पर श्रीराम के आदर्श चरित्र का इतना व्यापक प्रभाव पड़ा कि ऐश्वर्यशाली नरेश से वे मर्यादा पुरुषोत्तम माने जाने लगे। ऐतिहासिक रूप में श्रीराम इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न, आदर्श गुणों से विभूषित लोक विश्रुत राजा थे जो अपने को स्वयं मानव कहते थे– **''आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम्''** साहित्यिक रूप में श्रीराम के चरित्र का सर्वप्रथम वर्णन आदिकाव्य–बाल्मीकि रामायण– में किया गया है। आदिकाव्य के आरंभ में (1.1.1–8) काव्य रचना की मूल प्रेरणा के संबंध में चर्चा है कि तपस्या और स्वाध्याय में विरत, शब्द ब्रह्म के ज्ञानियों में श्रेष्ठ और मुनिपुंगव नारद जी से बाल्मीकि ने पूछा कि इस समय संसार में गुणवान, पराक्रमी, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवादी और अपने व्रत में दृढ़ पुरुष कौन है? सदाचार से युक्त, सब प्राणियों के कल्याण में तत्पर, विद्वान, सामर्थ्यशाली और देखने में सबसे सुन्दर कौन है? मन को वश में रखने वाला क्रोध रहित, कांतिमान और डाह से हीन पुरुष कौन है? वह कौन पुरुष है

जिसके कुपित हो जाने पर देवता भयभीत हो जाते हैं। ऐसे गुणों से युक्त पुरुष कौन है– चारित्रेण को युक्त, यह मैं जानना चाहता हूँ इसके लिए मेरे मन में बड़ा कौतूहल है। त्रिलोकी का वृत्तांत जाननेवाले नारदजी ने कहा कि आपने जो गुण गिनाये है उनमें से बहुत दुर्लभ हैं, फिर भी उनसे युक्त मनुष्य बताता हूँ। वे इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुए हैं और राम नाम से प्रसिद्ध हैं। :–

बह वो दुर्लभाश्चैव ये त्वया कीर्तिता गुणाः।
मुने वक्ष्याम्महं बुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयतां नरः।।
इक्ष्वाकुवंश प्रभवो रामो नाम जनै श्रुत।
नियतात्मा महावीर्येद्युतिमान् धृतिमान वशी।।

देवर्षि नारद आगे कुछ और भी राम का परित्याग देते है :–

सत्य सर्वगुणोपितः कौसल्यानंद वर्धनः।।
समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानियमः।
विष्णुनां सदृशो वीर्ये सोमवत्मिम दर्शन।
कालाग्नि सदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवी समः।।

अर्थात् श्रीराम सर्वगुणोवेत है। विष्णु के समान पराक्रमी है और जिनका क्रोध कालाग्नि के समान है, वे क्षमा करने की पृथ्वी के समान हैं।

फिर ब्रह्माजी ने बाल्मीकि जी से श्रीराम के उस वृत्त का वर्णन करने के लिए कहा जैसा कि उन्होंने नारदजी से सुना था।

वृत्त कथय वीरस्य यथा ते नारदच्छ्रुतम्।।

और वाल्मीकि जी ने श्रीराम के चरित को लेकर आदिकाव्य की रचना की। यह आदिकाव्य रामकथा संबंधी मूल ग्रंथ है। रामायण के रूप में संग्रहित होने के पूर्व रामकथा कब से और किस रूप में चली आ रही है। अतः वाल्मीकि रचित रामायण ही प्रथम रामकथा काव्य है। इसे समस्त परवर्ती राम साहित्य का आधार माना गया है। वाल्मीकि से जो रामकाव्य परंपर निस्सृत हुई उसका परवर्ती कवियों ने अनुसरण किया और चरित्र गाकर अपनी वाणी को धन्य किया।

आदिकाव्य की रचना के साथ जो रामकाव्य परंपरा आरंभ हुई उसका पल्लवन संस्कृत,धार्मिक साहित्य, ललित साहित्य तथा अवांतरकालीन साहित्य में हुआ। संस्कृत संहिता के स्वर्णमृग में रामकथा साहित्य विशेष रूप से समृद्ध हुआ। महाकाव्य, नाटक तथा साम्प्रदायिक रामायणों की रचना की गई। यह परंपरा आधुनिक काल तक चली आई है।

साम्प्रदायिक रूप से योगवाशिष्ट रामायण, अध्यात्म रामायण, आनंदरामायण एवं अद्भुत रामायण महत्वपूर्ण हैं क्योंकि अध्यात्म रामायण में रामकथा और रामभक्ति दर्शन का जो स्वरूप वर्णित है, उसी के आधार बनाकर भक्तिकाल के कवियों ने अपनी रचना की है।

यद्यपि भक्ति के बीज वेदों में मिलते हैं। किन्तु सगुण भक्ति का विकास अवतार भावना से संवहित है। ब्राह्मण धर्म और भागवत धर्म के समन्वय से अवतारवाद की भावना के केन्द्र बन गये विष्णु और उनका स्थान सर्वोपरि माना गया। अन्य अवतार उनसे अभिन्न मान लिए गये । इनमें दाशरथि राम सबसे महत्वपूर्ण हैं। राम अवतार की भावना कब उत्पन्न हुई, इस संबंध में काल निर्धारण करना कठिन है। यह समय प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व के पश्चात् नहीं हो सकता। वाल्मीकि रामायण, महाभारत तथा भागवत में एतद्विषपक जो सामग्री उपलब्ध होती है, उसमें रामभक्ति के मूल सूत्रों का अस्तित्व पाया जाता है। भक्ति आंदोलन में बीज रूप से स्वीकृत ईश्वर

का यह कथन :–

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम।।

बा.रा.6.12.22

विभीषण शरणागति के प्रसंग में वाल्मीकि रामायण में ही आया है। श्रीराम ने अपने कुलदेव श्रीरंगजी की मूर्ति विभीषण को दी थी जिसे इन्होंने कावेरी की दो धाराओं के बीच एक द्वीप में स्थापित कर दिया। वैष्णव परंपरा में श्रीरंगजी श्रीराम से अभिन्न माने जाते हैं। दक्षिण भारत में वैष्णव भक्ति का श्रीरंगधाम शताब्दियों से केन्द्र रहा है।

वाल्मीकि रामायण के पश्चात् महाभारत में रामावतार का वर्णन कई स्थलों पर आया हैः–

अथ दाशरथिर्वीरो रामो नाम महाबलः।
विष्णु र्मानुसरुपेणा चचार वसुधाम्भिमाम।।

महा.भा,आ.प.3 147.21

प्राचीन पुराण हरिवंश, वायु, मत्स्य, ब्रह्मांड, विष्णु तथा भागवत पुराणों में अवतारों की जहां चर्चा आई है, वहां रामावतार का भी उल्लेख हुआ है। पुराणों के अतिरिक्त प्राचीन काव्यों में रामावतार का वर्णन हुआ है। भासकृत अभिषेक नाटक में राम को विष्णु और सीता को लक्ष्मी का अवतार कहा गया है। कालिदास में रघुवंश में राम का वर्णन विष्णु तथा परमब्रह्म के रूप में किया है। कालिदास के समय में रामभक्ति का प्रचार हो चुका था और राम से संबंधित स्थान तीर्थ माने जाते थे।

ईसा की प्रथम सहस्त्राब्दी के उत्तरार्ध में दक्षिण में वैष्णव संतो तथा वैष्णव आचार्यों में भक्ति का प्रचार किया। इसी के साथ रामभक्ति के विकास का सुश्रृंखला इतिहास सर्वप्रथम दक्षिण में ही मिलता है। वैष्णव संतों को आलवार भी कहते हैं। इनकी वाणी को वेदांत से सम्बन्धित किया गया। वैष्णव आचार्यों ने तथा उस भक्तिधारा को उत्तर भारत में प्रवाहित किया। राघवानंद एवं रामानंद ने। भक्ति आन्दोलन में इन सभी का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है। इसीलिए यहां तक कहा गया है कि–

भक्ति द्राविड ऊपजी, लाये रामानंद।
प्रगट किया कबीर ने, सप्तदीप नवखंड।।

इस संबंध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का यह कथन स्मरणीय है कि 'समस्त भारतीय अंत दीप एक सिरे से दूसरे सिरे तक भक्ति विशेष वैष्णव भक्ति का शक्तिशाली तरंग से आक्रांत हो उठा। इस बात का महत्व तब और अधिक बढ़ जाता है जब हम देखते है कि इस युग में भारतवर्ष विदेशीधर्म और विजातीय संस्कृति का करूणान्तक शिकार बना हुआ था। (सूरसाहित्य पृ.63)

आचार्य शुक्ल ने भक्ति के तीन स्त्रोत माने हैंः–

(1) हिन्दू जीवन में पराजय के कारण उदासी आई और ईश्वर की ओर उन्मुख हुआ।
(2) ब्रह्मसूत्रों, उपनिषदो एवं गीता पर भाष्यों की जो परंपरा सिद्वत्मंडली में चल रही थी उसमें भक्ति का मूल है।
(3) दक्षिण से बहता हुआ भक्ति का होना।

जिस समय निगमागमानुमोदिन वैष्णव भक्ति का यह सोना दक्षिण के उत्तर भारत में आया। उस समय उत्तर भारत की विकट स्थिति थी। वल्लभाचार्य के 'कृष्णाश्रय' काव्य द्वारा तत्कालीन स्थिति का परिचय हमें भलीभांति मिलता है–

म्लेच्छाक्रान्तेषु देशेसु पापैक निलयेषु च।
सत्पीडव्यग्र लोकेसु कृष्ण एव गतिर्मम।।

गंगादितीर्थवर्येषु दुष्टैरेवावृतेष्हि।
तिरोजिताधदेवेषु कृष्ण एव गतिर्भम।।
नानावाद वितष्टेषु सर्वकर्म व्रतादिषु।
चाषंडैक प्रमुत्नेषु कृष्ण एव गतिर्भम।।

ऐसे ही राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक उथल–पुथल के युग में ज्ञान तथा धर्मों की नया मोहक परिस्थिति में वैष्णव भक्ति का सोना दक्षिण से बहता हुआ उत्तर में आया। इसे लाने वाले है स्वामी रामानंद। स्वामी रामानंद रामोपासना में युग प्रवर्तक आचार्य है। उसे एक संगठित तथा स्वतंत्रता संप्रदाय का रूप देना इन्हीं आचार्य का काम था। इनके पूर्व श्रीसंप्रदाय में राम की प्रतिष्ठा होते हुए भी प्रधानता लक्ष्मीनारायण को ही दी जाती थी। श्री संप्रदाय के भीतर रामभक्तों का वर्ग अपने सहधर्मी अन्य वैष्णवों की अपेक्षा आचार–विचार में अधिक उदारता का समर्थक था। इसलिए इन्होंने पृथक पद्वति ही अपनाई। नारायण ग्रंथ के सम्मान में षडक्षर राममंत्र, दीक्षामंत्र बना, आंतरिक शुद्धता पर जोर तथा जाति पांति का भेदभाव मिटाकर समता का समर्थन किया, प्रेमाभक्ति को उच्च बनाया, जनभाषा की प्रधानता उन्होंने जनभाषा हिन्दी में रचना की और राम के दोनों रूपों सगुण एवं निर्गुण का मान किया।

1.स्यामली सूरत मधुर मूरति श्रीराम पूरन ब्रह्म है : कह कर दाशरथि राम का गुणगान किया तथा

2.'आन देव की करै न सेवा, पूजै एक निरंजन देवा' कहकर निर्गुण ब्रह्मा का बखान किया।

इसीलिए कबीर तथा तुलसी की निर्गुण–सगुण भक्ति धाराएँ जिनके उपास्य राम थे, रामानंद से ही उद्‌गमित होती है तथा राम जन–जन में प्रतिष्ठित होते है।

रामानंद जी का निर्गुण संबंधी मत, नाथ पंथ तथा अद्वैत वेदांत से प्रभावित होकर निर्गुण पंथ के रूप में चला जो निवृत्तिवादी था। निर्गुण का भक्तिधारा का दूसरा रूप सूफी कवियों ने प्रस्तुत किया। इनके द्वारा प्रस्तुत भक्तिपथ पर विचार करते हुए आचार्य रामचंद्रजी शुक्ल लिखते हैं कि ''उस समय यह कहना कि ईश्वर सबसे दूर है, निर्गुण है, निरंजन है, साधारण जनता को और भी नैराश्य के गड्ढे में ढकेलता। ईश्वर बिना पैर के चल सकता है बिना हाथ के मार सकता है, और सहारा दे सकता है, इतना और जोड़ने से भी मनुष्य की वासना को पूरा आधार नहीं मिल सकता। जब भगवान् मनुष्य के पैरों से दीन दुखियों की पुकार पर दौड़कर आते दिखाई दे और पीड़ितों को सहायता करता दिखाई दे, उनकी आंखे मनुष्य की आंखें होकर आँसू गिराती दिखाई दें तभी मनुष्य के भावों की पूर्ण तृप्ति हो सकती है और लोकधर्म का स्वरूप प्रत्यक्ष हो सकता है। इस भावना का हिन्दू ह्रदय से बहिष्कार नहीं हो सकता (गोस्वामी तुलसीदास. पृ.3) इसीलिए हिन्दू जनता भगवान की भव्य झांकी प्रस्तुत करने वाले धर्म के लिए लालायित थी। वह उस आदर्श के लिए प्यासी थी जिसमें भगवान के शील तथा शक्ति का समन्वय सौंदर्य के साथ संपन्न होता है। वह घट के भीतर ज्योति का प्रकाश दिखलाने वाले धर्म की भोग गाथा सुनने के लिए न तो उत्सुक थी और न ज्ञानमार्ग के द्वारा किसी निर्गुण और अव्यक्त के रूपदर्शन के लिये लालायित। वह लोक के भीतर विस्तार पाने वाले मंगलमय भगवान की लोक कल्याणमयी लीलाओं एवं गाथाओं का अवलोकन एवं श्रवण करना चाहती थी। सगुण भक्तों ने इस रूप को

प्रत्यक्ष किया। इससे हिन्दुओं को प्रतिरोध की एक ऐसी निष्क्रिय शक्ति प्राप्त हुई, जिसने उन्हें भय की उपेक्षा, अत्याचारों का सहन और प्राणों तक कष्टों को सहते हुए भी जीवन धारण करना सिखाया। इस प्रकार जो जाति नैराश्य के गर्त में पड़कर जीवन की आशा छोड़ चुकी थी, उसने वह सत्व संचय कर लिया, जिसने क्षीण होने का नाम न लिया, भगवान के दिव्य सौंदर्य से उदय होने वाला आनंदातिरेक निष्क्रिय शक्ति कर रूप धारण करते ही रह गया। उसने दैत्य विनासिनी क्रियमाण शक्ति का रूप भी देखा। अवतारवादी सगुण भक्ति धारा में विष्णु के दो प्रमुख अवतारों राम और कृष्ण, उनकी भक्ति और भक्तों का तथा उनके नाम–रूप–लीला धाम का मुक्तकंठ से गौरव गान किया गया। कृष्ण भक्त कवियों की दृष्टि भगवान् की सौंदर्य विभूति और लोकरंजन पर ही केन्द्रित रही, उनके लोक–मंगलकारी रूप की, जिसका प्रतिपाद गीता एवं भागवत में था, प्रायः उपेक्षा की गई। राधाकृष्णन की युगल उपासना, रासलीला, नित्य विहार आदि पर बल दिया गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि निर्गुणी निवृत्ति मार्ग की ओर अधिक झुक गये तथा लोक पर हमला किया, दूसरी प्रवृत्ति के कारण लोकपथ को छोड़ लीला के ऐकांतिक क्षेत्र में चला गया। अनेक सामाजिक उथल–पुथल के कारण तत्कालीन समाज की जो स्थिति हो गई थी उसमें आदर्श प्रधान और देवी महिमामय चमत्कारिक राम के चरित्र ने टूटते हुए मनुष्य में जिजीविषा का बोध कराया। राम की लोकप्रिय कथा जनसमाज में किसी न किसी रूप में प्रचलित थी। रामभक्तों ने अपनी मान्यताओं को तत्कालीन सामाजिक एवं धार्मिक आंकाक्षाओं के अनुसार नवीन रूप दिया।

रामभक्ति के संदर्भ में यह विशेष रूप से ध्यानव्य है कि श्रीराम प्रारंभ से ही समाज में दुष्टदलन के लिये शस्त्रधारी के रूप में मान्य किये गये है। महर्षि वाल्मीकि जी ने भी जब नारदजी से चरित्रवान व्यक्ति के बारे में पूछा तो उसमें 'पराक्रमी' सामर्थ्यशाली' तथा 'जिसके कुपित हो जाने पर देवता भी भयभीत हो जाते हैं'' ऐसे गुणों की बात कहीं थी और देवर्षि नारद ने उन गुणों से युक्त व्यक्ति के रूप में श्रीराम का नाम बताया था। भगवान श्रीकृष्ण भी गीता में ''मैं शस्त्रधारियों में राम हूँ'' **रामःशस्त्रमृतामहम्** की बात कहते है। वे कोदंडपाणिराम '**राजिव नयन धरे धनु सायक**' भगत विपति भंजन सुखदायक'' के रूप में उपास्य है, ''**निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीनु**'' विरद वाला राम का स्वरूप ही उपास्य है। उस समय उसकी ही अपेक्षा थी क्योंकि उस समय न तो निर्गुनियों एवं योगियों की अलख उपासना और नहीं कृष्ण भक्तों की बाललीला सुरक्षा का आश्वासन दे सकती थी। सुरक्षा का आश्वासन तो कोदंडधारी भगवान राम का भूमि को निशिचर हीन करने का प्रण करने वालो विरद ही दे सकता था। अतः रामभक्तों ने भगवान श्रीराम के इसी रूप के पावन चरित का गान किया है।

रामकथा की उक्त पृष्ठभूमि पर श्रीविष्णुदास जी ने अपनी रामायण कथा लिखी है। इसीलिए उनके 'रामचन्द्र' प्रभु त्रिभुवनधारी हैं, 'भुक्ति मुक्ति दातार' है, जो आदिदेव तारागण के अवतार हैं, जिन्होंने 'दैत्यकुल का संहार' किया है। इस पृष्ठ भूमिका का ही प्रभाव है कि इन्होंने अपनी रामकथा लोकभाषा में लिखी जिससे सामान्यजन

उसे समझ सकें और श्रीराम के पावन चरित्र के अनुरूप अपने जीवन को ढाल सके। इनकी लोक भाषा की कोई ब्रजभाषा, कोई ग्वालियरी और कोई बुन्देलखण्डी कहते हैं। वस्तुतः यह उस समय की पश्चिमी हिन्दी की परिनिष्ठित साहित्यिक भाषा है, जिसमें आंचलिक प्रयोगों को भी समाहित किया गया है। इस संदर्भ में श्री एन.एल. खंडेलवाल एवं श्री हरिहरनिवास द्विवेदी का मत ध्यातव्य है। उनका कथन है कि 'महत्त्व इस बात का है कि भाषा की रूप परंपरा को समझा जाए, रूप परंपरा को नहीं समझने से ही 'मध्यकालीन भाषा में बुंदेलखंडी, कन्नौजी, राजस्थानी, अवधी, मालवी विभेदों की दीवारें खड़ी दिखाई देती है जो वास्तव में उसमें कभी नहीं मानी गई। ''हिन्दी भाषा का प्राचीन रूप मध्यदेशीय (ग्वालियरी) था, जिसे ग्वालियर, अजमेर, जयपुर, महोबा, कालिंजर, गढ़कुंढार तथा ओरछा में सँवारा गया है। वह पहली ग्वालियरी बुंदेलखंडी है, तब ब्रज।'' श्री विष्णुदासजी की काव्यभाषा के लिये उक्त कथन उपयुक्त है।

वस्तुतः राम और कृष्ण भारतीय संस्कृति के आधार स्तंभ हैं, जिनका जीवन सदैव अनुकरणीय एवं प्रेरणादायी रहेगा। लोकभाषा में उनके चरित के गायन से जन–समाज को उनका परिचय सहज ही प्राप्त हो सकता है। यही कार्य श्री विष्णुदास जी ने किया, यही कार्य गोस्वामी तुलसीदासजी ने किया और लोगों ने भी यही कार्य किया और करते जा रहे हैं। आदर्शपूर्ण व्यावहारिक जीवन जीने तथा जीवन में श्रेयस् प्राप्त करने के लिये रामकथा की उपयोगिता सदैव रहेगी।

श्री शिवकुमार शर्मा, एचआई–205,ब्लाक–ए, कंचन आसवा अपार्टमेन्ट
डीडीयू नगर रायपुर–492001
मो. 9981219818

रामोऽपि दाराहरणेन तप्तो, वयं हतैर्बन्धुभिरात्मतुल्यैः ।
तप्तेन तप्तस्य यथायसो नः, सन्धिः परेणास्तु विमुञ्च सीताम्।।

–रावणवधम्

"हे भ्राता रावण ! हम और श्रीराम दोनों ही को दोनों को सानिध्य कर जुड़ जाना चाहिए। वे तप्त हैं भार्या सीता के न होने से । हम तप्त हैं अपने ही समान भाई बंधुओं के मरने से। मेरी मान सीता जी को ससम्मान उन्हें सौंप दो और मित्रता का हाथ आगे बढ़ा बढावो।"

तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य

राजरानी शर्मा

मानस के प्रतिनायक दशानन अध्यात्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण : (वाल्मीकि रामायण और अध्यात्म रामायण का परिप्रेक्ष्य)

रामचरितमानस कालजयी कृति है। कालजयी होने के लिये महाकाव्य में कथा चयन, पात्र चयन, शब्द चयन, छंद चयन के अतिरिक्त अन्य शताधिक युक्तियाँ प्रभावोत्पादक होती हैं। महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार महाकाव्य का नायक धीरोदात्त और विश्व प्रसिद्ध होना चाहिए साथ ही उसके नायकत्व को चतुर्दिक उद्भासित करने के लिये चुने गये मार्मिक कथा प्रसंगों पर बल देने के साथ प्रतिनायक के चरित्र चित्रण में प्रयुक्त मनोवैज्ञानिक युक्तियाँ प्रयोग की जानी चाहिये, क्योंकि ये युक्तियाँ महाकवि के प्रयोजन को न केवल सिद्ध करती हैं अपितु उसे अमरकृति बनाने और नायक की वर्चस्व कथा की विश्वप्रसिद्ध कीर्ति के लिये भी उत्तरदायी होती हैं, क्योंकि प्रतिनायक बनने के लिए आपको कहानी के मुख्य पात्रों में से एक को चुनना कथा प्रसंग की माँग है। कवि का सुचिन्तित व्यक्तित्व होने के बावजूद, प्रतिनायकों में उन अनेक गुणों, विशेषताओं या कथानक का अभाव होता है, जिनकी पाठक एक सामान्य नायक से अपेक्षा करते हैं। कवि जिस तरह से अपने प्रतिनायक के चरित्र को महाकाव्य में प्रस्तुत करता है, वह महत्वपूर्ण है। दूसरे शब्दों में, वे एक स्पष्ट खलनायक या एक पारंपरिक नायक हो सकते हैं। विश्व साहित्य में कथानक को हर दिल अजीज बनाने में नायक प्रतिनायक का द्वन्द्व एक अद्भुत रस सृष्टि करता है , और महाकाव्य या एपिक को अंतिम ऊँचाई तक ले जाकर कालजयी बनाता है। साहित्य में सर्वश्रेष्ठ प्रतिनायक पात्रों पर विचार करते समय, हमें सबसे पहले यह परिभाषित करना होगा कि प्रतिनायक क्या है। सामान्यतः, यह एक ऐसा नायक होता है जिसमें पारंपरिक रूप से नायक में पाए जाने वाले सभी या कोई भी गुण नहीं होते—जैसे साहस, नैतिकता या परोपकारिता, दूसरों को बचाने की कोशिश करने के बजाय, उनका मुख्य उद्देश्य बदला लेना, शक्ति, अपना अस्तित्व बचाना हो सकता है, या उनका कोई रहस्यमय या विध्वंसक नैतिक मूल्य हो सकते है। जैसे भारतीय महाकाव्यों के प्रतिनायक हिरण्यकश्यपु, हिरण्याक्ष, मधु कैटभ, कंस और दुर्योधन, शिशुपाल

और दंतवक्र आदि विध्वंसक, निडर, निर्दयी और तुलसी की भाषा में कहें "जे बिनु काज दाहिने बाँये" या ''चलत दसानन डोलत धरनी" जैसे अकारण भयाक्रान्त कर देने वाले होते हैं । कथा में चरमोत्कर्ष बिना प्रतिनायकों के नहीं आता। महाकाव्य की उदात्त चेतना में परस्पर विरोधाभासी तत्वों का एक साथ अस्तित्व प्रभावोत्पादकता बढ़ाता है ।

हालांकि वे अक्सर नैतिक रूप से अस्पष्ट या यहां तक कि अनैतिक होते हैं, सर्वश्रेष्ठ प्रतिनायक चरित्र खलनायक का पर्याय नहीं होते हैं। वास्तव में, जब किसी कथा को खलनायक के दृष्टिकोण से दोहराया जाता है, तो कथा का प्रतिपक्षी अक्सर प्रतिनायक बन जाता है। यों तो पुरातन से लेकर अधुनातन साहित्य तक प्रतिनायकों की अपनी जगह है। आजकल पॉप साहित्य या व्यस्क साहित्य में तो नयी युवा पीढ़ी प्रतिनायकों को नायकों से भी अधिक स्थान देती है क्योंकि उनके चरित्र में साहस है, निर्भीकता है और आतंकित करने की युक्तियाँ हैं। रहस्य रोमांच है और कल्पनाशीलता से भरी उदात्त फैंटेसियाँ हैं इसलिये साहित्य में प्रतिनायकों का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है और आज की पीढ़ी को नकारात्मक पात्र और नकारात्मक हिंसा भरे प्रसंग परपीड़क प्रसंग और दुराचारी प्रसंग और उनके पात्र पाठकों की रूचि में अधिक स्थान पा रहे हैं। यदि पश्चिम के कुछ प्रतिनायकों की चर्चा करें तो दोस्तोवस्की का प्रतिनायक – रोडियन रस्कोलनिकोव, फियोदोर दोस्तोवस्की की ''क्राइम एंड पनिशमेंट" में एक गरीब छात्र, रस्कोलनिकोव, 19वीं सदी के सेंट पीटर्सबर्ग में दो बुजुर्ग महिलाओं की हत्या कर देता है। वह उपन्यास के बाकी हिस्से और अपनी पूरी जिंदगी अपने किए पर चिंतन करते हुए और प्रायश्चित करने में बिताता है। रस्कोलनिकोव इसलिए मनोरंजक है क्योंकि वह स्वयं को एक असाधारण व्यक्ति मानता है, जो कि एक मानसिक विडंबना ही है जो उसे निरंतर दोषी और दुखी बनाता है। दोस्तोवस्की के अन्य महत्वपूर्ण पात्रों की तरह, वह साहित्य में अभूतपूर्व तरीकों से दर्शन, धर्म और मनोविज्ञान की पड़ताल करता है।इसी प्रकार प्रतिनायक जीवन रूपी सिक्के का दूसरा पक्ष प्रस्तुत करके विभिन्न आयामों से चिन्तन को परिपुष्ट करते हैं । तुलसी प्रारंभ में ही लिखते हैं कि "संग्रह त्याग न बिनु पहचाने" अर्थात् तामसिक वृत्तियों, अन्याय, अपराध और शोषण, गो ब्राह्मण साधु संतों के अकारण शोषकों को भी विस्तार से जानने और उनका अंत उनकी पराजय से जीवन के मूल्यों का दर्शन समझने के लिये महाकाव्यों में प्रतिनायकों का चुनाव गंभीरता से किया जाता है क्योंकि उनके नकारात्मक चरित्र का सीधा प्रभाव नायक के धीरोदात्त और धीरोद्धत रूप पर पड़ता है । नायक का चरित्र नकारात्मक और विध्वंसक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में अधिक सक्रियता से कार्य कर सकता है । तुलसी ने अपने प्रतिनायक को इतना महत्वपूर्ण आयाम दिया कि राम जन्म से पहले रावण जन्म की कथा को विस्तार दिया । मानस से ही एक उदाहरण चुना जाये तो भरद्वाज ऋषि के आश्रम में जब भरत जी अपने अवधवासियों को लेकर पहुँचते हैं तो अनायास मुनि के मुख से निकल जाता है

मुनिहि सोच पाहुन बड़ नेवता ।
तस पूजा चाहिअ जस देवता।।

इसी प्रकार जितना बड़ा महानायक है उसकी

टक्कर का ही प्रतिनायक होना चाहिये। अपने प्रतिनायक का प्रथम परिचय देते हुए तुलसी लिखते हैं

दस सिर ताहि बीस भुज दंडा ।
रावण नाम वीर बरिबंडा ।।

(मानस बालकांड)

अर्थात् आतंक का पर्याय दशानन !

दशानन की कहानी का रामचरितमानस में इतना एकतान विस्तार है कि प्रारंभ से अंत तक जहाँ राम के शर, मंदोदरी के आगे उसके दसों सीस और बीस भुजाओं को रखकर ही महागाथा की इति श्री करते हैं । महाकाव्य के प्रारंभ से अंत तक वर्णन किया गया है। महाकाव्य का मूल प्रयोजन इसमें सन्निहित है इसलिये प्रतिनायक महाकाव्य के प्राण का ही एक आयाम है ।

गोस्वामी तुलसीदास जी की अमर कृति राम चरितमानस के नायक श्रीराम शक्ति, शील सौन्दर्य के स्वामी, "विग्रहवान धर्म" और लोकरक्षक हैं। रामचरितमानस का प्रतिनायक दशानन सुचिन्तित अभिनेता, प्रबुद्ध चरित्र और प्रयोजनानुसार योजना बनाकर कार्य करने वाला निपुण योद्धा है। प्रतिनायक (Anti&hero) के रूप में रावण एक जटिल और संश्लिष्ट चरित्र है, जो अपनी असाधारण विद्वत्ता, शक्ति और शासन क्षमता के साथ–साथ अहंकार, क्रोध और वासना जैसे अवगुणों से ग्रस्त था, जिसके कारण उसका पतन हुआ और वह रामायण का प्रमुख विरोधी बना। वह एक शक्तिशाली राजा, ज्ञानी ब्राह्मण, कुशल संगीतज्ञ और शिव का भक्त था, लेकिन सीता के अपहरण जैसे कृत्य ने उसे नायक राम का योग्य प्रतिद्वंद्वी बना दिया! प्रत्यक्ष में तो महाकवि तुलसी उसके मुख से अपनी पत्नी मंदोदरी के लिये कहलवाते हैं

सुनु तैं प्रिया वृथा भय माना।
जग जोधा को मोहि समाना।।

(मानस लंकाकांड)

लेकिन परोक्ष रूप से मानो दशानन ये कहता है कि "जग भक्त को मोहि समाना" अर्थात् इस जग में मेरे समान अनोखी सी भक्ति करने वाला और कौन है ? रावण भक्त है ये बात अटपटी लग सकती है लेकिन राम के ईश्वर शिव का जगत्प्रसिद्ध और परम भक्त है रावण। मर्म को जानता है ! मननशील है, एकांतसेवी है, पौरुष का पर्याय है। पारिवारिक जीवन मूल्यों को जानने वाला है। भाइयों को साथ लेकर चलने वाला है। लेकिन उसका अनोखा चरित्र उसे राम का शत्रु प्रसिद्ध करना चाहता है। ये अनोखी–सी राह उसने चुनी है। आधुनिक कवि के शब्दों में कहें " प्रभु के रहस्यमय जीवन की यह अलग जरा सी परिपाटी मेरे अनंत निर्भय मन की " कहकर रावण भक्ति की राह चुनता है जिसमें निहित है कि " बदनाम जो होंगे तो क्या नाम न होगा "

सामान्यतया प्रतिनायक युद्ध जीतने के लिये और राज्य हड़पने के लिये ही रणनीति बनाते रहे हैं लेकिन दशानन तो भक्ति रूपी सीता को हरण करके हठ पूर्वक और सुनियोजित रणनीति बनाकर अपना उद्धार श्रीराम के हाथों कराने को प्रतिबद्ध होता हैं और ऐसा दृढ़ संकल्प लेता है कि अंत तक अर्थात् लक्ष्य की प्राप्ति तक कोई भी उसे अपनी संकल्पनिष्ठा से डिगा नहीं पाता फिर चाहे मारीच मामा हो, उसकी पत्नी मंदोदरी हो या भाई विभीषण और कुंभकर्ण हो, पुत्र प्रहस्त हो या सचिव माल्यवंत हो, ऋषि पुलस्त्य का संदेश हो या सीता जी की मर्मभेदी प्रताड़ना हो या हनुमान

और अंगद का ज्ञान संदेश हो अनेक बाधाओं के बाबजूद दशानन अपने संकल्प रूपी परोक्ष भक्ति पर अडिग खड़ा है। तुलसी की महागाथा मानस का विश्वप्रसिद्ध प्रसंग जब अरण्यकांड की कथा में जब श्रीराम खर दूषण का वध कर देते हैं। अन्तर्द्वन्द्व और आत्मचिंतन में डूब जाता है .... बहुत विचार करने के बाद क्या सोचता है ?

खर दूषन मोहि सम बलवंता ।
तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता।।
सुररंजन भंजन महिभारा।
जो भगवंत लीन्ह अवतारा।।
तौ मैं जाय बैर हठि करऊँ ।
प्रभु सर प्रान तजे भव तरऊँ।।

(अरण्यकांड मानस)

साथ ही वह अपने निशाचर मन को भली भांति जानते हुए यह स्वीकारोक्ति भी देता है कि

होइहि भजन न तामस देहा ।
मन क्रम वचन मंत्र दृढ़ एहा ।।

(अरण्य कांड – मानस)

यह तुलसी के प्रतिनायक दशानन की अपनी निंजा शैली है प्रभु चरणों में समर्पण की और अपने प्रकार की निजी और परोक्ष भक्ति है जिसमें उसका लक्ष्य संधान भी हो जाय तथा प्रभु का मही का भार उतारने और देवताओं की रक्षा करने का संकल्प भी पूर्ण हो जाये। साथ ही प्रभु को उसका वध करने का ठोस कारण भी मिल जाये जिससे बाली की तरह उसे और पूरे संसार को श्रीराम से ये न कहना पड़े कि

मैं बैरी सुग्रीव पियारा ।
कारन कवन नाथ मोहि मारा।।

(किष्किन्धा कांड – मानस)

प्रकारान्तर से रावण अपने भगवंत को

जो नररूप भूप सुत कोऊ।
हरिहऊँ नारि जीति रन दोऊ।।

क्योंकि शूर्पणखा ने सूचना दी थी

अतुलित बल प्रताप द्वौ भ्राता।
खल बधरत सुर मुनि सुख दाता।।
सोभाधाम राम अस नामा।
तिन्ह के संग नारि एक स्यामा।।

(मानस अरण्यकांड)

संकल्प लेते ही अपनी अद्‌भुत संकल्पना से प्रतिबद्ध होकर सुनियोजित योजना प्रारंभ करता है दशानन ! और मामा मारीच के पास जाता है उसे भली–भाँति ज्ञात है कि किससे क्या कार्य कराना है ? प्रतिनायक दशानन के दुर्दान्त चरित्र को बुनते हुए तुलसी ने बार–बार इस तथ्य को प्रकाश में लाया है कि दशानन "जगदंबा सीता" को हर लाया है। यद्यपि अरण्यकांड में जैसे ही शूपर्णखा के विरूपीकरण के द्वारा

लछिमन अति लाघव कहँ नाक कान बिनु कीन्ह।
तेहि के कर रावण कहँ मनहु चुनौती दीन्ह।।

के साथ ही श्रीराम सीता जी को अग्नि प्रवेश करने की आज्ञा बडे ही योजनाबद्ध तरीके से देते हैं –

सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुसीला।
मैं कछु करब ललित नर लीला।।
तुम पावक महुँ करहु निवासा।
जौ लगि करहु निसाचर नासा।।

(अरण्यकांड)

कहने का तात्पर्य यह कि रावण सीता जी को नहीं छाया सीता को ही हरण करके लाया।

एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि जिस प्रकार राम नरलीला कर रहे हैं जिसमें मरण, बिछोह,

हर्ष–विषाद, कमजोरी, आँसू, हार–जीत, आशा–निराशा और छल–कपट सब सहन कर रहे हैं। लेकिन पूरे वनवास काल में नर लीला करते हुए राम सतत सजग रह कर अपने ऐश्वर्यभाव को अपनी सहज मुस्कानों से माधुर्यमंडित करने का ध्यान रखते हैं । कभी ऐश्वर्य प्रकट नहीं होने देते। एक वर्ष से अधिक विरह सहन करते हैं। उसी प्रकार प्रतिनायक दशानन भी सदैव अपने प्रतिद्वंद्वी भाव को जाग्रत रखता है। ये महाकाव्य का एकतान विस्तार और तनाव है जो कथाक्रम को आकर्षक बनाता है। रावण सदा ही अपने भक्त और तत्वज्ञानी रूप को साभिप्राय सोद्देश्य छिपा कर रखता है। यही महाकाव्योचित विधान है जिसे नायक और प्रतिनायक के चरित्रों को सटीक व सजग चरित्र–चित्रण के द्वारा संश्लिष्ट रूप से बुना गया है । अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं जैसे रावण को अवश्य ज्ञात होगा कि– हनुमान अशोक वाटिका में हैं फिर भी नजर अंदाज करता है ।

विभीषण को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता देता है और प्रतिपक्षी का स्मरण करने की अनुमति देता है। मंदोदरी के द्वारा स्वयं को खद्योत और राम को दिनकर बताने पर भी हिंसा नहीं करता अपितु बात को टालते हुए चार बार मंदोदरी को क्षमा करता है, आलिंगन करता है और एक बार तो कहता है कि " मैं तुम्हारी चतुराई जानता हूँ । शत्रु का प्रताप बता कर तुम मेरी व्याज स्तुति कर रही हो " रावण कहता है "जग जोधा को मोहि समाना" लेकिन मन ही मन भयभीत रहता है। जब सुंदरकांड के अंत में शुक लक्ष्मण जी द्वारा दिया पत्र लेकर आता है तो तुलसी लिखते हैं "सुनत सभय मन मुख मुसकाई " अंदर से भयभीत है ऊपर से मुस्कुराता है। जो भी भक्ति रूपी सीता जी को लौटाने की बात कहता है उसी को लात से प्रहार करता है फिर चाहे विभीषण हो या शुक हो किसी की बात नहीं मानता दशानन ! बहुत महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि महाकाव्य में कुछ प्रसंगों को सकारात्मक और मार्मिक बना कर प्रस्तुत किया जाता है जैसे केवट के द्वारा राम के चरण प्रक्षालन का प्रसंग अमर हो गया क्योंकि उसमें केवट न केवल स्वयं बल्कि महाकवि के अनुसार

पद पखारि जल पान
करि आप सहित परिवार।
पितरि पार कर प्रभुहि
पुनि मुदित गयउ लै पार।।

(मानस अयोध्या कांड)

यहाँ यह रेखांकित किया गया है कि केवट ने पहले अपने परिवार और पितरों को भव सागर से पार कराया फिर स्वयं पार गया। यह विश्व विख्यात मार्मिक प्रसंग है! लेकिन इसी योजना के अन्तर्गत प्रतिनायक दशानन ने पहले अपने पूरे परिवार एवं भाइयों सहित परिजन व पुरजन को श्रीराम के हाथों युद्ध में सुगति दिलाई और फिर अंत में आप स्वयं अपनी पूर्व योजनाबद्ध पद्धति से श्रीराम के हाथों परम गति प्राप्त करता है। गोस्वामी तुलसीदासजी प्रतिनायक का अंत इस प्रकार लिख कर कथा को अद्भुत गरिमा प्रदान करके लिखते हैं –

डोली भूमि गिरत दसकंधर।
छुभित सिंधु सरि दिग्गज भूधर।
धरनि परेउ द्वौ खंड बढ़ाई।
चापि भालु मर्कट समुदाई।।
मंदोदरि आगें भुज सीसा।

धरि सरि चले जहाँ जगदीसा।।
प्रबिसे सब निषंग महँ जाई।
देखि सुरन्ह दुंदुभी बजाई ।।
(मानस लंकाकांड)

अब जो मुख्य उल्लेखनीय बिन्दु है

तासु तेज समान प्रभु आनन।
हरषे देख संभु चतुरानन ।।
जय जय धुनि पूरी ब्रह्मंडा।
जय रघुबीर प्रबल भुजदंडा।।

कहने का तात्पर्य यह है कि पुत्र, भ्राता और परिजन मृत्यु का अथाह शोक सहन करके भी दशग्रीव ने पहले परिवार की मुक्ति सुनिश्चित की बाद में स्वयं की। क्योंकि पहले ही योजना थी कि –

तौ मैं जाय बैर हठि करऊँ।
प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊ।।

लेकिन नकारात्मक और प्रतिनायक होने के कारण रावण की इस योजना को अतिरिक्त प्रचार न मिला न ही श्रेय दिया गया।

महाकवि तुलसी ने रावण के चरित्र में प्रतिनायकत्व की पराकाष्ठा का सुनियोजित और सुचिन्तित निर्वाह करते हुए उसमें दंभ , पाखंड , अतिशय आत्मविश्वास, क्रोध, दुर्व्यवहार, विलासिता, दुर्वचन और दुर्व्यसनों का भंडार भर दिया है जिससे उसकी कर्मठता, उद्यमिता, भक्ति, समर्पण और तेज छिप गया है। उसके तमस से मन के उजास को पूर्णतया आच्छादित कर लिया है ।

रामचरितमानस जैसे युग सापेक्ष और कालजयी काव्य के महान धीरोदात्त नायक राम के लिए एक शक्तिशाली और धीरोद्धत प्रतिनायक का होना आवश्यक था, इसीलिये महाकवि तुलसी ने दशानन जैसा प्रतिद्वन्द्वी दिया और उसको मनोवैज्ञानिक रूप अन्तर्द्वन्द्व प्रधान और परोक्ष रूप से मुक्तिकामी चित्रित किया। रावण ने जब तपस्या की तभी से उसे विष्णु के अवतार श्रीराम के हाथों प्राण त्यागने और परम गति मोक्ष पाने की मानो महत्वाकांक्षा पाल रखी थी, इसीलिये मानस में प्रतिनायक का चरित्र रचते हुए तुलसी का दशानन ब्रह्मा जी से वरदान भी इसी अर्थ का माँगता है –

हम काहू के मरै न मारे।
वानर मनुज जात दुइ वारे।।

यह वरदान या तो भावी वश माँगा था दशानन ने या उसे महाविष्णु को मनुज रूप में साक्षात् देखने की लालसा थी या उसका अभिमान इतना बड़ा था कि वह मानव और वानरों को अपना भोज्य समझता था। राम अवतार के बहुत से प्रयोजन में से एक प्रयोजन प्रतापभानु के रावण रूप में जन्म की कथा भी है। रावण की असाधारण शक्ति और बुद्धि ने उसे एक योग्य प्रतिद्वंद्वी बनाया। ऐसा प्रतिनायक जिसका अंत करने के लिये बार–बार भगवान को अवतार लेना पड़ता है। मनोवैज्ञानिक रूप से देखा जाय तो रावण के प्रतिनायकत्व में निम्नलिखित गुण हैं –

जटिलता और मानवीयता : रावण केवल बुराई का प्रतीक नहीं है। वह अच्छाई और बुराई का एक जटिल मिश्रण है, जो उसकी कहानी को और भी गहरा और विचारोत्तेजक बनाता है।

नैतिक शिक्षा –

प्रतिनायक दशानन की कहानी अहंकार, इच्छाओं और नैतिक पतन के स्तरों की एक चेतावनी है, जो हमें आत्म–जागरूकता और विनम्रता का महत्व सिखाती है।

वाल्मीकि रामायण और प्रतिनायक दशानन –

वाल्मीकि रामायण में भिन्न प्रयोजनों को सिद्ध करने के उद्देश्य से कथा क्रम में इतिवृतातत्मकता है अर्थात् यथार्थ परक और घटना प्रधानता को वरीयता दी गयी है। महर्षि वाल्मीकि आदि प्रतिनायकों के चरित्र नायक के चरित्र की अच्छाइयों को उजागर करने के लिये रचे जाते हैं। प्रति नायक से यदि लोक को और पाठक को आत्यन्तिक घृणा होती है तो इसका अभिप्राय यह है कि कवि का प्रणयन और प्रतिनायक का चरित्र सफल है । कवि का प्रयोजन सिद्ध है ।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से विश्लेषण करें तो ऐसे अनेक प्रसंग हैं जहाँ दशानन को संवेदनशील भी बताया है लेकिन पहली बार पुत्र की मृत्यु का समाचार सुनकर भी एक पल को पिता दशानन भाव–विह्वल नहीं होता ये आत्यन्तिक अर्थात् अतिशय उक्ति है । या तो अतिरिक्त संयमी है या काठ मन है या शून्य चेतना है लेकिन रावण इनमें से कुछ नहीं है। यों रावण को मेघनाद जैसे इन्द्रजीत वीर पुत्र को भी अपने अंक में बैठाते हुए दिखाया गया है! लेकिन उसका बाह्य और आंतरिक दोनों व्यवहार अलग हैं जैसे सीताजी को हरण करते समय मन ही मन प्रणाम करता है। सुषेण को लक्ष्मण जी के उपचार हेतु आज्ञा देना , राम को युद्ध की तैयारी हेतु पर्याप्त समय देता है आदि अनेक कार्य–व्यवहार उचित हैं और प्राकृतिक हैं। सभी जानते हैं कि दशानन संगीतज्ञ, कला रसिक और शंकर भक्त व काव्य प्रणेता हैं तो बिना संवेदनशील ह्रदय के ये समस्त कार्य संपादित नहीं किये जा सकते। उदाहरण के लिये और भी बहुत से घटनाक्रम व उदाहरण हैं जो जनश्रुति और परंपरा के कारण नकारात्मक ध्वनि देते हैं लेकिन यदि हम गंभीरता से विचार करें तो ये उदाहरण व प्रकरण आश्चर्य में डाल देते हैं जैसे – समुद्र पर सेतु बंध का समाचार सुनकर दशानन दस मुख से दस पर्यायवाची बोल कर आश्चर्य प्रकट करता है

बाँध्यो बननिधि नीरनिधि, जलधि सिंधु बारीस।
सत्य तोयनिधि कंपति , उदधि पयोधि नदीस।।

(मानस लंकाकांड)

लेकिन इसका निहितार्थ यह भी है कि मन ही मन राम की प्रतीक्षा करता रावण ये समाचार सुनकर आश्वस्त हो जाता है कि सेतु बाँध लिया है, अर्थात् मुझ तक अवश्य आयेंगे ! यों रावण के दशसिर भी प्रतीकात्मक हैं। अपमान करना उसका व्यसन है तो अपमान सहना भी उसकी ताकत है – संगीत सभा के भरे दरबार में जब राम के बाण रावण के चार मुकुट गिरा देते हैं तो प्रजा को ढाढस बँधाते हुए कहता है –

सिरहु गिरे संतत सुभ जाहीं।
मुकुट गिरे कस असगुन ताहीं।।

मानो उसको सब ज्ञात है कि मुकुट किसके बाणों से गिरे हैं और उनका क्या निहितार्थ है ।

इसी प्रकार एक और प्रकरण रावण की परोक्ष भक्ति पर विश्वास दिलाता है जब शुक उससे आकर कहता है –

मिला जाय जब अनुज तुम्हारा।
जातहि राम तिलक तेहि सारा।।

(मानस सुंदरकांड)

दशानन इस समाचार से भी मन ही मन आश्वस्त होता है कि मेरी सद्गति सुनिश्चित है श्रीराम ने घोषणा कर दी है कि दशानन का अंत होगा और विभीषण राजा बनेगा ! मानो प्रभु चरण में दशानन का एकतान ध्यान लगा है न कोई बात

उसे विचलित करती है न अपने प्रण से डिगाती है न धीरज खोती है। प्रजा के सम्मुख अंत तक रक्षक की भूमिका का निर्वाह करता है। अन्तरद्वन्द्व की मथानी मन ही मन मथ रही है परंतु प्रत्यक्षतः रावण पूरे मनोयोग से वैर निर्वाह करता है ! क्योंकि विद्वान रावण जानता है वैर ऐसा दृढ मनोभाव है कि व्यक्ति सोते–जगते उठते–बैठते खाते–पीते ही नहीं साँस लेते भी अपने वैरी को भूल नहीं पाता और यही उस प्रतिनायक का साध्य है कि वह तैलधारवत प्रभु को सुमिरन करे। अंततः उसे सारूप्य मुक्ति पानी है और श्री प्रभु उनके स्वामी और रावण उनका शापग्रस्त द्वारपाल ही तो है। शरण जाये बिना निर्वाह कैसे होगा।

प्रकारान्तर से देखा जाय तो मनोवैज्ञानिक धरातल पर ये एक साहसिक कार्य है कि अपने सामने अपने ही अनुचर से शत्रु की प्रशंसा सुनना और राज्य , धन धर्म सब जाते देखना । शुक यहाँ तक कहता है कि

नाथ कटक मँहु सो कपि नाहीं।
जो न तुम्हहि जीतै रन माँही।।

संयम की पराकाष्ठा चाहिए। अपने ही अनुचर से ये सुनने के लिए। कुंभकर्ण को जगाने जाता है तब कुंभकर्ण भी दशानन को धिक्कारता है जगदंबा हर आनि सठ, अब चाहेसि कल्यान।। मानो दशानन स्थितप्रज्ञ हो गया है ।

इतने सारे अन्तर्विरोधों से जो भीषण अन्तर्द्वन्द्व रावण के मन में होता है उसे सहन करता हुआ त्रिभुवनपति राम का रण में सामना करता है यह बड़ी साहस की बात है । रावण भली – भाँति जानता है कि सारा देवलोक श्रीराम की और चौदह भुवन के पति हैं जब मंदादरी उसे सुनाती है प्रभु का विराट् रूप तो मानो रावण मन ही मन मुस्कुराता है कि पद पाताल सीस अज धामा अखिल लोक दायक विस्रामा। ये सब किसे सुना रही है मौं तो उनका द्वारापाल रहा हूँ बरसों बरस! सब जानता हूँ। लेकिन यहाँ यदि प्रभु नरलीला कर रहे हैं तो मैं भी वैरी का अभिनय कर रहा हूँ ।

रावण को किसी बात का अभिनिवेश यानी खो जाने का भय नहीं है न राज्य न पुत्र, न भ्राता न प्रजा। उसे ज्ञात है सब सिद्ध लक्ष्य की ओर ही जा रहे हैं ।

दशानन अकेला है, निपट अकेला और यह अकेलापन अपने चारों ओर मानो उसने प्रभु से सारूप्य भेंट होने के लिए स्वयं बुना है। स्वयं दशानन के इष्ट शंकर भी रामानुरागी हैं तो अब किसकी शरण ग्रहण करे ? इतनी विपरीत परिस्थितियों में भी दशानन सशक्त प्रतिपक्ष से अंत तक युद्ध करता है। नियति कहें या प्रारब्ध प्रतिनायक बनते – बनते यह दशानन का तीसरा जन्म है और सुगति परब्रह्म के हाथों होनी ही है जो नर लीला कर रहे हैं ऐसे में दशानन हार कर भी जीत जाता है । अपने वैदुष्य के कारण अपनी योजना के कारण अपने तप के कारण और अपनी अर्जित शक्तियों के कारण। नकारात्मक शक्तियों, व्यसन, मदांधता और अतिशय अहंकार के दशानन के सारे गुण कौशल तप और संसाधन धूलिसात् हो जाते हैं। अंत में उसकी स्वयं की पत्नी रानी मंदोदरी ही कहती है कि –

राम विमुख अस हाल तुम्हारा ।
रहा न कुल कोऊ रोवनिहारा ।।
काल बिबस पति कहा न माना।
अग जग नाथ मनुज करि जाना।।

(मानस लंकाकांड)

लोक में भी शताधिक उक्तियाँ रावण के अहंकार को लेकर बनी हैं

इक लख पूत सवा लख नाती ।
ता रावण घर दिया न बाती।।

रावण अभिमान, अहंकार और सहस्रों दुर्गुणों के साथ अन्तर्द्वन्द्व, नैराश्य, एकाकीपन और अवसाद का शिकार है। उसकी मनः स्थिति उसे सैनिकों को लताड़ लगाने को प्रेरित करती है " समर भूमि भये वल्लभ प्राना !" कहकर सैनिकों को प्रताड़ित करना और परिवारजनों का अपमान करना जैसे माल्यवंत, विभीषण, मारीच और कालनेमि सभी को डराता धमकाता है ।पत्नी को अनसुना करता है ये सब लक्षण उसे घोर प्रतिनायक बनाते हैं !

वाल्मीकि रामायण का प्रतिनायक दशानन और मानस से तुलना –

वाल्मीकि रामायण में भिन्न प्रयोजनों को सिद्ध करने के उद्देश्य से कथा क्रम में इतिवृत्तात्मकता है अर्थात् यथार्थ परक और घटना प्रधानता को वरीयता दी गयी है। महर्षि वाल्मीकि आदि कवि हैं। इतिहास प्रधान दृष्टिकोण होने के कारण वाल्मीकि का प्रतिनायक भिन्न स्वरूप वाला

विपुलैः दर्शनीयैः च रक्ष अक्षैः भीम दर्शनैः ।
दीप्त तीक्ष्ण महादम्ष्ट्रैः प्रलम्ब दशनच् चदैः।।
शिरोभिः दशभिः वीरम् भ्राजमानम् महाओजसम्।
नाना व्याल समाकीर्णैः शिखरैः इव मन्दरम् ।।

वाल्मीकि का रावण महाबलशाली है किन्तु सदैव चाटुकारों से घिरा रहता है। तुलसी के समान वाल्मीकि के यहां भी दशानन के दस शिरों के साथ विचित्र से स्वरूप का वर्णन है ! वाल्मीकि के यहाँ रावण सतत क्रोध में ही रहता है। रावण मारीच प्रसंग से एक संवाद देखने योग्य है –

न चेतकरोशि मारिच हनमि त्वमहामाद्य वै।
एतत्कार्यमवश्यं मे बलादपि करिष्यिसि।
रजोणो हि प्रतिकुलस्थो न जातु सुखमेधते।।

हे मारीच! यदि तू ऐसा नहीं करेगा, तो मैं अभी तुझे मार डालूँगा। या फिर बलपूर्वक तुझसे यह काम करवाऊँगा। राजा के विरुद्ध जाने वाला कोई भी व्यक्ति सुख से नहीं रहता।

असद्य तं जीवितसंशयस्ते।
मृत्युर्ध्रुवो ह्यद्या मया विरुद्ध।।
एतद्याथवत्प्रतिगृह्य बुद्धि यदात्र।
पथ्यं कुरु तत्तथा त्वम्।।

युद्ध में राम का सामना करने के बाद तुम्हारा बचना संदिग्ध है। लेकिन यदि तुम अभी मेरा विरोध करोगे तो तुम्हारी मृत्यु निश्चित है। सोच–समझकर वर्तमान परिस्थितियों में जो भी तुम्हारे लिए वांछनीय हो, करो।

इत्यार्षे श्रीमद्रमायाणे वाल्मीकि आदिकाव्ये।
आरण्यकाण्डे चत्वारिणशस्सर्ग।।

इस प्रकार ऋषि वाल्मीकि द्वारा रचित वाल्मीकि रामायण में वर्णित प्रतिनायक दशानन के चरित्र की बानगी देख सकते हैं !

यों तो वाल्मीकि रामायण आदि काव्य है । ऐतिहासिक और इतिवृत्तात्मक है। वाल्मीकि रामायण का युग अलग है इसलिये महर्षि वाल्मीकि का महाकाव्य लिखने का प्रयोजन बिल्कुल पृथक है। वाल्मीकि जी का दशानन सभी कलाओं में पारंगत है। धन धान्य और समृद्धि का अथाह संचय और स्रोत है। दिग्गज और शनि उसके दास हैं काल और यम उसके बंदी हैं। रावण यहां भी मदांध व्यसनी और राम विमुख चित्रित किया

गया है! रावण का वैभव त्रैलोक्य में दुर्लभ है लेकिन रावण के व्यसन के सारे सारे निशाचरों वाले हैं। गर्व है, शोषण है निर्दयता है और है आतंक ! वाल्मीकि रामायण में रावण के बाह्य पक्ष को अधिक उजागर किया है और उसके आंतरिक पक्ष या अन्तर्द्वन्द्व को कम उजागर किया है। वाल्मीकि जी का अपना निहितार्थ है। उनका प्रतिनायक सजग तो है किन्तु समर्पित नहीं ।

आध्यात्म रामायण और प्रतिनायक दशानन –

आध्यात्म रामायण में प्रसंगों की मार्मिक और आध्यात्मिक व्याख्या देखने को मिलती है। मानस के तरह का ही संकल्प आध्यात्म रामायण में भी आता है जब युद्ध कांड में दशानन मंदोदरी से वार्ता करते हुए कहता है –

आगमिष्यामि नो चेन्मां दारयिष्यति सायकैः ।
श्रीरामो वज्रकल्पैश्च ततो गच्छामि तत्पगम्।।
(आध्यात्मरामायण – युद्ध कांड)

साथ ही यह भी कहता है जो मानस के दशानन के विचार और संकल्प से मिलता भी है –

जानामि राघवं विष्णुं लक्ष्मीं जानामि जानकीम् ।
ज्ञात्वैव जानकी सीता, मयानीता वनाद्बलात्।।

यहाँ भी योजनाबद्ध है सीता जी का अपहरण क्योंकि " तौ मैं जाय वैर हठि करऊँ " का दृढ़ संकल्प है –

परानंदमयी शुद्धा सेव्यते या मुमुक्षुभिः ।
तां गति तु गमिष्यामि हतो रामेण संयुगे।।

अर्थात् मुमुक्षु जन जिस परानंदमयी शुद्ध गति का सेवन करते हैं भगवान् श्रीराम के हाथों मर कर मैं उस गति को प्राप्त करूँगा। अर्थात् स्पष्ट है कि तुलसी का प्रतिनायक दशानन आध्यात्म रामायण से प्रेरित चरित्र है।

रावण अतुलित ज्ञानी तथा बहु–विद्याओं का मर्मज्ञ था। एक कुशल राजनीतिज्ञ, सेनापति और वास्तु कला का मर्मज्ञ राष्ट्रनायक था।

अशोक वाटिका जैसा विराट बाग तथा नदियों पर बनवाए गए पुल प्रजा के प्रति उसकी कर्तव्यनिष्ठा के प्रमाण हैं। स्वयं हनुमानजी उसके धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र संबंधी ज्ञान का लोहा मानते थे। महान शिवभक्त होने के साथ–साथ उसने घोर तपस्या के द्वारा ब्रह्मा से भी अनेक वरदान प्राप्त किए थे। आकाशगामिनी विद्या तथा रूप परिवर्तन विद्या के अलावा पचपन विद्याओं के लिए रावण ने पृथक से तपस्याएँ की थीं। ऐसा शास्त्रों में स्पष्ट उल्लेख मिलता है ।

यत्र–तत्र फैली वैदिक ऋचाओं का कुशल संपादक रावण अंक–प्रकाश, इंद्रजाल, कुमार तंत्र, प्राकृत कामधेनु, प्राकृत लंकेश्वर, ऋग्वेद–भाष्य, रावणीयम (संगीत), नाड़ी–परीक्षा, अर्कप्रकाश, उड्डीश तंत्र, कामचाण्डाली, रावण भेंट आदि पुस्तकों का रचनाकार भी था। रावण ने शिव–तांडव स्तोत्र तथा अनेक शिव स्तोत्रों की रचना की। यह अद्‌भुत है कि जिस 'दुराचारी' क्रोधी रावण के तामसिक पक्ष को ही हम जानते हैं , उसी रावण ने लंका के प्रसिध्द आयुर्वेदाचार्य सुषेण द्वारा अनुमति माँगे जाने पर घायल लक्ष्मण की चिकित्सा करने की अनुमति सहर्ष प्रदान की थी। सभी जानते हैं कि सीता जी को भक्ति स्वरूपा मानने के कारण भी संयमी रावण ने माता सीता को अंतःपुर में नहीं रखा, राम का वनवास–प्रण खंडित न हो, अतः अशोक वन में सीता को स्त्री–रक्षकों की पहरेदारी में रखा। सीता को बाहरी रूप से धमकाने वाले तथाकथित कामी रावण ने सीताजी द्वारा उपहास किए जाने के

बावजूद, उन पर बलप्रयोग कदापि नहीं किया, यह उसकी सहनशीलता और संयमशीलता का प्रत्यक्ष प्रमाण है। सीता जी से मिलने गया तो पत्नी के साथ गया । सीताहरण के पूर्व, शूर्पणखा के नाक–कान काटे जाने के प्रतिशोधरूप नीतिपालक रावण ने वनवासी राम पर आक्रमण नहीं किया, उन्हें अपनी सेना बनाने की, और अपने युद्ध में सहायक ढूँढने की पूरी कालावधि दी। रावण से रक्षा हेतु राम को अमोघआदित्य स्तोत्र का मंत्र देने वाले ऋषि अगस्त्य का यह कथन हमारे नेत्र खोल देने वाला होगा–" हे राम! मैं अपनी संपूर्ण तपस्या की साक्षी देकर कहता हूँ कि जैसे कोई पुत्र अपनी बूढ़ी माता की देख–रेख करता है वैसे ही रावण ने सीता का पालन किया है।" (अध्यात्म– रामायण)

प्रतिनायक दशानन ने अपनी राज–सत्ता का विस्तार करते हुए अंगद्वीप, मलयद्वीप, वराहद्वीप, शंखद्वीप, कुशद्वीप, यवद्वीप और आंध्रालय को जीतकर अपने अधीन कर लिया था। अर्थात् आध्यात्म रामायण का प्रतिनायक रावण एक महान योद्धा के साथ भक्त भी था ! नारद जी ने देवताओं से कहा कि –

शृणुतान सुरा यूयं धर्मतत्वविचक्षणः।
रावणो राघवद्वेषादभिषां हृदि भावयन्।

(82 युद्धकांड आध्यात्म रामायण)

भृत्यै सह सदा रामचरितं द्वेष संयुतः ।
श्रुत्वा रामात्स्वनिधने भयात्सर्वत्र राघवम्।।

(84 आ. रामायण युद्ध कांड)

देवताओं ने कहा यह रावण महातमोगुणी , ब्रह्म घाती , परस्त्री परायण , भगवद्विरोधी और तपस्वियों को पीड़ा देने वाला है ।परंतु सबके देखते देखते यह भगवान में लीन हो गया । इस प्रकार देवताओं के कहने पर नारद जी देवताओं को कारण समझाते हुए कहते हैं –

पश्यन्नुदिनं स्वप्ने राममेवानुपश्यति ।
क्रोधोऽपि रावणस्याशु गुरुबोधाधिकोऽभवत् ।।

(85 . युद्ध कांड आध्यात्म रामायण)

हे देवताओं रावण वैर भाव के कारण अनुचरों सहित सोते जगते राम के ही ध्यान में रहता था । इसलिये उसका वैर भी भक्ति से बड़ा हो गया ।

रामेण निहितश्चान्ते निर्धूताशेषकल्मष ः।
रामसीयुज्येवापि रावणो मुक्तबंधनम् ।।

(86 . युद्ध कांड आध्यात्म रामायण)

श्रीराम के द्वारा स्वयं मारे जाने के कारण रावण के समस्त पाप तत्क्षण नष्ट हो गये ।और बन्धन रहित होने के कारण उसने सायुज्य पद को प्राप्त किया ।

इस प्रकार आध्यात्म रामायण में अद्वैत वेदान्ती स्वरूप की चर्चा की गयी है । लेकिन तुलसी ने दोनों काव्यों आध्यात्म रामायण और वाल्मीकि रामायण से पृथक् प्रतिनायक की एक तार्किक मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक संरचना की है जो सुसंगत और वैज्ञानिक है तर्क संगत है ।

इतिहास ही नहीं कल्पना और इतिहास का कविकृत वृत्त अर्थात् चरित्र हृदय के संश्लिष्ट भावों को बुनते आये हैं। प्रत्येक महाकाव्य का शैलीचिह्नक या स्टायलमार्कर अलग होता है। प्रतिनायक महाकाव्यों की दिशा और दशा सुनिश्चित करते हैं। प्रतिनायक काव्य को ही नहीं महानायक को भी एक लक्ष्य , एक प्रयोजन देते हैं। उनके उदात्त अनुदात्त गुणों दुर्गुणों की चर्चा होती है, महाकाव्य की प्रत्येक घटना को नियंत्रित करते हैं । महानायक को महानायक सिद्ध करने में प्रतिनायकों की उत्कृष्ट भूमिका होती है ।

दशानन एक ऐसा ही प्रतिनायक है जिसने शत्रुभाव से हरि को देखा और हृदय में धारण किया । और मित्र भाव या कहें गुरु भाव से हर को देखा! दशानन एक ऐसा प्रतिनायक है जिसका शत्रु भाव भी गुरु भाव भी अर्थात् सकारात्मक और नकारात्मक दोनों भाव अनोखे हैं। विश्व नियंताओं से सीधे संपर्क बना पाने के कारण यह प्रतिनायक इतिहास और पुराण दोनों में अप्रतिम है । दशानन ने अपने चरित्र से सिद्ध कर दिया कि निशाचर भी बनो तो द्वन्द्व में न रहो। अपनी भूमिका को दृढ़ता से निबाहो। **"हरि अन्तरयामी सब जानी"**। रावण जैसे प्रतिनायक की विराट् चेतना अद्भुत सेतुबंध बनाती है जो हरि और हर का मिलन कराती है । दोनों विराट तत्वों को मिलाती है और एक ऐसी कथा का निदर्शन करती है जिसका हर पात्र एक आयाम है और हर चौपाई में नव्यतम जीवन पाथेय देता है । मानस संजीवनी देता है। फिर प्रतिनायक का तो कहना ही क्या उसके दुर्गुण त्याज्य हैं और परोक्ष भक्ति संग्रहणीय एवं अनुकरणीय! रावण ने जो मंदोदरी से कहा कि **"जग जोधा को मोहि समाना"** इसकी व्यंजना यह है कि मैं अपने वचन पर अडिग और लक्ष्य पर अटल रहूँगा । इसे इस रूप में देखें कि उसने अपना संकल्प सत्य कर लिया। हिरण्यगर्भ हरि को अपनी हिरण्यमयी लंका में साग्रह बुला लिया और सायुज्य मुक्ति का स्वप्न पूर्ण कर लिया। यदि आगे कोई महाकवि महाकाव्य रचे तो रचेगें कि गतांक से आगे दशानन सायुज्य मुक्ति पाकर वैकुंठ में हरि का सामीप्य सदा सदा के लिये पा गया और महाकवि तुलसी की इस उक्ति को सत्य सिद्ध कर गया कि –

भाँय कुभाँय अनख आलसहू ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहू।।

के–61, पटेल नगर, सिटी सेंटर, ग्वालियर 474002
मो. 9425339771

एकश्लोकी रामायण

आदौ रामतपोवनादिगमनं, हत्वा मृगं काञ्चनम्,
वैदेहीहरणं, जटायुमरणं, सुग्रीवसम्भाषणम्।
बालीनिर्दलनं, समुद्रतरणं लङ्कापुरीदाहनम्,
पश्चाद्रावणकुम्भकर्णहननं, एतद्धिरामायण् ।।

रामायण की संपूर्ण कथा का एक श्लोक में सार यह है – आदि में राम तपोवन जाते हैं, स्वर्ण मृग का वध करते हैं, सीता का अपरण होता है, (रावण) के हाथ जटायु की मृत्यु होती है, राम का सुग्रीव से (तदनंन्तर) संवाद, बालि का वध, समुद्र का संतरण (और हनुमान द्वारा) लंकापुरी का दाह होता है। पश्चात् रावण, कुभकरण का (राम) संहार करते हैं । यही रामायण का (कथानक) सार है।

आलेख

डॉ. नरेन्द्र कुमार मेहता

वाल्मीकि रामायण में विभीषण द्वारा रावण को सीताजी को लौटाने की सम्मति देना

रावण को श्रीरामकथा में अनेक पात्रों जैसे मारीच, मन्दोदरी, शुक सारण, कुम्भकर्ण तथा विभीषण आदि ने श्रीराम से वैर न लेने की सम्मति (सलाह) एक बार नहीं वरन् अनेक बार दी। अन्त में रावण को इन सबकी सम्मति को न मानने एवं अहंकार में अंधा होने से श्रीराम के द्वारा युद्ध में पराजित होना पड़ा। इसी क्रम में वाल्मीकि रामायण में विभीषण श्रीराम को अजेय बताकर उनके पास सीताजी को लौटा देने की सम्मति दी। यदि रावण विभीषण की बात मान लेता तो सम्भवतः रावण एवं लंका का विनाश नहीं होता किन्तु श्रीराम लीला अनोखी है अतः जो होना था वही हुआ।

राक्षसराज रावण के समक्ष कुम्भकर्ण की गर्जना सुनकर विभीषण ने रावण को बड़े ही सार्थक एवं हितकारी वचनों से इस प्रकार समझाया– राजन! सीता नामधारी विशालकाय महान सर्प को किसने आपके गले में बाँध दिया है? उसके हृदय का भाग ही उस सर्प का शरीर है, चिन्ता ही विष है, सुन्दर मुस्कान ही तीखी दाढ़ है और प्रत्येक हाथ की पाँच–पाँच अंगुलियाँ ही इस सर्प के पाँच सिर हैं। जब तक पर्वत शिखर के समान पूरे ऊँचे वानर जिनके दाँत और नख उनके आयुध हैं। लंका पर आक्रमण नहीं करते, तभी तक आप श्रीराम के हाथ में सीताजी को सौंप दीजिए। जब तक श्रीरामचन्द्रजी के चलाए हुए वायु के समान तीव्र वेगशाली तथा वज्रतुल्य बाण राक्षस शिरोमणियों के सिर नहीं काट रहे हैं तभी तक आप श्रीरामचन्द्रजी की सेवा में सीताजी को समर्पित कर दीजिए।

राजन्! ये कुम्भकर्ण, इन्द्रजीत, महापार्श्व, महोदर, निकुम्भ, कुम्भ और अतिकाय– कोई भी रणक्षेत्र में श्रीरामचन्द्रजी के संमुख नहीं ठहर सकते। यदि सूर्य या वायु आपकी रक्षा करें, इन्द्र या यम आपको गोद में छिपा लें अथवा आप आकाश या पाताल में प्रवेश (घुस) कर जाए तो भी श्रीराम के हाथों से जीवित नहीं रह सकते। विभीषण की यह बात सुनकर प्रहस्त ने कहा हम देवताओं अथवा दानवों से कभी नहीं डरते। भय क्या वस्तु है? यह हम जानते ही नहीं हैं। हमें युद्धों में यक्षों, गन्धर्वों, बड़े–बड़े नागों, पक्षियों और सर्पों से भी भय नहीं होता है

फिर युद्ध के मैदान में राजकुमार राम से हमें कभी भी कैसे भय होगा ? विभीषण राजा रावण के सच्चे हितेषी थे। उनकी बुद्धि का धर्म, अर्थ और काम में अच्छा प्रवेश था। उन्होंने प्रहस्त के अहितकर वचन सुनकर बड़ी अर्थयुक्त बात कही। प्रहस्त! श्रीराम अर्थ विशारद हैं– समस्त कार्यों के साधन में कुशल हैं। जिस प्रकार बिना जहाज या नौका के कोई महासागर को पार नहीं कर सकता है उसी प्रकार मुझ से, तुमसे अथवा समस्त राक्षसों से भी श्रीराम का वध कैसे सम्भव है?

तीक्ष्णा न तावत तव कङ्कपत्रा
दुरासदा राघवविप्रमुक्ताः।
भित्वा शरीरं प्रविशन्ति बाणाः
प्रहस्त तेनैव विकत्थसे त्वम्।।

वाल्मीकिरामायण युद्धकाण्ड सर्ग १४–१३

प्रहस्त! अभी तक श्रीराम के चलाए हुए कङ्कपत्रयुक्त, दुर्जय एवं तीखे बाण तुम्हारे शरीर को विदीर्ण करके भीतर नहीं घुसे हैं इसलिए तुम बहुत बढ़–बढ़कर बोल रहे हो।

प्रहस्त! श्रीराम के बाण वज्र के समान वेगशाली होते हैं। वे प्राणों का अन्त करके ही छोड़ते हैं। श्रीरामचन्द्रजी के धनुष से छूटे हुए वे तीखे बाण तुम्हारे शरीर को भेदकर अन्दर नहीं घुसे हैं, इसलिए तुम इतनी शेखी बघारते हो। रावण! महाबलीत्रिशिरा, कुम्भकर्ण, निकुम्भ और इन्द्र विजयी मेघनाद तो रणक्षेत्र में इन्द्रतुल्य तेजस्वी श्रीरामचन्द्रजी का वेग सहन करने में समर्थ नहीं हैं। देवान्तक, नरान्तक, अतिकाय, महाकाय, अतिरथ तथा पर्वत के समान शक्तिशाली अकम्पन भी युद्धभूमि में श्रीरामचन्द्रजी के सामने नहीं ठहर सकते हैं।

अयं च राजा व्यसनभिभूतो
मित्रैरमित्रप्रतिमैर्भवद्गिः
अन्वास्यते राक्षसनाशनार्थे
तीक्ष्ण प्रकृत्या ह्यमीक्षकारी।।

वाल्मीकिरामायण युद्धकाण्ड सर्ग १४–१७

ये महाराज रावण तो व्यसनों (राजाओं में सात व्यसन माने गए हैं, जैसे वाणी और दण्ड की कठोरता, धन का अपव्यय, मद्यमान, स्त्री, मृगया और द्यूत) के वशीभूत है अतः सोच विचारकर काम नहीं करते हैं। इसके अतिरिक्त ये स्वभाव से ही कठोर है तथा राक्षसों के सत्यानाश के लिए तुम जैसे शत्रुतुल्य मित्र को सेवा में उपस्थित रहते हैं।

अनन्त शारीरिक बल से परिपूर्ण, सहस्त्र फनवाले और महान बलशाली भयंकर नाग ने इस राजा को बलपूर्वक अपने शरीर से आवेष्टित कर रखा है। तुम सब लोग मिलकर इसे बन्धन से बाहर करके, प्राणसंकट से बचाओ। (अर्थात् श्रीराम चन्द्रजी के साथ वैर बाँधना महान सर्प के शरीर से आवेष्टित होने के समान है। इस भाव को व्यक्त करने के कारण यहाँ निदर्शना अलंकार में ना व्यंग्य है।)

उत्तम चरित्ररूपी जल से परिपूर्ण श्रीरघुनाथजी समुद्र इसे डूबो रहा है अथवा यह समझो कि यह श्रीरामजी पाताल के गहरे गर्त में गिर रहा है। ऐसी दशा में तुम सब लोगों को मिलकर इसका उद्धार करना चाहिए। मैं तो राक्षसों सहित इस सारे नगर के और मित्रों सहित स्वयं महाराज के हित के लिए अपनी यही उत्तम सम्मति देता हूँ कि ये राजकुमार श्रीराम के हाथों में मिथलेश कुमारी सीताजी को सौंप दे।

परस्य वीर्यं स्वबलं च बुद्ध्वा

स्थानं क्षयं चैव तथैव वृद्धिम्।
तथा स्वपक्षेऽप्यनुमृश्य बुद्धया
वदेत क्षमं स्वामिहित स मन्त्री।।

वाल्मीकिरामायण युद्धकाण्ड सर्ग १४–२२

वास्तव में सच्चा मंत्री वही है जो अपने और शत्रुपक्ष के बल पराक्रम को सोच समझकर तथा दोनों पक्षों की स्थिति हानि और वृद्धिका अपने बुद्धि के द्वारा विचार करके जो स्वामी के लिए हितकर और अचेत हो वही बात करें।

रावण ने विभीषण की सम्मति स्वीकार नहीं की, उसका परिणाम लंका एवं रावण सहित राक्षसों का विनाश का कारण बना।

सीनि. एमआईजी–103, व्यास नगर, ऋषिनगर विस्तार, उज्जैन (म.प्र.) ४५६ ०१०,
मो. 9424560115

आगामी कार्यक्रम

1 फरवरी से 5 फरवरी 2026 तक

रमाकांत दुबे स्मृति समरोह अंतर्गत

श्री रामकथा

प्रवचनकर्ता : दीदी भक्तिप्रभा जी

*

14 मार्च और 15 मार्च 2026

अंतरराष्ट्रीय रामायण सम्मेलन

*

31 मार्च से 2 अप्रैल 2026 तक

हनुमान जयंती के उपलक्ष्य में

हनुमत कथा

प्रवचनकर्ता : श्री श्यामजी मनावत

गोवर्धन यादव

अयोध्या से चित्रकूट
राह चलते मिलती हैं नदियाँ और पर्वत श्रेणियाँ

निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह।।

रावण के आतंक को सदा–सदा के लिए समाप्त कर देने के लिए राम जी ने सारंग उठाकर प्रतिज्ञा की कि वे रावण के आतंकवाद को सदा–सदा के लिए समाप्त कर देंगे। जिस स्थान पर प्रभु ने प्रतिज्ञा की थी, उस स्थान को सिद्धा पर्वत के नाम से जाना जाता है।

प्रभु श्री रामजी की अयोध्या से नुवारा एलिया (लंका) तक की यात्रा हमें आज भी चमत्कृत करती है। त्रेतायुग में घटित इस अद्भुत घटना पर हम यदि गौर करें तो पाते हैं कि अयोध्या का एक राजकुमार, जिसका प्रातःकल राज्याभिषेक होने वाला था, राज–पाट का त्याग कर, अयोध्या से नुवारा इलिया तक नंगे पाँव चलकर, दुर्दांत रावण के घर में घुस उसका सफाया करता है और रसातल में जा रहे सनातन धर्म की पुनस्थापना कर शांति स्थापित करता हैं। इसे विश्व के इतिहास की पहली महानतम और अन्तिम अनोखी यात्रा कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। ऐसी युगान्तकारी घटनाएं अचानक ही हुआ करती है।

जब विश्वामित्रजी आकर महाराज दशरथ जी से राम और लक्ष्मण को मांगते है तो पिता के कहने पर राम चल देते हैं। यह भविष्य के चौदह वर्ष के वनवास की पूर्व की तैयारी थी। उसका पूर्वाभ्यास था। उन्होंने पिता की आज्ञा मांगी और चुपचाप चल दिये। लेकिन बाद के वर्षों में वनवास क्यों गए ? क्या उन्होंने इसके लिए आज्ञा दी थी? नहीं पिता ने तो एक बार भी अपने मुखाबिंद से उन्हें वन जाने की आज्ञा नहीं दी और न ही राज–पत्र पर अपने हस्ताक्षर ही किए थे। केवल माता के वचनों को उन्होंने पिता की आज्ञा मानी और तत्काल वन की ओर चल पड़े।

महर्षि विश्वामित्र के साथ अपने अनुज के सहित वन जाते हुए वे निश्चिंत थे कि उनके साथ कोई तो है। उन्हें इस बात का अहसास बराबर बना रहा था। लेकिन दूसरी यात्रा में दोनों भाई तो साथ थे ही लेकिन इस बार सीताजी भी उनके साथ में थीं। अतः वे

सावधानीपूर्वक तथा सतर्कता के साथ यात्रा कर रहे थे।

प्रभु श्रीराम वन में आएं और प्रकृति बेखबर रहे, ऐसा होना संभव नहीं था। उसने भी अपने आप को खूब सजाया–संवारा, सोलह श्रंगार किया, ताकि तीनों यात्री आनंदित रहें। बिना किसी थकावट के निर्द्वंद्व वनों में भ्रमण करते रहें।

उनके आगमन का समाचार पाकर अनेक प्रकार के पंछी–पखेरु अपने कलरव से वन को गुँजायमान करने लगे। आसमान को छूती पर्वत श्रेणियाँ, हरियाली से अच्छादित होने लगती हैं. मौसम. खिलखिलाने लगा। नदी जो अब तक चुपके–चुपके, सहमी–सहमी प्रवहमान हो रही थी, उसका स्वर गूँजने लगता है। वह कलकल–छलछल के स्वर निनादित करती हुई बह निकलती है। कभी अपना करतब दिखाने के लिए वह पर्वत के शिखर से कूदने–फंलागने लगती है। प्रसन्नता से लबरेज होकर हिरण चौंकड़ी भरने लगते हैं। अपना रूप–रंग प्रदर्शित करने के लिए वे मार्ग के एक ओर खड़े रहकर, उन्हें अपनी ओर आता देखते हैं। शाखामृग उछल–कूद करने लगते हैं। पेड़ों ने नए परिधान पहन लिये. उनकी डालियाँ फलों से लद गयीं। पेड़ों से चिपकीं ,रंग–बिरंगे फूलों से लदी लतिकाएं हवा में लहराते हुए झूलने लगती हैं। आम्र–मंजरी की मादक महक वातावरण को सम्मोहित करने लगीं. हर कोई उत्सव में था। हर तरफ उत्सव था।

पहाड़ी नदियों के गीतों को सुनना, कभी ऊँचे पहाड़ से छलांग लगाकर, झरने के रूप में नीचे उतरती नदी की कलाबाजियों को देखना, दूर–दूर तक फैले गाँवों में बजती प्रकृति–नटी के अनूठे रागों को सुनना, कितने ही रंग और रूप बदलते आसमान के नीचे बैठना, राम को बहुत भाता है। उनका मन इन्हीं में रमता है। वनों के एकांत उन्हें प्रिय हैं। राजमहल की चाहरदिवारी में उन्हें घुटन होती है। उनका मन बार–बार प्रकृति के खुले वातावरण में निकल आने को होता था। अपनी उद्देश्यपूर्ण यात्रा के साथ–साथ कुदरत की इसी स्वभाविक उड़ान को देखने और समझने के लिए वे देर नहीं लगाते। पिता रुक जाने के लिए बार–बार अनुनय करते हैं, माता कौशल्या नहीं चाहती कि राम वन को जाए। लेकिन राम ने एक बार जो ठान लिया तो फिर वे अवज्ञा की सीमा लांघकर भी उसे पूरा करते हैं।

प्रकृति की हर धड़कन में कुदरत के रचियता के श्रंगारिक– मन की खूबसूरत अभिव्यक्ति होती है. हमारे प्राचीन महाकाव्यों में जो प्रकृति वर्णित है, वह मात्र कवियों की अतिश्योक्ति नहीं है, वरन भारत का सच है। कालीदास जी का मेघदूत हो या फिर ऋतुसंहार या फिर महाकवि वाल्मीकि जी की रामायण हो अथवा संत गोस्वामी तुलसी दास जी का रामचरित मानस, वे जिस भारत के वनों–पर्वतों, नदियों की महागाथा कहते नहीं थकते, वह भारत आज भी मौजूद है, उपास्थित है।

वनगमन, दरअसल एक यात्रा ही है....यात्रा का पर्याय ही है। वनगमन का तात्पर्य तो अपने देश को जानना–पहचानना भी है। उसकी ऊर्जा को, उसकी जीवनशक्ति को जानना और पहचानना भी है। एक मनोवैज्ञानिक, व्यवहारिक और अध्यात्म से जुड़ने का सशक्त माध्यम है। जब हमारी मूल प्रकृति पर हमारा आधिपत्य होने लगता है, तो एक विलक्षण सृजनात्मकता का उदय होता है। इस तरह राम अपनी मूल प्रकृति तक पहुँचे।

राम किस तरह निखरेंगे, वे किस तरह अपनी स्वभाविक प्रवृत्ति से जन–नायक बनेंगे, माता

कैकेई बखूबी जानती थीं। यही कारण था कि वे जन–नायक कहलाए। इसका सारा श्रेय, यदि किसी को जाता है तो वह माता कैकेई जी को जाता है।

अपने वनवास के समय प्रभु श्री रामजी जिस–जिस भी स्थान पर, जिस–जिस भी नदियों के तटों से गुजरे अथवा उन्होंने जहाँ–जहाँ निवास किया, वे सभी तीर्थ बन गए। आइए, हम अयोध्या से चित्रकूट तक की यात्रा में उन स्थानों के बारे में जानकारी लेते चलें।

अयोध्या से चित्रकूट तक की यात्रा

मार्ग में पड़ने वाली नदियों तथा उनका महात्म्य प्रभु श्रीराम जी सभी तीर्थ बना गए –

सरयू नदी

दरस परस मज्जन अरु पाना
हरइ पाप कह बेद पुराना
नदी पुनीत अमित महिमा अति
कही न सकइ सारदा विमत मति

वेद–पुराण कहते है कि श्री सरयू जी का दर्शन, स्पर्श, स्नान और जलपान पापों को हरता है। यह नदी बड़ी ही पवित्र है, जिसकी महिमा अनन्त है, जिसे विमल बुद्धि वाली सरस्वती भी नहीं कह सकती।

अवधपुरी मम पुरी सुहावनि।
उत्तर दिशि बह सरयू पावनि।।

परम पूज्य संत गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस चौपाई के माध्यम से सरयू नदी को अयोध्या की पहचान का प्रमुख प्रतीक बनाया है।

पयोधरैः पुण्यजनांगनानां निर्विष्ठहेमाम्बुजरेणु यस्याः।
ब्राह्मांसरः कारणमाप्तवाचो बुद्धेरिवाव्यक्तमुदाहरन्ति।।

कहते है कि भगवान श्रीराम की बाललीला का दर्शन करने के लिए सरयू का आगमन इस धरती पर त्रेतायुग में श्रीराम के अवतार के पहले हुआ था. पुराणों के अनुसार सरयू का अवतार गंगा से भी पहले हुआ। अयोध्या में भगवान का पूजन बिना सरयू जल के नहीं होता है। सरयू को ब्रह्मचारिणी बताया गया है। इसी कारण इस नदी के जल में स्नान का विशेष महत्व है। महाभारत के भीष्म पर्व में सरयू का नाम उल्लेख है. राम चरितमानस में सरयू की महिमा का बखान करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है–

अवधपुरी मम पुरी सुहावनि।
उत्तर दिश बह सरयू पावनि।।

तुलसीदास जी ने इस चौपाई से 'सरयू नदी' को अयोध्या की प्रमुख पहचान के रूप में प्रस्तुत किया है। रामजी की जन्मभूमि अयोध्या से उतर दिशा में पावन सलिला सरयू जी बह रही है। रामायण काल में सरयू कोशल जनपद की प्रमुख नदी थी।

पाणिनि ने अपनी पुस्तक अष्टाध्यायी में सरयू का नाम का उल्लेख किया है। पद्मपुराण के उत्तर खंड में भी सरयू नदी की महिमा का बखान है। लोकभाषा में कहा जाता है कि–'**सरयू में नित दूध बहत है मूरख जाने पानी**' अर्थात् पावन सलिला सरयू में निरन्तर दूध जैसा लाभदायक अमृत बह रहा है, मूर्ख जिसे पानी समझते हैं।

मान्यताओं के अनुसार ब्रह्माजी ने हिमालय पर्वत में बहुत ही सुन्दर क्षेत्र में एक सरोवर का निर्माण किया। उस सरोवर का नाम 'मानस–सरोवर' पड़ा। इस सरोवर से निकली नदी 'सरयू' नाम से लोक प्रसिद्ध हुई। सरयू मानस सरोवर से पहले कड़याली नाम से बहती है। कालिदास ने 'रघुवंश महाकाव्यम' में लिखा है कि श्रीराम सरयू को जननी के समान पूजनीय कहते हैं। सरयू तट

पर अनेक यज्ञों का वर्णन कालिदास जी ने अपने महाकाव्य में किया है।

सरयू नदी के वशिष्ठ की पुत्री होने से प्रभु श्रीराम उन्हें अपनी बहन मानते है, जिससे उनका एक नाम 'वशिष्ठी' भी है।

कौशल देश की पुण्य नदी सरयू का उल्लेख वेदों–पुराणों में भी मिलता है। सरयू का भावार्थ है–वेगवाला या बहने वाला। ऋग्वेद में इसे पुरीषिणी कहा गया अर्थात्–पुत्रों की इच्छा पूर्ण करने वाली। इक्ष्वाकु राजाओं से इच्छित नदी है यह सरयू भगवान शिव ने सरयू की महिमा समझाते हुए पार्वती जी से कहा है– "सामीप्यं न जहाति यत्र सरयूः पुण्या नदी सर्वदा" अर्थात् अयोध्यापुरी के निकट, पुण्यों की वृद्धि करने वाली सरयू नदी प्रवाहित है, जिसका सामीप्यु सरयू कभी नहीं छोड़ती। सरयू प्रातः स्मरणीय पुण्य नदियों में से एक है। भागवत पुराण में भी भारत की मोक्षदायिनी नदियों में इसकी गणना की गयी है। महाभारत के अनुसार इसका उद्‌गम मान सरोवर (ब्रह्मसर) से है। अध्यात्म रामायण में भी इसका उद्‌गम मानसरोवर से ही माना गया है. यह हिमालय से निकलती गंगा की सप्तधारा में से एक है और इसका जल समस्त पापों को दूर करने वाला है। इसी सरयू नदी के 'गोप्रतार तीर्थ' में गोता लगाकर श्रीरामजी अयोध्यावासियों सहित अपने परमधाम को गए थे। यह इतना पवित्र है कि यहाँ जो स्नान करता है, वह योगियों के लिए अति दुर्लभ श्रीरामधाम को प्राप्त करता है। इतना ही नहीं स्कंदपुराण के अनुसार सबको मुक्तिप्रदान करने वाला तीर्थराज प्रयाग भी अपने पापों को धोने के लिए कार्तिक स्नान हेतु पधारते हैं।

यत्र प्रयागराजोपि स्नातुमायाति कार्तिक।
शुध्यर्थ साधुकामो सो प्रयागो मुनि सत्तम।।

अयोध्या से प्रस्थान करते हुए प्रभु श्री रामचन्द्र जी ने कौसल जनपद को लाँघते हुए आगे वेदश्रुति, गोमती एवं स्यन्दिका नदियों को पार कहते हैं।

वेदश्रुति

ततो वेदश्रुतिं नाम शिववारिवहाम नदीम्।
उत्तीर्याभिमुख् प्रायदगस्त्याध्युषितां।।

वेदश्रुति नदी का महात्म्य

वेदश्रुति, सरस्वती नदी का ही एक नाम है। यह एक पौराणिक नदी है जिसका वर्णन वेदों में मिलता है। सरस्वती नदी को प्लाक्ष्वती या वेदवती भी कहा जाता है। ऋगवेद में सरस्वती नदी को अन्नवती और उदकवती के नाम से भी जाना जाता है। वैदिक काल में सरस्वती को परम पवित्र नदी माना जाता था। इसके पानी से ऋषियों ने वेद रचे और वैदिक ज्ञान का विस्तार किया। यह हिमाचल प्रदेश के सिरमौर राज्य के पर्वतीय भाग से निकलती थी। यह अंबाला, कुरुक्षेत्र, कैथल होते हुए पटियाला राज्य में प्रवेश करती थी, फिर सिरसा जिले की दृशद्वती (कांधार) नदी में मिल जाती थी। सरस्वती नदी का लुप्त होना ही हड़प्पा सभ्यता के शहर धौलावीरा के नष्ट होने की प्रमुख वजह थी। इस कथा को न सिर्फ सरस्वती के श्राप से जोड़कर देखा जाता है, बल्कि इसे पुराणों में धरती पर जल के आगमन की पहली कथा के तौर पर देखा जाता है।

वर्तमान में आप चारों धामों में से एक बद्रीनाथ धाम जाते हैं, तो यहाँ माणा गाँव के समीप पहाड़ी सोतों से गर्जना के साथ सरस्वती नदी का उद्‌गम होता हुआ देखते हैं। हालांकि कुछ दूर चलने के बाद ही यह नदी उसी गाँव की सीमा से भूमिगत हो जाती है। सरस्वती नदी का जल यहाँ क्यों

विलुप्त हो जाता है, इसके पीछे की एक कथा है जो कि महाभारत काल से जुड़ती है।

इसके अनुसार महर्षि वेदव्यास के आग्रह पर विनायक श्रीगणेश ने महाभारत कथा का लेखन यहीं बद्रीनाथ धाम के पास स्थित एक गुफा में किया था। जिस समय श्री गणेश जी व्यास जी से सुनकर श्लोक लिखते, तब सरस्वती नदी अपनी तेज गर्जना के साथ उन्हें परेशान करती, इससे वह सही श्लोक नहीं सुन पा रहे थे। उन्होंने देवी से अपने वेग और प्रवाह को मंद करने के लिए कहा, लेकिन देवी ने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया। तब क्रोध में आए गणेशजी ने उन्हें भूमिगत हो जाने का श्राप दिया, इसके कारण ही हिमालय की कंदराएँ से निकलती सरस्वती नदी माणा गाँव की ही सीमाओं पर धरती के भीतर लुप्त होती दिखाई देती है।

कहते हैं कि प्राचीन काल में तीर्थराज प्रयाग में तीनों नदियों का संगम होता था, लेकिन जब श्राप के कारण सरस्वती नदी लुप्त हो गई, तब यहाँ गंगा–जमुना का संगम होता दिखता है, लेकिन मान्यता है कि आज भी सरस्वती नदी की एक धारा भूमिगत होकर ही इन नदियों के साथ मिलती है और यहाँ अदृश्य त्रिवेणी का निर्माण करती है।

वाल्मीकि रामायण में जब भरत कैकय देश से अयोध्या पहुँचते हैं तब उनके आने के प्रसंग में सरस्वती और गंगा को पार करने का वर्णन है. आदिकवि वाल्मीकि लिखते हैं–

सरस्वती च गंगा च युग्मेन प्रतिपद्य च।
उत्तरान् वीरमत्स्यानां भारूण्ड प्राविशद्वनम्।।

अर्थात् भरत ने सरस्वती नदी के साथ गंगा और यमुना के युग्म वाले विशाल जल भंडार को पार किया।

सरस्वती नदी के तटवर्ती सभी तीर्थों का वर्णन महाभारत के अध्याय 35 से 54 वें अध्याय तक सविस्तार दिया गया है। इन स्थानों की यात्रा बलराम ने की थी, जिस स्थान पर मरुभूमि में सरस्वती लुप्त हो गई थी उसे "विनशन" कहते थे. महाभारत में तो सरस्वती नदी का उल्लेख कई बार किया गया है। सबसे पहले तो यह बताया गया है कि कई राजाओं ने इसके तट के समीप कई यज्ञ किए थे। वर्णन है कि कर्ण ने भी जीवन का अंतिम दान सरस्वती नदी के तट पर ही किया था। महाभारत के अनुसार कुरुक्षेत्र तीर्थ सरस्वती नदी के दक्षिण और दृष्टावती नदी के उत्तर में स्थित है।

भागवत और अकेस्ता में सरस्वती

श्रीमद्भागवत (5,18,19) में यमुना तथा दृषद्वती के साथ सरस्वती का उल्लेख है मंदाकिनी यमुनासरस्वतीदृषद्वदी गोमतीसरयु। "मेघदूत पूर्वमेघ" में कालिदास ने सरस्वती का ब्रह्मावर्त के अंतर्गत वर्णन किया है. वे लिखते है कि–

कृत्वा तासामभिगममपां सौम्य सारस्वतीनामन्तः
शुद्धस्त्वमपि भविता वर्णमात्रेभ कृष्णः

कालांतर में सरस्वती का नाम इतना प्रसिद्ध हुआ कि भारत की अनेक नदियों को इसी के नाम पर सरस्वती कहा जाने लगा। यहाँ तक कि पारसियों के धर्मग्रंथ "अवेस्ता" में भी सरस्वती का नाम "हरहवती" मिलता है। सरस्वती नदी सिर्फ एक देवी नहीं, एक नदी नहीं, जल का मात्र एक प्रवाह नहीं, बल्कि युगों और सदियों से हमारी सभ्यता और विरासत को अपने में समेटने वाली धरोहर है।

शीतल एवं सुखद जल बहाने वाली वेदश्रुति नामक नदी को पार करते हुए श्रीरामचन्द्रजी अगस्त्य सेवित दक्षिण–दिशा की ओर बढ़ चले।

गत्वा तु सुचिरं कालं ततःशीतवहां नदीम्ः
गोमतीं गोयुतानूपापतरत् सागरङ्गमाम्।।
तमसा प्रथम दिवस करि वासूः
दूसर गोमति तीर निवासू।

गोमती नदी

भारत के उत्तरप्रदेश में बहने वाली एक नदी है, जो गंगा की एक प्रमुख उपनदी है। भागवत पुराण के अनुसार यह पाँच दिव्य नदियों में से एक है।

दीर्घकाल तक चलकर उन्होंने समुद्रगामी गोमती नदी को पार किया, जो शीतल जल का स्त्रोत बहाती थी. उसके कछार में बहुत–सी गौएँ विचरती थीं।

गोमती नदी–भारत के उत्तरप्रदेश राज्य से बहने वाली एक नदी है, जो गंगा नदी के एक प्रमुख उपनदी है, गोमती को हिन्दू एक पवित्र नदी मानते है और भागवत पुराण के अनुसार यह पाँच दिव्य नदियों में से एक है। हिंदू मान्यता के अनुसार गोमती वशिष्ठ जी की पुत्री हैं और भागवत पुराण के अनुसार भारत की पाँच पारलौकिक नदियों में से एक है।

गोमतीं चाप्यतिक्रम्य राघवः शीघ्रगैर्हयैः।
मयूरहंसाभिरुतां ततार स्यन्दिकां नदीम्।।
(12 अयो.पंचाशः सर्ग वा. रा.)

स्यन्दिका नदी

कोसल राज्य की एक नदी है। यह नदी पुराणों में बहुत प्रसिद्ध है। वाल्मीकि रामायण के अयोध्या कांड में इसका उल्लेख मिलता है। इसके किनारे पर मोर और हंसों के कलरव गूंजित हुआ करते थे। इन पक्षियों की मधुर स्वरों को सुनते हुए रामजी क्रमशः आगे प्रस्थित हुए।

विशाल और रमणीय कोसल देश की सीमा को पार करके लक्ष्मण के बड़े भाई बुद्धिमान् श्रीरामचन्द्रजी ने अयोध्या की ओर अपना मुख किया और हाथ जोड़कर विनती की कि वनवास की अवधि पूरे करके महाराज के ऋण से उऋण हो मैं पुनः लौटकर तुम्हारा दर्शन करूँगा और अपने माता–पिता से मिलूँगा।

श्री रामजी ने श्रृंगवेरपुर में गंगा जी के पावन तट पर पहुँचकर रात्रि में विश्राम किया।

बहुत ही रमणीय स्थल है श्रृंगवेरपुर। श्रृंगी ऋषि की तपस्थली होने के कारण इस स्थान का नाम श्रृंगवेरपुर पड़ा था। वर्तमान में, मछुआरों के राजा निषादराज ने श्रृंगवेरपुर को अपनी राजधानी बनाया था। श्रृंगवेरपुर को सजाने–संवरने में प्रकृति ने भी कोई कोर–कसर बाकी नहीं रखी थी। नगर के चारों ओर सघन वनों से आच्छादित पेड़ों से शीतल, सुगन्धित बयार, मंथरगति से बहती रहती है। पेड़ पर अनेक पक्षियों के समूहों ने अपने–अपने घोंसलें बना रखे थे। सुबह और शाम को इस नगरी की भव्यता उस समय और बढ़ जाती थी, जब सूर्यदेव उदित होते थे अथवा अस्ताचलगामी होते थे। समूचा आकाश रंग–बिरंगे रंगों में नहा उठता था। पेडों और लतिकाओं पर सुगन्धित पुष्प खिलखिलाने लगते। तितलियों के समूह यहाँ–वहाँ फुदकने लगते हैं। फूलों की मदमाती सुगन्ध को हवा अपने साथ बहाकर ले जाती है और पूरे श्रृंगवेरपुर को सुगन्धित बना देती है। इस समय पक्षियों के समूह अनंत आकाश की ऊँचाइयों पर उड़ते हुए अपने आराध्य सूर्यदेव के स्वागत में सामूहिक गीत गाते हैं और संध्या के समय सांध्यगीत गाते हुए उन्हें बिदाई

देते हुए मन ही मन पुनः आकाश–पटल पर अवतरित होने की प्रार्थना करते दिखाई देते हैं।

एक तरह से श्रृंगवेरपुर रामजी की बहन शांता का ससुराल होने का गौरव भी रखता है। इस स्थली से जुड़ा एक बेहद ही रोचक प्रसंग है। श्रृंगि ऋषि को श्रृष्यशृंग के नाम से भी जाना जाता है। रामजी की बहन शांता का विवाह महर्षि विभाण्डक के पुत्र इन्हीं श्रृंगऋषि से हुआ था। श्रृंग के जन्म को लेकर एक प्रसंग मिलता है. एक दिन जब महर्षि विभाण्डक नदी में स्नान कर रहे थे, तभी नदी में उनका वीर्यपात हो गया। उस जल को एक हिरणी ने पी लिया, जिसके गर्भ से ऋंग का जन्म हुआ था। महर्षि विभाण्डक ने उस नवजात शिशु को अपना पुत्र मानकर लालन–पालन–पोषण किया था।

उस समय अंगदेश के तत्कालीन राजा रोमपाद थे। पूरा क्षेत्र सूखे की चपेट में था। अतः वहाँ के कृषक अपने राजा रोमपाद के पास पहुँचे और प्रार्थना करते हुए मदद मांगने लगे। राजा रोमपाद ने ऋंग ऋषि से प्रार्थना की कि वे यहाँ आकर यज्ञादि करें, ताकि इन्द्रदेव प्रसन्न होकर वर्षा करें। यज्ञ के संपन्न हो जाने पर भारी वर्षा हुई। जनता इतनी खुश हुई कि अंगदेश में जश्न का माहौल बन गया। तभी रानी वर्षिणी और राजा रोमपाद ने अपनी गोद ली बेटी शांता का विवाह ऋंग ऋषि से कर दिया।

महाराज दशरथजी की पुत्री शांता के नाम का उल्लेख रामायण में भी मिलता है। ऋंगी ऋषि से जुड़ी और एक रोचक कथा पढ़ने को मिलती है, महाराज दशरथ पुत्रेष्टि यज्ञ करवाना चाहते थे, अतः उन्होंने इन्हीं ऋंगी ऋषि से प्रार्थना की कि वे अयोध्या आकर पुत्रेष्ठी यज्ञ संपन्न करवाएं। ऋषि जानते थे कि इस यज्ञ को संपन्न करवाने में उनके जीवन भर के सभी पुण्य नष्ट हो जाएंगे। अतः उन्होंने मना कर दिया। लेकिन पत्नी शांता के विशेष अनुरोध को मानते हुए। वे अंततः इस यज्ञ को करवाने के लिए तैयार हो गए। इन्हीं पुण्यों के चलते महाराज दशरथजी को पुत्रों की प्राप्ति हुई थी. महाराज दशरथ जी ने ऋषि को यज्ञ करवाने के बदले बहुत–सा धन दिया था, जिससे ऋंग ऋषि के पुत्र और कन्या का भरण–पोषण संभव हो पाया। यज्ञ से प्राप्त खीर से राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न का जन्म हुआ था।

त्रिपथगामी दिव्य गंगा

तत्र त्रिपथगां दिव्यां शीततोयाम शैवलाम्।
दर्दश राघवो गंगा रम्यामृषिनिषेविताम्।।

नदियों के कारण ही हमारी भूमि शस्य श्यामला बन पायी है। भारत भूमि पुण्य भूमि है। नदियों के किनारे ऋषि–मुनियों ने निवास करते हुए अनेक ग्रंथों की रचनाएं की थी.

श्री रघुनाथजी ने त्रिपथगामिनी दिव्य नदी गंगा का दर्शन किया, जो शीतल जल से भरी हुई, तथा रमणीय थीं। बहुत–से महर्षि उनका सेवन करते थे।

गंगा नदी और उसका महत्व

पतितोद्धारिणि जाह्न्वि गंगे
खण्डित गिरिवरमण्डित भंगे
भीष्म जननि हे मुनिवरकन्ये
पतितनिवारिणि त्रिभुवन धन्ये।

गंगा जी आसपास के वातावरण को महर्षि वाल्मीकि जी ने बहुत ही सुंदर वर्णन किया है, जो चित्त को भावविभोर कर देता है। आगे वे लिखते हैं कि गंगाजी के तट पर थोड़ी–थोड़ी दूरी पर बहुत–से सुन्दर आश्रम बने थे, जो उन देवनदी की शोभा बढ़ाते थे। समय–समय पर हर्षभरी

अप्सराएँ भी उतरकर जलकुण्डका सेवन करती हैं। वे गंगा सबका कल्याण करने वाली हैं। देवता, दानव, गन्धर्व और किन्नर उस शिवस्वरूपा भागीरथी की शोभा बढ़ाते हैं। नागों और गन्धर्वों की पत्नियाँ भी उनके जलका सदा सेवन करती हैं। गंगा के दोनों तटा पर देवताओं के बहुत–से उद्यान भी हैं। वे देवताओं के क्रीड़ा के लिए आकाश में भी विद्यमान हैं और वहाँ देवपद्मिनी के रूप में विख्यात है।

तटों से टकराते जल को लेकर वाल्मीकि जी बहुत ही सुन्दर व्याख्या की है। वे लिखते हैं कि प्रस्तरखंड से गंगाजी के जल के टकराव से जो शब्द होता है, वह मानों उनका अट्टहास है। जल से फेण प्रकट होता है, वही उन दिव्य नदी का निर्मल हास है। कहीं तो उनका जल वेणी के आकार का है और कहीं वे भँवरों से सुशोभित हैं। आगे वे लिखते हैं– कहीं उनका जल निश्चल एवं गहरा है। कहीं वे वेग से व्याप्त है। कहीं उनके जल से और कहीं वज्रपात आदि के समान भयंकर नाद सुनाई पड़ता है। देवताओं के समुदाय उस जल में उतरकर गोते लगाते हैं। कहीं–कहीं उनका जल नील कमलों से अथवा कुमुदों से आच्छादित होता है तो कहीं पर निर्मल बालुका–राशि का।

गंगा के तटों पर हंसों और सारसों के कलरव गूँजते रहते हैं। चकवे उस देवनदी की शोभा बढ़ाते हैं. सदा मदमस्त रहने वाले विहंगम उनके जल पर मंडराते रहते हैं। कहीं तटवर्ती वृक्ष मालाकार होकर उनकी शोभा बढ़ाते हैं। कहीं तो उनका जल खिले हुए उत्पलों (नीला कमल या निम्फिया नौचली। संस्कृत में इसे कुवलय भी कहते हैं। यह एक औषधी पौधा है। अमरकोष के मुताबिक इसे कुष्ठम, व्याधि, परिभव्यम, वाप्यम, पाकलम भी कहा जाता है) सा दिखता है।

देवनदी (श्री विष्णु जी के चरणों से प्राकट्य होने के कारण ही इन्हें देवनदी कहा जाता है।) के तटवर्ती वनों में मदमत्त दिग्गजों,जंगली हाथियों को देखा जा सकता है. सागरवंशी राजा भगीरथ के तपोमय तेज से जो जिनका शंकरजी की जटाजूट से इनका अवतरण हुआ था।

प्रभु श्रीराम ने सुमंत्र जी को बिदा करने के पश्चात उन्होंने नाव से गंगा पार की, केवट को भक्ति का वरदान दिया। गंगाजी से आशीर्वाद लिया और प्रयाग पहुँचे।

तेहि दिन भयउ बिपट तर बासुः
लखन सखाँ सब कीन्ह सुपासू।
प्रातः प्रातकृत करि रघुराईः
तीरथराजु दीख प्रभु जाई।

रामजी ने वृक्ष के नीचे विश्राम किया। प्रातःकाल नित्यक्रिया से निवृत्त होने के पश्चात् उन्होंने "तीर्थराज" के दर्शन किए। तीर्थराज माने तीर्थों का राजा। राजा हैं तो उनके मंत्री–संत्री, रानी और मित्र सलाहकार भी होंगे। तुलसी इसे स्पष्ट करते हुए लिखते हैं–

चारि पदारथ भरा भँडारूः
पुन्य प्रदेश देस अति चारु।

अर्थात् एक ऐसा पुण्य प्रदेश है, जो चार पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) से परिपूर्ण है। यहाँ पदारथ का अर्थ पुरुषार्थ से है।

उसकी संपन्नता का बयान करने के पश्चात् गोस्वामी जी बताते हैं कि प्रयागराज का सुरक्षा कवच कैसा है।

छेत्र अगम गढ़ु गाढ़ सुहावाः
सपनेहु नहिं प्रतिपच्छिन्ह आया।
सेन सकल बर बीराः

कलुष अनीक दलन रनवीरा।

अर्थात् यह किले जैसा क्षेत्र अतीव दुर्गम है. एक ऐसा गढ़ (दुर्ग) जिसे स्वपन में भी शत्रु (पाप) जीत नहीं सकते। प्रयाग के भीतर जितने भी तीर्थ हैं वे इसके वीर–सैनिक हैं जो बड़े रणवीर हैं और पाप की सेना को पराजित करने में सक्षम है।

श्री राम लक्ष्मण सूर्यास्त होते–होते तथा आपस में बातचीत करते–करते गंगा–यमुना के संगम के समीप भरद्वाज के आश्रम पर जा पहुँचे। भरद्वाज मुनि ने उन सबको नाना प्रकार के अन्न, रस और जंगली फल–फूल प्रदान किये और कहा, गंगा–यमुना इन दोनों महानदियों के संगम के पास यह स्थान बड़ा ही पवित्र और एकान्त है, यहाँ की प्राकतिक छटा भी मनोरम है, अतः तुम यहीं सूखपूर्वक निवास करो।

रामजी ने बतलाया कि मेरे जनपद के लोग यहां से बहुत निकट पड़ते हैं। वे मुझे और सीता को देखने के लिए प्रायः आते–जाते रहेंगे। इस कारण यहाँ निवास करना मुझे ठीक नहीं लग रहा है। यह सुनकर महामुनि ने रामजी से कहा–

दशकोश इतस्तात गिरिर्यस्मिन निवत्स्यसिः
महर्षिसेवितः पुण्यः पर्वतः शुभदर्शनः..तात।

यहाँ से दस कोस की दूरी पर एक सुन्दर और महर्षियों द्वारा सेवित परम पवित्र पर्वत है, जिस पर तुम्हें निवाद करना होगा। यह सुविख्यात चित्रकूट पर्वत नाना प्रकार के वृक्षों से हरा–भरा है।

सरित्प्रस्रवणप्रस्थान् दरीकन्दरनिर्झरान्ः
चररः सीतया सार्धं नन्दिष्यति मनस्वत।।

हे रघुनन्दन ! मन्दाकिनी नदी, अनेकानेक जलस्त्रोत, पर्वत शिखर, गुफा, कन्दरा और झरने तुम्हारे देखने में आयेंगे। वह पर्वत सीता के साथ विचरने के लिए तुम्हारे मनको आनन्द प्रदान करेगा।

चित्रकूट

सुरम्यमासाद्य तु चित्रकूटं,
नदी च तां माल्यवर्ती सुतीर्थाम्ः
ननन्द हृष्टो मृगपक्षिजुष्टांः
जहौ च दुःखं पुरविप्रावासत्।

अर्थात चित्रकूट पर्वत बड़ा ही रमणीय है। वहाँ उत्तम तीर्थों से सुशोभित माल्यवती (मन्दाकिनी) नदी बहती है, जिसका बहुत–से पशुपक्षी सेवन करते हैं। उस पर्वत और नदी का सामिप्य पाकर श्रीरामचन्द्रजी को बड़ा हर्ष और आनंद हुआ। वे नगर से दूर वन में आने के कारण होने वाले कष्ट भूल गये।

पयस्वनी/मन्दाकिनी नदी के पावन तट पर स्थित चित्रकूट भगवान श्री रामजी की कर्मभूमि है। उन्होंने यहाँ 11 वर्ष, 11 महिने और 11 दिन बिताए थे। इसी स्थान पर भरत–मिलाप हुआ था। चित्रकूट अपनी नैसर्गिक सौंदर्य और आध्यात्मिक महत्व के लिए प्रसिद्ध है। यह एक प्राकृतिक तीर्थस्थल है। यह वह भूमि है, जहाँ भगवान विष्णु ने राम के रूप में वनवास काटा था, तो ब्रह्माजी ने सृष्टि की रचना के लिए यहाँ यज्ञ किया था और उस यज्ञ से प्रकट हुआ शिवलिंग धर्मनगरी चित्रकूट के क्षेत्रपाल के रूप में आज भी विराजमान है। इसे ब्रह्मपुरी के नाम से भी जाना जाता है। इसे कामदगिरि भी कहा जाता है। श्रीरामजी ने पर्वत को वरदान दिया और कहा कि अब आप कामद हो जाएँगे और जो भी आपकी परिक्रमा करेगा, उसकी सारी मनोकामनाएँ पूरी हो जाएगी और हमारी भी कृपा उस पर बनी रहेगी। इसी कारण इस पर्वत को कामदगिरि कहा जाने लगा और यहाँ विराजमान हुए कामतानाथ भगवान राम के ही स्वरूप हैं।

मन्दाकिनी नदी

इसे परम पवित्र नदी माना जाता है. मान्यता है कि माता सती अनुसुइया ने कड़ी तापस्या करके इस नदी को प्रकट किया था। यह यमुना की एक छोटी सहायक नदी है। यह मध्यप्रदेश के सतना जिले से निकलती है और उत्तरप्रदेश के कर्वी में यमुना में मिल जाती है। चित्रकूट से लगभग 15 किमी दूर सती अनुसुइया मंदिर के पास से इसका उद्गम केंद्र माना जाता है। मान्यता है कि इसमें स्नान करने से पाप धुल जाते हैं और मनोकामनाएँ पूरी होती है। वनवास काल में प्रभु श्रीराम इसी पवित्र मंदाकिनी में स्नान किया करते थे और इसके जल से मतगजेन्द्रनाथ का जलाभिषेक किया करते थे। जिस स्थान में प्रभु श्रीराम जी ने डुबकी लगाई थी उसे आज "रामघाट" के नाम से जाना जाता है।

चित्रकूट में सुखपूर्वक रहते हुए प्रभु श्री रामचन्द्रजी ने दण्डकारन्य की ओर प्रस्थान करने से पूर्व अत्रि जी के आश्रम पर गये थे।

सौत्रेराश्रममासाद्य तं व वन्दे महायशाः
तं चापि भगवानत्रिरू पुत्रवत् प्रत्यपद्यत।

(अयो. सप्तदशाधिकमरूसर्गः–5)

अत्रि जी के आश्रम में पहुँचकर महायशस्वी श्री रामजी ने उन्हें प्रणाम किया तथा भगवान अत्रि ने भी उन्हें पुत्र की भांति स्नेहपूर्वक अपनाया। अत्रि जी ने उन्हें अपनी धर्मपरायणा तपस्विनी अनसूया का परिचय देते उनके पास जाने को कहा। अनसूया जी ने सीता जी को इच्छानुसार वर मांगने को कहा। उन्हें बहुमूल्य सीख और वस्त्राभूषण दिये।

इदं दिव्यं वरं माल्यं वस्त्रामाभरणानि चः
अंगराग च वैदेहि महार्हमनुलेपनम्
मया दत्तमिदं सीते तव गात्राणि शोभयेत्
अनुरूपमसंक्लिष्टं नित्यमेव भविष्यति।

(अष्टाधिकशततमःसर्ग 19–20)

यह सुन्दर हार,यह वस्त्र, ये आभूषण, यह अंगराग और बहुमूल्य अनुलेपन मैं तुम्हें देती हूँ। विदेहनन्दिनी सीते ! मेरी दी हुई ये वस्तुएँ तुम्हारे अंगों की शोभा बढ़ायेंगी। ये सब तुम्हारे ही योग्य है और सदा उपयोग में लायी जाने पर निर्दोष एवं निर्विकार रहेंगी।

अंगरागेण दिव्येन लिप्तांगी जनमात्मजेः
शोभयिष्यसि भर्तारं यथा श्रीरइष्णुमव्ययम्।

सीताजी को आशीर्वाद् देते हुए उन्होंने कहा– "जनककिशोरी! इस दिव्य अंगराग् को अंगों में लगाकर तुम अपने पति कि उसी प्रकार से सुशोभित करोगी, जैसे लक्ष्मी अविनाशी भगवान विष्णु की शोभा बढ़ाती है।

भगवान श्रीरामजी ने प्रसन्नता के साथ वहाँ रात्रि भर निवास किया। रात बीतने पर जब सभी वनवासी तपस्वी मुनि स्नान करके अग्निहोत्र कर चुके, तब पुरुषसिंह श्रीराम और लक्ष्मण ने उनसे जाने के लिए आज्ञा मांगी।

एष पन्था महर्षीणां फलान्याहरतां वनेः
अनेन तु वनं दुर्ग गन्तु राघव ते क्षयम्।।

अत्रि मुनि जी ने राम से कहा–रघुकुलभूषण! यही वह मार्ग है जिससे महर्षि लोग वन के भीतर फल–फूल लने के लिये जाते हैं। आपको भी इसी मार्ग से दुर्गम वन (दण्डकारण्य) में प्रवेश करना चाहिए।

प्रभु श्री रामचन्द्रजी जी जिस–जिस स्थान से भी गुजरे सभी तीर्थ बना गए।

103 कावेरी नगर, छिंदवाड़ा म.प्र. मो. 9424356400

तुलनात्मक विश्लेषण

शकुंतला कालरा

तुलसीदास और मैथिलीशरण गुप्त

तुलसीदास मध्ययुगीन विचार–परंपरा के प्रतिनिधि कवि हैं तो गुप्त जी आधुनिकता का प्रतिनिध्वि करते हैं। दोनों में भिन्नता बस इसी बिन्दु पर है। गुप्त जी ने राम–काव्य–परंपरा का अनुसरण करते हुए युग–बोध के प्रभाव से नवीन उद्भावनाएँ की। प्राचीन कथा को नवीन रूप में ढालते हुए ऐतिहासिक संदर्भों की घटना या पात्राों के स्तर पर कहीं क्षति नहीं होने दी। साकेत में कवि ने राम को अवतारी रूप में कम युग–पुरुष के रूप में अधिक प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार साकेत के अन्य पात्रा भी आज के मानव के रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं। काव्येरउपेक्षित 'उर्मिला' का चरित्रा तो उनके पूरे काव्य की मूल प्रेरणा है। उसके चरित्रा की वर्णित पारंपरिक विशेषताओं के अतिरिक्त कवि ने अपनी कल्पना और संवेदना से उसे पाठकों की सहानुभूति और कहीं–कहीं श्रद्धा का पात्रा बना दिया है। इसी तरह कैकेयी को भी नया व्यक्तित्व प्रदान किया है। मनोविज्ञान का आधार लेते हुए उसे पाठकों के क्रोध और घृणा के स्थान पर संवेदना का पात्रा बना दिया है। इस तरह गुप्त जी उपेक्षित नारी पात्रों का कलात्मक निर्माण किया है। युग की वैचारिकता को साथ लेते हुए अपनी सांस्कृतिक परंपरा की रक्षा के प्रति भी गुप्त जी सदैव सजग रहे हैं। विषय पारंपरिक है किंतु चेतना आधुनिक है। उनकी आधुनिकता यथार्थग्रस्त न होकर आदर्शप्रेरित है। कवि मध्ययुगीन आस्तिकता को साथ लेता हुआ आगे बढ़ा है जिस पर अवतारवाद, वैष्णवमत, प्रारब्ध्वाद का पूर्ण प्रभाव है। गुप्त जी की आधुनिकता आज के बाज़ारवाद और उपभोक्तावादी सभ्यता से प्रभावित नहीं। वे तुलसीदास की भाँति जीवन और आचरण में सर्वत्रा आदर्शवादी हैं। साकेत का प्रायः प्रत्येक पात्रा आदर्श–प्रवण है उनकी यह आदर्श–भावना उनके जीवनादर्श और काव्यादर्श में सर्वत्रा दिखाई देती है।

आज हम गुप्त जी के चिंतन के चाहे किसी भी पक्ष को देखें–परखें जाने–समझें तो उनमें और तुलसीदास में अद्भुत वैचारिक साम्य पाते हैं। भक्ति–भावना, अध्यात्म–दर्शन, सांस्कृतिक चेतना एवं काव्यादर्श की पड़ताल करते हुए साम्य के अनेक बिन्दु उजागर होते

हैं। दोनों आस्तिकतावादी वैष्णव भक्त हैं। रामोपासना के प्रति आस्थावान हैं। दोनों राम में रमे हैं। दोनों ने राम के चरित को ही काव्य माना है। तुलसीदास की भाँति गुप्त जी ने भी अपनी रचनाओं में 'मंगलाचरण' के रूप में राम की स्तुति की है जो उनकी राम–भक्ति भावना की परिचायक है। 'द्वापर' में कृष्ण–कथा को ग्रहण करके भी वे राम को नहीं भूलते

धनुर्बाण या वेणु लो श्याम-रूप के संग,
मुझ पर चढ़ने से रहा राम ! दूसरा रंग।

यशोधरा में भी वे राम से राम की भक्ति की ही याचना करते हैं

भक्ति-मुक्ति क्या मांगे तुमसे,
हमें भक्ति दो ओ अमिताभ!

भक्ति की समस्त सामान्य विशेषताएँ दोनों कवियों के काव्य में विद्यमान है। भक्ति के साधन के रूप में दोनों ने भागवत् की सर्वाधिक लोकप्रिय 'नवधा' भक्ति के अंगों को साधन के रूप में स्वीकार किया है। दोनों कवियों में वैष्णव भक्ति की सामान्य विशेषताएँ अनन्यता, इष्टदेव के महत्त्व का गुणगान, नाम–स्मरण की महिमा, सर्वस्व–समर्पण का भाव, शरणागति की महत्ता, गुरु–महिमा आदि विद्यमान हैं।

तुलसीदास और गुप्त जी के दार्शनिक विचारों का तुलनात्मक विश्लेषण यह सिद्ध करता है कि दोनों मूलतः कवि हैं दार्शनिक नहीं। उन्होंने अपनी आध्यात्मिक अनुभूति को काव्य के माध्यम से सहज, सुन्दर और सरस अभिव्यक्ति दी है। दोनों दर्शन के क्षेत्रा में प्रमुख रूप से रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैतवाद से प्रभावित हैं। उनकी वैष्णव भावना रामानंदी श्री सम्प्रदाय के सिद्धांतों से संपोषित हुई थी किंतु दोनों सारग्राही कवि थे। विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदायों के ग्राह्य सिद्धांतों को अपनाते हुए उन्होंने ब्रह्म, जीव, जगत्, माया, मोक्ष, आदि की अद्भुत दार्शनिक व्याख्या की है। धर्मिक संकीर्णता से मुक्त उनका दर्शन समन्यवादी दर्शन कहा जा सकता है।

जहाँ तक सांस्कृतिक मनोभावना की बात है तो कहा जा सकता है भारतीय सांस्कृतिक चेतना के शलाका पुरुष के रूप में दोनों हिंदी साहित्य के ज्योति स्तंभ के रूप में उभरे हैं। उनका सम्पूर्ण काव्य संस्कृति–प्रेम का प्रमाण है। उनके काव्य का आधर भारतीय संस्कृति है, किन्तु समकालीन वातावरण के प्रभाव से वे अलग नहीं हैं। दोनों समाज–प्रतिबद्ध कवि हैं। दोनों ने समाज के प्रति रचनात्मक प्रतिबद्धता को अपना पहला धर्म मानते हुए अपने–अपने समाज की रीतियों–कुरीतियों को रेखांकित किया है। प्राचीन कथावस्तु को आधर बनाने पर भी अपने युग को सदा साथ रखा है। दोनों भारतीय अस्मिता के कवि हैं। भारतीय संस्कृति के संपूर्ण अंगों में दोनों कवियों की प्रगाढ़ आस्था है। दोनों के पास श्रद्धा–समन्वित संस्कारी भक्त हृदय था। भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान के संदेशवाहक के रूप में उनकी गणना की जाती है। गुप्त जी की सांस्कृतिक मनोभावना पर तुलसीदास का अमित प्रभाव था जिसके परिणामस्वरूप ही गुप्त जी ने उनके जीवन, साहित्य के आधरभूत संस्कृति के आदर्शों को ग्रहण कर अपनी रचनाओं में प्रतिफलित किया है। उन पर भारतीयता की अमिट छाप है जो वाल्मीकि एवं तुलसीदास की विचार–परंपरा का आधार रही है। विशेष ध्यातव्य तथ्य यह है कि गुप्त जी तुलसीदास की भाँति विश्वबंधुत्व की भावना के

संपोषक हैं। तुलसीदास की 'सिय राममय सब जग जानी' अथवा 'निज प्रभुमय देखहिं सकल जग केहिं सन करत विरोध' जैसी उक्तियों में सार्वभौमिक चेतना के स्वर की गूंज स्पष्ट सुनाई देती है। गुप्त जी भी सार्वभौमिक कल्याण और सर्वोदय की महत्ती भावना के प्रतिगामी हैं। सामाजिक सरोकार गुप्त जी के काव्य–कर्म का सर्वोपरि लक्ष्य है। अपनी राष्ट्रीय संस्कृति के व्यापक धरातल के निर्माण–कर्त्ता के रूप में उन्होंने राम के आदर्श को प्रस्तुत किया है। राम का दंडकारण्य की ओर प्रस्थान इसी उदार सांस्कृतिक विचारधारा का परिचायक है। भरत खंड का द्वार विश्व के लिए खुला है कवि की इस घोषणा में भी यही औदार्य प्रति ध्वनित हुआ है।

चिंतन का एक पक्ष 'काव्यादर्श' या काव्य–सिद्धांत है। गुप्त जी के काव्यादर्श का मूल्यांकन इस तथ्य को पुष्ट करता है कि उन्होंने भारतीय काव्यशास्त्रा का अच्छा अध्ययन किया था। काव्य तथा भाषा के संबंध को वे अच्छी तरह समझते थे किंतु रीति आचार्यों की भाँति उन्होंने किसी भी काव्यांग का विस्तृत और रीतिबद्ध विवेचन नहीं किया। तुलसीदास की भाँति गुप्त जी ने भी काव्यादर्शों को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से अपनी कृतियों में ही परिभाषित किया है जो उनके प्रौढ़ काव्यशास्त्रीय ज्ञान का परिचायक है। 'काव्य–लक्षण' को व्याख्यापित करते हुए दोनों ने शब्द और अर्थ में नित्य संबंध स्वीकार करते हुए रस की दीप्ति को काव्य का आदर्श स्वीकार किया है। दोनों कला में उपयोगिता के तत्त्व को स्वीकार करते हैं। तुलसीदास की भाँति गुप्त जी के काव्य का लक्ष्य भी शिव है। उनकी दृष्टि में लोकशिक्षा–प्रदायक कविता ही कविता है केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए। काव्य की आत्मा' के रूप में उन्होंने 'रस' को स्वीकृति दी है। 'काव्य का प्रयोजन' गुप्त जी ने 'रसात्मक एवं शिक्षाप्रद दोनों माना है। 'काव्य–हेतु' के रूप में दोनों ने 'प्रतिभा' को प्रमुख हेतु के रूप में मानते हुए निपुणता और अभ्यास को सहायक कारण माना है। 'काव्य–विषय' के रूप में तुलसी के विचारों को ग्रहण करते हुए गुप्त जी ने उन्हीं विषयों को अपनाने का अनुरोध किया है जो सद्‌गुणों की ओर प्रेरित करने वाले एवं कल्याणकारी हों। काव्य के 'अंगीरस' के रूप में गुप्त जी तुलसीदास से थोड़ा अलग खड़े दिखाई देते हैं। यद्यपि तुलसीदास की भाँति वे 'रसवादी' कवि हैं और उन्होंने भी प्रायः सभी रसों को ग्रहण किया है किंतु जहाँ तुलसीदास ने भक्तिरस को प्रमुख रूप में मान्यता दी है वहाँ गुप्त जी ने 'करुण' और 'वीररस' को काव्य का आदर्श माना है। श्रृंगार–रस को दोनों कवियों ने हेय माना है। 'काव्य–भाषा' के रूप में दोनों ने बोलचाल की भाषा को 'काव्य–भाषा' बनाने का समर्थन किया है। गुप्त जी का सरल कविता का आदर्श पूर्ण रूप से तुलसीदास से प्रभाव ग्रहण करता प्रतीत होता है। दोनों कवियों ने भावों के अनुकूल 'छंद' के चुनाव को प्रमुखता दी है। यहाँ गुप्त जी तुलसीदास से थोड़ा अलग सोच रखते हैं। तुकान्त काव्य की सपफल रूप में रचना करने पर भी अतुकांत कविता को उन्होंने तुकांत रचना के समान महत्त्व दिया है। इससे स्पष्ट है कि गुप्त जी ने काव्य को छंद का बंदी नहीं माना है। 'काव्यालंकार' को दोनों ने रस–उत्कर्ष का साधन मात्रा माना है। दोनों कवियों ने चमत्कार के लिए

नहीं काव्य के शोभाकारक धर्म के रूप में उसे ग्रहण किया है। तुलसी की भाँति गुप्त जी ने भी शब्द–चमत्कार की अपेक्षा अर्थ–गौरव को ही अधिक महत्त्व दिया है। इस प्रकार दोनों कवियों ने अपनी काव्यशास्त्रीय मान्यताओं को अपनी सहज कवि–प्रतिभा द्वारा सफलतापूर्वक अभिव्यक्त किया है।

आलोच्य पुस्तक का दूसरा खंड कलागत साम्य एवं प्रभाव से सम्बद्ध है। इसके अन्तर्गत विभिन्न काव्यरूपों पर अधि्कार, भाषा–प्रयोग, अप्रस्तुत–योजना एवं छंद–योजना पर विचार करते हुए यह तथ्य उभर कर आता है कि मैथिलीशरण गुप्त और तुलसीदास दोनों कवियों की साहित्यिक परिस्थितियाँ यद्यपि भिन्न–भिन्न थीं किन्तु कला के प्रति दृष्टिकोण में दोनों में समानता है। दोनों की भाषा और छंद यद्यपि भिन्न–भिन्न हैं, फिर भी इनके प्रति उनके दृष्टिकोण में समानता है। दोनों ने विभिन्न काव्य–रूपों को अपनाया है। काव्य–विधा के प्रयोग में दोनों की प्रतिभा बहुआयामी है। दोनों प्रबंधकार हैं तुलसी के समान गुप्त जी ने भी अपने प्रबंध काव्यों का प्रणयन महत् उद्देश्य से प्रेरित होकर ही किया है। युग–धर्म का जैसा संदेश उनके काव्यों में उनके जिस ज्वलंत रूप में मिलता है वह अन्यत्रा दुर्लभ है। दोनों ने खंडकाव्य का प्रणयन किया है किंतु गुप्त जी का इस विधा पर विशेष अधिकार था। खंडकाव्यकार के रूप में परिमाण की दृष्टि से गुप्त जी तुलसीदास से बहुत आगे हैं। जहाँ तुलसीदास के केवल तीन खंडकाव्य मिलते हैं वहाँ गुप्त जी ने 19 खंडकाव्यों का प्रणयन किया है। इतने खंडकाव्यों का प्रणयन अपने आप में बहुत बड़ी सिद्धि है। खंडकाव्य–प्रणयन में जो साम्य है वह यह कि दोनों ने प्राचीन विषय लेकर कथाश्रित खंडकाव्यों की रचना की है।

दोनों कवियों ने मुक्तककाव्यों की भी रचना भी की है तुलसीदास के अधि्कांश मुक्तक काव्य भी कथाश्रित हैं। 'गीतावली' यद्यपि गीतिकाव्य है, पिफर भी आद्यान्त कथा को लेकर चलता है। इसी प्रकार 'कवितावली' में केवल उत्तरकाण्ड में कवि का आत्माभिव्यंजन प्रकट हुआ है बाकी कांडों में क्रमबद्ध रामकथा है। 'विनयपत्रिका' और 'दोहावली' में मुक्तककाव्य का कलात्मक निखार मिलता है। 'विनयपत्रिका' में तो कवि ने अपना हृदय खोल कर रख दिया है। गुप्त जी ने भी मुक्तककाव्य का प्रणयन किया है। प्रारंभ में तो वह मुक्तकार ही थे। 'पद्य–प्रबंध', 'स्वदेश–संगीत' और 'मंगलघट' कवि के मुक्तक–संग्रह हैं। इसके अतिरिक्त 'यशोध्रा' में आत्माभिव्यंजन शैली में अनेक गीत रचे गए हैं। दोनों के मुक्तक–काव्य कथानिष्ठ हैं।

जहाँ तक काव्य–भाषा का संबंध है, वहाँ भी तुलसी और गुप्त जी दोनों में समानता है। दोनों ने बोलचाल की सरल भाषा को माध्यम रूप में ग्रहण किया है दोनों की दृष्टि में मुख्य वस्तु भाव है, भाषा नहीं। भाषा की सरलता, स्वच्छता पर बल देते हुए दोनों ने ध्वनि, वक्रोक्ति, स्वाभावोक्ति, गुण, वृत्ति, अलंकार आदि को भाषा के उपकारक धर्म के रूप में स्वीकार करते हैं।

दोनों कवियों ने बड़ी सतर्कता से भावों के अनुकूल छंद के चुनाव का परामर्श दिया है। छंदों की रमणीयता मुख्यतया तीनों बातों पर निर्भर है भावानुकूलता, लय, अन्त्यानुप्रास। दोनों कवियों ने अपने काव्य में इसका ध्यान रखा है। गुप्त जी

ने भी छंदों के नियम–निर्वाह और अन्त्यानुप्रास के लिए भावों को बलि को निंदनीय माना है क्योंकि कविता के लिए भाव मुख्य वस्तु है। अलंकारों को दोनों ने काव्य के शोभाकारक–धर्म के रूप में ही ग्रहण किया है उनकी दृष्टि में अलंकार काव्य में रस–उत्कर्ष का साधन मात्रा हैं। यही कारण है कि अलंकार–प्रयोग के प्रति मोह न रखकर दोनों ने अर्थ–समृद्धि पर बल दिया है। समाहार वाक्य यह है कि कलापक्ष के प्रति दोनों का दृष्टिकोण समान है।

सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साम्य तो यह है कि मैथिलीशरण जी भी तुलसीदास की भाँति ऐसे ही कवि है जिन्हें सामान्य जनता का स्नेह और साहित्य के विद्वानों का आदर दोनों की प्राप्त हुए हैं। तुलसीदास की भाँति गुप्त जी भी हिन्दी में छा गये। दोनों का काव्य कालातीत है। जब तक भारतीय समाज में गोस्वामी तुलसीदास के काव्य की अर्चना होती रहेगी, तब तक राष्ट्रकवि मैथिलीशरण जी के गुणों की भी सराहना होती रहेगी।

एनडी–57, पीतमपुर, दिल्ली 110034 मो. 9625999798

भगवत प्राप्ति के लिए है मानव जीवन

उदयपुरा, रायसेन। भगवत प्राप्ति के लिए है मानव जीवन है स्वामी नित्यानंद गिरी जी महाराज, उदयपुरा के समीपस्थ ग्राम पचामा में 59वे रामचरित मानस सम्मेलन के बोलते हुए महाराज श्री ने कहा कि भगवान श्री राम ने साधना और मर्यादा का एक सेतु बनाया है जिस पर चलकर हम मानव जीवन का लक्ष्य पा सकते हैं। हमारे सभी धर्म ग्रंथों ने मानव जीवन की उपयोगिता और उसकी श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है। यही कारण है कि देवता भी मनुष्य शरीर पाने के लिए भगवान से प्रार्थना करते हैं इसलिए हमें मानव जीवन का महत्व समझना चाहिए। इस सप्त दिवसीय श्री रामचरितमानस सम्मेलन में प्रारंभ में विभिन्न विद्वानों ने मानस पर अपने विचार व्यक्त किया। कार्यक्रम के संबंध में श्री चतुर नारायण रघुवंशी ने बताया की पचामा में यह 59 वा मानस सम्मेलन है। मानस के प्रति संपूर्ण रायसेन जिले में मानस यात्रा भी निकल जा रही है जिसके सकारात्मक परिणाम भी देखने को मिल रहे हैं इनमें गौ रक्षा, नशा मुक्ति, बाल विवाह जैसी को प्रथाओं को रोकने में मानस की शिक्षा बहुत सहायता दे रही है। इसके अलावा आपने बताया की मानस पढ़ने और बोलने के कारण कई ग्रामों में साक्षरता दर भी बड़ी है।

प्रस्तुति सुरेंद्र सिंह रघुवंशी, पचामा

गोरेलाल शुक्ल स्मृति समारोह 2025

श्रीरामकथा दिनांक 2 से 6 दिसंबर

प्रवचन - पूज्य पं.उमाशंकर शर्मा व्यास

तुलसी मानस प्रतिष्ठान के प्रतिष्ठा पुरूष पंडित गोरेलाल शुक्ल स्मृति समारोह के अंतर्गत पंडित रामकिंकर सभागार में प्रथम दिवस पर परमपूज्य महाराजश्री पं. उमाशंकर व्यास ने प्रवचन प्रसंग के अतंर्गत कहा कि सभी भगवान को चाहते है लेकिन तुलसीदासजी कहते है कि हमें अपने हदय की निर्मलता होने पर ही भगवान हमें चाहते हैं। यही भक्ति की पराकाष्ठा है। आपने कहा कि श्रीरामचरितमानस में ऐसे कई भक्तों का वर्णन है जिनके अनन्य प्रेम के कारण प्रभु श्रीराम स्वयं उनके पास पहुंचे। इन भक्तों में महर्षियों, मुनियों के अलावा शबरी, निषाद, केवट भी हैं। आपने गीतावली का उदाहरण देते हुए कहा कि ऐसे भक्तों में निषादराज की भगवान से इतनी निकटता रही कि श्री भरत के पास निषादराज के पत्र अयोध्या आते रहे। जिनमें प्रभु श्रीराम के वनवास का समाचार रहता था। आपने 'सुमन' शब्द की आध्यात्मिक व्याख्या करते हुए कहा कि हम भगवान को सुमन (पुष्प) अर्पित करते हैं जिन्हें प्रभु प्रेम से स्वीकार भी करते हैं। इसीतरह भक्त का मन भी सु– अर्थात अच्छा मन होता है। उसके ह्रदय में भी भगवान विराजमान रहते है।

द्वितीय दिवस श्रीरामकथा में जनकपुर में महाराज जनक ने मुनि विश्वामित्रजी के साथ भगवान श्रीराम, श्रीलक्ष्मण को जो निवास दिया वह सीताजी का निवास था। आपने इसका अध्यात्मिक अर्थ बताते हुए कहा कि सीताजी साक्षात भक्ति है। और भक्ति ही भगवान का निवास होती है। आपने पुष्पवाटिका प्रसंग का वर्णन करते हुए कहा कि जनकपुर की पुष्पवाटिका त्रेतायुग की पुष्पवाटिका है जहां भगवान ने न केवल पुष्प चुने, बल्कि सीताजी को भी दर्शन दिये। यह दर्शन का सौभाग्य सीताजी को भगवान के पुष्पवाटिका में पुष्प चुनने के कारण प्राप्त हुआ। पुष्प को हम साहित्य में सुमन भी कहते है। सुमन का एक अर्थ है जिनका मन पवित्र हो। आपने तुलसीदासजी के द्वारा रामकथा के रूपक प्रसंग का उदाहरण देते हुए कहा कि

''पुलक वाटिका बाग वन सुख सुबिहंग बिहारु,
माली सुमन सनेह जल सींचत लोचन चारु।''

अर्थात जो कथा में रोमांच होता है वही बाग वन है। पक्षियों का विहार ही सुख है। निर्मल मन ही माली है। जो प्रेम रूपी जल से सुंदर नेत्रों द्वारा इसे सींचता है। इसका अध्यात्मिक अर्थ बताते हुए उन्होंने कहा कि हम सब भी कथा सुनते हुए उसी पुष्पवाटिका का आनंद ले यही जीवन की सार्थकता है।

तृतीय दिवस कथा को विस्तार देते पुष्पवाटिका में सुमन की अद्भुत व्याख्या करते हुए श्रीराम चरितमानस में वृक्ष और पुष्प की बहुत सुंदर व्याख्या की गयी। गोस्वामी तुलसीदासजी वृक्ष के संबंध में कहते हैं कि पुष्पवाटिका में जहां सुगन्धित पुष्प खिले हुए है वहीं आम के वृक्षों में मौर आ गये है। ऐसा लगता है कि जनकपुर की वाटिका में वसंत ऋतु स्थायी रूप से ठहर गयी है। इसका अध्यात्मिक अर्थ बताते हुए आपने कहा कि ऋतुओं में वसंत ऋतु सदा के लिए की अवधि भले ही दो माह की रहती हो लेकिन पुष्पवाटिका में तो ''**श्रद्धा रितु वसंत सम गाई** '' के रूप में लुभा कर रह गयी। जहां श्रद्धा और भक्ति रहती है वहां व्यक्ति विनम्र रहता है। ऐसा विनम्र भाव व्यक्ति के जीवन में सदा बना रहना चाहिए जैसे वृक्षों के संबंध में कहा कि फलो के बोझ से वृक्ष की शाखाएं नीचे झुक जाती है इसका अर्थ है कि वे संसार को कुछ देने के साथ झुकना भी जानती हैं। इसे जड़ों की ओर लौटना भी कहा जा सकता है। इसलिए गोस्वामीजी उन्हें परोपकारी की संपत्ति की संज्ञा देते है। अर्थात यदि हमारे पास संपत्ति है तो हमें दूसरों को देते हुए अहंकारी नहीं होना चाहिए।

चतुर्थ दिवस परमपूज्य महाराज श्री ने कहा कि श्रद्धा ही मन को 'सुमन' बनाती है। श्रद्धा से ही श्रद्धेय के प्रति विश्वास उत्पन्न होता है। इसी श्रद्धा, विश्वास के समन्वय से ही हम अपने अंतरहृदय में ईश्वर के दर्शन कर सकते है। आपने 'सुमन' शब्द की व्याख्या करते हुए कहा अपने मन पर नियंत्रण रखपाना कठिन तो है लेकिन सत्संग के माध्यम से जब हम हृदय के विकारों पर नियंत्रण पा जाते हैं तो हमारा मन भी जितेन्द्रिय हो जाता है। ऐसा मन ही सुमन है जो भगवान को अत्यंत प्रिय है। इस संदर्भ में आपने कहा कि भगवान वस्तु के ही नहीं भाव के भूखे है। यद्यपि पूजन अर्चन में हम भगवान को विभिन्न वस्तुओं से अभिषेक करते हैं पर भगवान को निर्मल मन अत्यंत प्रिय है। वे श्रद्धा के माध्यम से ही किसी भी वस्तु को स्वीकार करते हैं।

समापन पर्व पर महाराजश्री ने कहा कि सीताजी पुष्पवाटिका में भगवान श्रीराम के लताओं की ओट से दर्शन करती है। उस समय उनकी भावदशा प्रेम की है। वर्णन आता है कि **'मग लोचन रामहि उर आनी दीन्हे पलक कपाट सयानी'**। अर्थात् सीता ने भगवान के स्वरूप को अपने नेत्रों के मार्ग से हदय में स्थित कर लिया। इसका आध्यात्मिक अर्थ है कि सीताजी भक्ति है और भगवान का निवास भक्त के हृदय में ही होता है। उसी तरह आपने भक्त सुतीक्ष्ण जी के प्रेम का उल्लेख करते हुए कहा कि भगवान के आगमन को सुनकर सुतीक्ष्णजी दर्शन के लिये मार्ग के बीच रास्ते में ही अचल होकर बैठ गये। वर्णन आता है कि उनके हृदय में भी भगवान का दिव्य स्वरूप आ गया। लेकिन जब स्वयं भगवान सामने आए तब भी सुतीक्ष्णजी ध्यानस्थ ही रहे। वे हृदय में भगवान के दर्शन करते रहे। जब भगवान श्रीराम ने स्वयं ही अपने राजरूप को उनके हृदय से छिपाकर अपना चतुर्भुज रूप दिखाया तब जाकर सुतीक्ष्णजी का ध्यान टूटा। इसका अर्थ है कि ईश्वर का एक निवास हम सबके हृदय में भी है। समापन पर आपने तुलसी मानस प्रतिष्ठान की सराहना करते हुए कहा कि पूर्व कार्याध्यक्ष श्री शुक्ल एवं श्री दुबे जी तथा वर्तमान कार्याध्यक्ष श्री रघुनंदन शर्मा जी के प्रभावी मार्गदर्शन में प्रतिष्ठान की प्रतिष्ठा दिनोंदिन नए आयाम स्थापित कर रही है। आपने सुधी श्रोताओं के प्रति आभार व्यक्त किया। श्रीरामकथा में विभिन्न दिवस मुख्य अतिथि के रूप में मा.श्री कौशलेन्द्र

विक्रम सिंह कलेक्टर जिला भोपाल, मा.श्री सीता सरण शर्मा पूर्व विधानसभाध्यक्ष एवं विधायक,मा. श्री धर्मेन्द्र लोधी, संस्कृति मंत्री मध्यप्रदेश शासन, मा.श्री सुरेश पचौरी पूर्व केन्द्रीय मंत्री भारत सरकार उपस्थित रहे। विभिन्न पुरस्कारों के क्रम में दिनांक 3 दिसंबर 2025 को डॉ.लक्ष्मीनारायण गुप्त विश्वबंधु स्मृति पुरस्कार के अंतर्गत हिन्दी विषय में स्नातकोत्तर परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त छात्र श्री अरविन्द शर्मा,भोपाल को शाल श्रीफल,प्रशस्तिपत्र एवं पुरस्कार राशि मुख्य अतिथि परमपूज्य महाराजश्री एवं मा.श्री सीताशरण शर्मा के करकमलों से प्रदान की गयी।

दिनांक 5 दिसंबर 2025 को भाई रतनकुमार स्मृति पत्रकारिता के अंतर्गत पत्रकारिता में स्नातक परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त छात्र श्री नमन अटोलिया,जयपुर को दिया गया इसी अनुक्रम में जस्टिस आर.डी.शुक्ल स्मृति पुरस्कार के अंतर्गत विधि संकाय में प्रथम स्थान प्राप्त छात्रा कु.हर्षिता शर्मा को पूज्य महाराज श्री एवं मुख्य अतिथि मा.श्री सुरेश पचौरी के द्वारा पुरस्कृत किया गया। पुस्तक विमोचन की श्रृंखला में तुलसी मानस प्रतिष्ठान मध्यप्रदेश विधान तथा नियमोपनियम की पुस्तक का विमोचन मुख्य अतिथि द्वारा किया गया। इसी अनुक्रम में डॉ. गौरीशंकर शर्मा गौरीश द्वारा रचित 'श्री जनकसुता सुत–शौर्य कृति का विमोचन भी किया गया। श्री अशोक धमेनिया की दो पुस्तकें 'महाकुंभ 2025 प्रयागराज' एवं यायावर की डायरी का विमोचन मा.अतिथि द्वारा किया गया। तुलसी मानस भारती की माह दिसम्बर 2025 की पत्रिका का विमोचन एवं श्रीमती ज्योत्सना तिवारी की काव्यकृति 'धूप–छांव' का विमोचन मुख्य अतिथि एवं परमपूज्य महाराजश्री के करकमलों द्वारा किया गया। कार्यक्रम में कैलाश शर्मा के चित्रों का भी विमोचन किया गया।

समापन दिवस पर परमपूज्य महाराजश्री का सम्मानशाल/श्रीफल से किया गया इस अवसर पर कार्याध्यक्ष श्री रघुनंदन शर्मा, सचिव कैलाश जोशी, श्री माधव सिंह दांगी, संपादक तुलसी मानस भारती श्री देवेन्द कुमार रावत, श्री प्रहलाद दास मंगल उपस्थित थे।

कथा प्रसंग में विभिन्न अवसरों पर पधारे सुधी दर्शकों के अलावा सचिव श्री कैलाश जोशी, प्रभुदयाल मिश्र प्रधान संपादक तुलसी मानस भारती, श्री विजय अग्रवाल कोषाध्यक्ष, श्री राजेन्द्र शर्मा संयोजक, श्री माधव सिंह दांगी, श्री कमल नारायण शुक्ल एवं श्रीमती सुशीला शुक्ला, श्री राजेश श्रीवास्तव, श्री राजेश हिगोंरानी, श्री कमलेश जैमिनी, श्री एल.एस.चौधरी एसडीएम, श्री कुलदीप खरे, श्री अरूण गुप्ता, श्रीमती श्रद्धा गुप्ता, श्री अतुल गुप्ता, श्रीमती मधु गुप्ता, श्रीमती नीता गुप्ता, श्री महेश दुबे, श्री गोपाल सिंह राजपूत, कु. त्रिशा जोशी, ओमप्रकाश गौर, श्री अशोक धमेनिया, श्री माघवसिंह दांगी, श्रीमती नीता दांगी, सुश्री राजकुमारी शर्मा, श्री महेश सक्सेना, सुश्री शारदा राठौर, श्री जे.पी. विश्वकर्मा, श्रीमती कविता अग्रवाल, श्री कैलाश शर्मा, श्री प्रहलाद दास मंगल, सुश्री मृदल त्यागी, श्री रमेश गुर्जर, श्री संजीव पुरी एवं श्रीमती संध्या पुरी, श्री अरूण गुप्ता, श्रीमती श्रद्धा गुप्ता, श्री बी. के.सांघी, श्री गिरधारीलाल बेवू भाई उपस्थित थे।

कार्यक्रम का संचालन श्री माधव सिंह दांगी ने किया। आभार प्रदर्शन श्री देवेन्द्र कुमार रावत ने किया।

समाचार प्रकोष्ठ, मानस भवन भोपाल।